तुलसी काव्य में प्रकृति चित्रण

डॉ० इंदु

तुलसी-काव्य में प्रकृति आलंबन, उद्दीपन, अलंकार, उपदेश और बिंब रूप में प्रस्तुत हुई है। प्रकृति के आलंबन और उद्दीपन रूप के विषय में कोई मतभेद नहीं है। यदि अप्रस्तुत योजना के विषय में प्रकृति को अलग माना जाए तो कवि अलंकार रूप में तथा बिंबों के निर्माण द्वारा प्रकृति का उपयोग करता है। पुराणों में विशेषतया श्रीमद्भागवत में प्रकृति का उपदेश और दार्शनिक रूप मिलता है। रीतिकालीन कवि प्रकृति का आलंबन रूप में उपयोग कम करते हैं और उद्दीपन रूप में अधिक। वस्तुतः यदि कवि का लक्ष्य भावोत्तेजना है तो वह प्रकृति का उपयोग उद्दीपन के लिए करेगा परंतु यदि कोई कवि भावों का परिष्कार कर मन के संयम पर बल देता है और मन के संकल्पित विषयों को भगवान् के साथ जोड़ देता है तो उसकी रचना में प्रकृति का उपयोग उद्दीपन की अपेक्षा आलंबन के निमित्त अधिक मिल सकता है। संत शिरोमणि महाकवि गोस्वामी तुलसीदास जी इसी वर्ग के महाकवि हैं। उनके काव्य का लक्ष्य मन को भटकाना नहीं वरन् उसे संयत करना है। वे प्रकृति में उस परम सत्ता की छाया देखते हैं और मन को उस चित्र के माध्यम से प्रेरणा देते हैं। गोस्वामी जी प्रकृति का आलंबन रूप चित्रित करते हैं लेकिन उस रूप से भौतिकता की ओर नहीं जाते। दिव्यता की ओर स्वयं भी जाते हैं और पाठक को भी ले जाते हैं। तुलसी की विशेषता हिंदी के किसी दूसरे कवि में नहीं है। तुलसी के अध्ययन की एक गहरी परंपरा है और उनसे संबंध रखने वाले समीक्षा और शोध-ग्रंथों की राशि अनंत है। तुलसी की भक्ति, दर्शन, समन्वय, भाषा, सामाजिक आदर्श आदि विषयों का अवगाहन कर उनके विषय में स्वतंत्र रूप से अनेक आलोचनात्मक ग्रंथ प्रस्तुत किए जा चुके हैं। प्रकृति मानव की आदि सहचरी है। प्रकृति कृति की जननी है। प्रकृति साधारण मनुष्य के लिए जड़ और भावुक कवि के लिए चेतन है। तुलसी इस भावना से अछूते कैसे रह सकते थे। तुलसी का प्रकृति के प्रति उपासक का दृष्टिकोण रहा है। प्रस्तुत कृति में इसी भावना को दिखाने का प्रयास किया गया है।

तुलसी-काव्य में प्रकृति-चित्रण

डॉ. इन्दु
रीडर, हिन्दी विभाग
श्री अरविन्द कॉलेज (सांध्य)
दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

मनीषा प्रकाशन
लोनी सिटी

ISBN : 81-86746-41-2

प्रकाशक :
मनीषा प्रकाशन
डी-5, इन्द्रापुरी, लोनी सिटी, गाजियाबाद (उ.प्र.)-201102
☎ 0120-2687204 (दिल्ली से 95120)

वितरक :
विनोद कुमार शर्मा
निर्माण प्रकाशन
1/3476-बी, अशोक मार्ग, रामनगर एक्स., शाहदरा, दिल्ली-110032

प्रथम संस्करण : 2004

मूल्य : 250.00

आवरण :
अमिताभ राय

शब्दांकन :
राजेश लेजर प्रिंट्स, शाहदरा, दिल्ली-32

मुद्रक :
त्रिवेणी ऑफसेट, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

TULSI-KAVYA MAIN PRAKRITI-CHITRANA
By Dr. Indu

Rs. 250/-

राममय प्रकृति के उपासक तुलसी

'रामचरितमानस' भारतीय वाङ्मय का अद्भुत महाकाव्य है जिसमें जीवन दर्शन का वैविध्य है तथा मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की जीवन-गाथा है। इस संबंध में एक बहुचर्चित दोहा दृष्टव्य है– *"सूर सूर तुलसी ससी उड्डगन केशव दास।"*

रामचरितमानस के अतिरिक्त तुलसी की कवितावली, विनयपत्रिका आदि समग्र काव्य-कृतियों को जिन्होंने नहीं पढ़ा वे ही उनके बारे में अनेक भ्रांतियाँ रखते हैं। प्रसंगों के समायोजन के विना अर्थ के अनर्थ भी बहुत हुए हैं।

तुलसी 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' के उपासक हैं। उनके 'राम' के शारीरिक चित्रण में जहाँ 'आजानु भुज' पौरुष झलकता है तथा उनके नेत्र 'राजीव लोचन' हैं वहाँ सीता जगत्-जननी स्वरूपा हैं जिनकी आँखें मृगनयनी जैसी हैं। तुलसी तमाम प्रकृति को सात्विक सौन्दर्य में समाहित करके देखते हैं। सीता के अपहरण होने पर जब वे अनुज लक्ष्मण के साथ अरण्य में खड़े अपनी अर्द्धांगिनी को स्मरण करते हैं तो 'रामचरितमानस' की एक चौपाई जन्म लेती है। राम-विलाप के स्वर में शब्द अवतरित होते हैं–

'हे खग-मृग हे मधुकर श्रेणी। तुम देखी सीता मृगनयनी॥'

विचारणीय है–उनका यह वर्णन कालिदास, सूर, बिहारी, अथवा अन्य रसिक महाकवियों के सौन्दर्य-चित्रण से हटकर है। इस ग्रंथ की लेखिका डॉ. इन्दु लिखती हैं कि तुलसी ने प्रकृति के माध्यम से ही अपने काव्य में सन्त, स्तुति, परोपकार, दानशीलता, सहायता, एकता, आदर आदि सद्गुणों पर प्रकाश डाला है। चातक कवि के प्रेम का प्रतिनिधि है जिसके माध्यम से अलंकारों की छटा बिखरी है जो 'सांगरूपक' बनकर जगत्-प्रसिद्ध अभिव्यक्ति बन जाती है। तुलसी दार्शनिक रहस्यों तथा पशु-पक्षी को राममय वनाने में कुशल हैं। उनके सौन्दर्य-चित्रण में मर्यादा का समावेश है। लेखिका के अनुसार प्रकृति का उद्दाम वर्णन कहीं भी तुलसी ने अपने काव्य में नहीं किया है। उनका विरह-वर्णन भी संतुलित दिखाई पड़ता है। राम ने पेड़-पौधों से सीता के बारे में प्रश्न अवश्य किए हैं किन्तु उनमें न कामातुरता है और न ही वियोग का हास्यास्पद स्वरूप।

लेखिका के गहन अध्ययन में प्रकृति-पुरुष की उत्कृष्टता, भारतीय संस्कृति के आदर्श, संस्कारों की गरिमा, मानव-मूल्यों की अद्भुत समीक्षा तथा काव्य के श्रेष्ठ प्रतिमानों का अनुसंधान है जो तुलसी काव्य का प्राण है तथा आर्ष तत्त्व भी है। उनका

यह सारस्वत कार्य चिंतन को एक नई दिशा देता है। इस अध्ययन को सात्विक सौन्दर्य संधान कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। तुलसी-काव्य में चाक्षुपविंब का वर्णन करते हुए वे महाकवि तुलसी की निम्न पंक्तियाँ उद्धृत करती हैं—

'बूँद अघात सहें गिरि कैसे। खल के वचन संत सह जैसे॥'

यह प्रकृति का आलंबन रूप है, पर्वत पर वर्षा की बूंदों का वर्णन है। परन्तु कवि का ध्यान साम्य पर भी है संत और गिरि, खल-वचन और बूंद-अघात में 'सहना' धातु के आधार पर समानता है। इसलिए इस प्रयोग को आलंकारिक कहा जाएगा। इस चित्रण में चाक्षुष बिम्ब बड़ा प्रभावशाली है। ऊँचे एवं दृढ़ पर्वत पर बूँदों का तड़ातड़ बरसना, अंधकार, कोलाहल के साथ घबराहट एवं भय की व्यंजना—बिम्ब-योजना वस्तुतः सफल है और इस वर्णन में उपदेश तो है ही। इस प्रकार उद्दीपन और दर्शन को छोड़कर शेष चारों रूप यहाँ अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं।

वस्तुतः गोस्वामी तुलसीदास ने सोद्देश्य काव्य का सृजन किया है। उनके काव्य में प्रकृति का आलंबन स्वरूप है। प्रकृति को पहचानने का यह प्रथम सोपान है किन्तु यह उद्देश्य उनके काव्य का नहीं है। प्रकृति उसका बाह्य रूप है जो ब्रह्ममय है, राममय है। तुलसी जैसे भक्तिकाव्य के कवि उसे निर्गुण स्वरूप में कैसे पाते?

हम लेखिका के व्यापक चिंतन-मनन-अध्ययन को साधुवाद देना चाहेंगे जिसमें उन्हें प्रकृति का संश्लिष्ट चित्र मानस की इन पंक्तियों को स्मरण करने को बाध्य करता है—

कवित्त विवेक एक नहिं मोरे। सत्य न हो लिखि कागद कोरे।

और अन्त में मैं अपने काव्य के प्रेरक महाकवि तुलसी पर रचित नए कविता-संग्रह 'विश्व-कविता की ओर' की कुछ पंक्तियों में उन्हें प्रणाम करना चाहूँगा।

महाकवे, तुमने एक रावण को/मारने को विशाल ग्रंथ की रचना की
राम को युग-युग तक/जीवित रखने की कल्पना की
लेकिन आज तो यत्र-तत्र/बड़े-बड़े रावण हैं
लोग यों ही मनीषी रावण/को बदनाम करते हैं
आज के भारत में/रावण के बाप के भी
बाप राज करते हैं/और मेरे भोले राम
रोज-रोज मरते हैं/आओ—
मेरे देश-धर्म/इस भोले राम को बचा लें
और अपने रामराज्य का सपना/साकार बना लें।

(डॉ.) श्याम सिंह शशि
(पद्मश्री से सम्मानित साहित्यकार)

प्रस्तावना

कॉलेज में प्रवेश लेने पर जब मैंने हिन्दी साहित्य का विशेष अध्ययन प्रारम्भ किया तो मेरी सबसे अधिक रुचि भक्ति साहित्य के प्रति हुई। इसका कारण मेरे पारिवारिक संस्कार और मेरे घरेलू वातावरण को माना जा सकता है। पूज्य दादाजी (पं. चारुदेव शास्त्री), आदरणीय पिताजी और माताजी सभी का विषय संस्कृत भाषा और साहित्य रहा है। परन्तु वैदिक अध्ययन में निरन्तर लगे रहने के कारण इन सबकी निकटता भक्ति दर्शन के साथ भी रहती आई है। अतः भक्ति साहित्य और विशेषतः सगुण भक्ति साहित्य को मैं अपना विषय कह सकती हूँ। विश्वविद्यालय की ऑनर्स परीक्षा में भी मुझे सर्वाधिक अंक भक्ति काव्य में प्राप्त हुए थे। एम.ए. कक्षा के लिए संयुक्त पाठ्यक्रम में मैंने मराठी साहित्य का भी अध्ययन किया और नामदेव, ज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुकाराम तथा रामदास के साहित्य से मैं बहुत प्रभावित हुई। परिणामतः एम.फिल. के लिए मेरा विकल्प भक्ति वर्ग था और 'रामचरितमानस' पर मुझे शोध निबन्ध लिखने की अनुमति भी प्राप्त हुई थी।

तुलसी साहित्य और विशेष रूप से 'रामचरितमानस' ने प्राचीन और आधुनिक सभी विद्वानों को आकृष्ट किया है। मध्य युग के सन्त और समीक्षक तुलसी पर भिन्न-भिन्न दृष्टियों से विचार करते रहते हैं। समकालीन कवि रहीम तो गोस्वामी तुलसीदास के अनन्य मित्रों में से थे। तुलसीदास के जीवन-चरित, उनके पर्यटन और उनकी कृतियों पर ऐसे ग्रन्थ लिखे गए हैं, जिनमें उदाहरण केवल तुलसी की रचनाओं विशेषतः रामचरितमानस से ही लिए गए हैं। आधुनिक युग में जार्ज ग्रियर्सन का ध्यान तुलसी की लोकप्रियता और उनकी महत्ता पर गया। वियना नगर की सभा में उन्होंने जो लेख पढ़ा था उसका ऐतिहासिक महत्त्व है। यूरोपीय विश्वविद्यालयों में तुलसी के साहित्य दर्शन पर सबसे पहले शोधोपाधियाँ प्रदान की गई थीं। भारत में भी तुलसीदास के अध्ययन की एक गहरी परम्परा है। उनसे सम्बन्ध रखने वाले समीक्षा ग्रन्थों और शोध ग्रन्थों की राशि अनन्त है। हिन्दी का ऐसा कोई भी शिरोमणि आलोचक नहीं हुआ जिसने गोस्वामी जी के काव्य का अवगाहन करके उनके विषय में स्वतन्त्र रूप से और अपनी स्वतन्त्र दृष्टि से न लिखा हो। मिश्रबन्धु, रामचन्द्र शुक्ल, श्यामसुन्दर दास, रामकुमार वर्मा, हजारीप्रसाद द्विवेदी, रामनरेश त्रिपाठी, माताप्रसाद गुप्त, भगीरथ

मिश्र और कितने ही विद्वान् हैं जिन्होंने अपने अध्ययन की विशेप छाप तुलसी साहित्य पर लगा दी है।

अध्ययन के इस पारावार में अधिकतर रत्न तुलसी की भक्ति, तुलसी का दर्शन, तुलसी का सामाजिक आदर्श, तुलसी की भाषा आदि से सम्वन्ध रखने वाले ही हैं। डॉ. हरिहर नाथ हुक्कु ने अपने डी.लिट्. के शोध-प्रवन्ध में प्रकृति-चित्रण पर भी विचार किया है। डॉ. किरण कुमारी गुप्ता और डॉ. रघुवंश के शोध-प्रबन्ध तो केवल प्रकृति चित्रण को लेकर ही पूर्ण हुए हैं। फिर भी स्वतन्त्र रूप से गोस्वामी जी के प्रकृति चित्रण पर अद्यावधि कोई स्वतन्त्र कार्य सम्पन्न नहीं हुआ, जहाँ तक मेरी जानकारी है कम-से-कम प्रकाशित नहीं है। इसलिए इस दिशा में मेरा कार्य किसी सीमा तक प्रथम और मौलिक माना जा सकता है।

प्रकृति-चित्रण की अलग-अलग प्रणालियाँ हैं और विद्वान् अलग-अलग ढंग से इस पर विचार करते हैं। तथापि प्रकृति का आलम्बन रूप और प्रकृति का उद्दीपन रूप कदाचित इन दोनों के विषय में मतभेद नहीं है, यदि अप्रस्तुत योजना के विषय में प्रकृति को अलग माना जाय तो कवि अलंकार रूप में तथा बिम्बों के निर्माण द्वारा प्रकृति का उपयोग करता है। पुराणों में और विशेष रूप से श्रीमद्भागवत में प्रकृति का उपदेशक और दार्शनिक रूप भी है। इस प्रकार कवि प्रकृति का उपयोग छह रूपों में उपयोग कर सकता है। मैंने प्रत्येक रूप को एक-एक अलग अध्याय दिया है। सवसे पहले विषय-प्रवेश और सबसे बाद में उपसंहार के अध्याय जोड़ दिए हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कदाचित रीतिकाल के कवियों को ध्यान में रखते हुए अपने निबन्ध में यह कहा था कि हिन्दी के कवि प्रकृति का आलम्बन रूप में उपयोग कम करते हैं उद्दीपन रूप में अधिक करते हैं, उस प्रसंग में संस्कृत के वाल्मीकि और कालिदास आदि कवियों की सराहना की थी। वस्तुतः यदि कवि का लक्ष्य भावोत्तेजना है तो वह प्रकृति का प्रयोग उद्दीपन के लिए करेगा परन्तु यदि कोई कवि भावों का परिष्कार करके मन के संयम पर बल देता है और मन के संकल्प विकल्पों को भगवान् के साथ जोड़ देता है तो उसकी रचना में प्रकृति का उपयोग उद्दीपन की अपेक्षा आलम्बन के निमित्त अधिक मिल सकता है।

गोस्वामी तुलसीदास इसी वर्ग के महान् कवि हैं। उनके काव्य का लक्ष्य मन को भटकाना नहीं मन को संयत करना है। वह प्रकृति में उस परम सत्ता की छाया देखते हैं और मन को उन चित्रों के माध्यम से कोई प्रेरणा देते हैं। तुलसी की विशेषता हिन्दी के किसी दूसरे कवि में नहीं है—भक्त कवियों में भी नहीं। एक ओर महात्मा सूरदास :

मैं मन बहुत भाँति समझायो
कहाँ करौं दरसंन रस अटक्यो—
बहुरि नहीं घट आयो।

लिखते हैं तो दूसरी ओर गोस्वामी तुलसीदास का कथन है :

मोहि मूढ़ि मन बहुत भिगोयो
याके लिये सुनहु करुनानिध में जग जननि जनमि दुःख रोयो।

दोनों ही कवि मन का चित्रण करते हैं लेकिन एक मन की परवशता को भगवान् के चरणां में अर्पित कर रहा है और दूसरा 'मनोग्रन्थी' को भेदकर भगवान् के दर्शन करने को लालायित है। जब भक्त कवियों की यह दशा है तो लोक कवि लोक-कथा लिखने वाले सूफी या वासना में मग्न रहने वाले रीतिकालीन कवि मन को कहाँ नियन्त्रित कर सकते थे। गोस्वामी जी के प्रकृति चित्रण में यह दृष्टि ध्यान देने योग्य है। वे प्रकृति का आलम्वन रूप चित्रित करते हैं लेकिन उस रूप से भौतिकता की ओर नहीं जाते। दिव्यता की ओर स्वयं भी जाते हैं और पाठक को भी ले जाते हैं।

तुलसी और तुलसी साहित्य पर शोध और समीक्षा करने वाले उन सभी विद्वानों के प्रति भी मैं आभारी हूँ जिनकी रचनाओं से मैंने प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से लाभ उठाया है। साथ ही उन समस्त गुरुजनों को धन्यवाद देना भी मेरा कर्त्तव्य है जिनके अध्यापन के कारण ही भक्ति साहित्य में मेरी रुचि बढ़ती गई है। इस शृंखला में मैं अपने पिता श्री प्रो. सत्यव्रत शास्त्री तथा माता डॉ. उषा सत्यव्रत के प्रति सादर नमन करती हूँ, जिनके आशीर्वाद और स्नेह की छाया सदैव मुझ पर है। अपने दोनों बच्चों दिव्या और रंजन का भी सहयोग मुझे अनवरत मिलता रहा है। मनीषा प्रकाशन के स्वामी सन्तोष शर्मा के प्रति भी अपनी मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करती हूँ जिन्होंने अपने परिश्रम से इस कार्य को निश्चित समय पर प्रकाशित कर मेरी सहायता की है। मुझे विश्वास है कि मेरे प्रयास को सहानुभूतिपूर्ण ढंग से देखा जाएगा और मुझे भविष्य में कार्य करने की प्रेरणा मिलती रहेगी।

–डॉ. इन्दु

वसंत पंचमी
26 जनवरी, 2004

विषय-अनुक्रम

विषय-प्रवेश

मानवीय भावों, सौन्दर्य-बोध तथा काव्य-सौन्दर्य के विकास में प्रकृति का विशिष्ट योग रहा है।

वैदिक काव्य में हम मानव तथा प्रकृति को जीवन के एक ही उल्लासमय प्राणतत्त्व में स्फुरित पाते हैं। आकाश, अन्तरिक्ष और पृथ्वी सर्वत्र मानवीय कल्पना और जीवन से प्रकृति का दैवीकरण हुआ है। एक ओर प्रकृति का प्रत्यक्ष दृश्यबोध है, जिसमें सूर्य, चन्द्र, तारे, सायं, प्रातः, संध्या, लाल नीला आकाश, अन्धकार, प्रकाश, मेघ, पवन, समुद्र, सरिता, विद्युत, वन, वृक्ष, पर्वत, अग्नि, वर्षा, पशु-पक्षी—सभी को चित्रमय और भावमय स्थान मिला है। दूसरी ओर इसमें व्याप्त सत्ता के रूप में इन्द्र, वरुण, उषा, पवन, पृथ्वी, अग्नि, रुद्र आदि देवता हैं। साथ ही इनके माध्यम से वैदिक द्रष्टा, सत्य, अमृत, शक्ति, प्रकाश, ऊर्जा, स्फूर्ति, पराक्रम, संघर्ष, आवेग, सवेग, तृप्ति, क्षमा, मैत्री तथा साहचर्य आदि मानवीय गुणों और प्रत्ययों का आवाहन भी करता है। इस आन्तरिकता को मानव और प्रकृति दोनों के वर्णन में सुरक्षित रखना अपेक्षित है। कवि मानवीय अंग-प्रत्यंग, परिस्थितियों, भावों के सौन्दर्य-विधान के लिए प्रकृति के उपकरणों की बिम्ब योजना करता है। इसी प्रकार प्रकृति में जीवन की व्यंजना के लिए मानवीय प्रतीकों तथा उपमानों की योजना की गई है। भारतीय चेतना के अनुसार मूलतः मानवीय और प्राकृतिक संसारों में समान जीवनी शक्ति प्रवाहित हो रही है। उसने अपनी सौन्दर्य-दृष्टि में सम्पूर्ण को ग्रहण करने का प्रयत्न किया है। उसने साहचर्य और तादात्म्य की भावना को पशु, पक्षी, लता, पादपों में परिव्याप्त देखा है।

सौन्दर्य दृष्टि, प्रकृति से अनुप्राणित होने पर भी वस्तुपरक की अपेक्षा भावपरक अधिक है। प्रकृति और मानव-जीवन की यह समानान्तरता यथार्थ का अनुकरण न होकर उसका उदात्तीकरण है। कला के भौतिक प्रतिमान के कारण प्रकृति सम्वन्धी सर्जनात्मक परिकल्पना में मानव और प्रकृति के बीच गहरी अन्तर्वर्ती एकता और सम्पृक्ति है।

सर्जनात्मक विश्व की अभिव्यक्ति प्रकृति है। सांख्य दर्शन में प्रकृति पुरुष के आकर्षण से सर्जन-विस्तार कर रही है। परम्परा जिस अर्थ में प्रकृति को ग्रहण करती है, उसमें उसने समस्त बाह्य जगत् को, इन्द्रिय-प्रत्यक्ष की रूपात्मकता तथा उसमें

अधिनिष्ठत चेतना के साथ, प्रकृति माना जाता है। प्रकृति के रूप और भाव से मानव युगों से परिचित है उसके आधार पर उसका विकास सम्भव हो सका है।

मानव की यह प्रवृत्ति है कि वह अपरिचित को साम्य के आधार पर जानने का प्रयास करता है। रहस्यमयी भावना के आधार पर एक ओर प्रकृति-शक्तियों को देवत्व के साथ मानवीय आकार और भावनाओं से युक्त कर दिया गया है। दूसरी ओर, इन शक्तियों में एक समान चेतना का भी संचरण भासित हुआ है। अतः आध्यात्मिक साधना में इसी क्रम में क्रियात्मक कारण के रूप में ईश्वर की कल्पना की गई है। भावात्मक विज्ञान से सामंजस्य स्थापित करने के लिए विश्वात्मा की स्थापना हुई है।

इस प्रकार प्रकृति सम्बन्धी रहस्य भावना में प्रकृति के रूप और मानवीय भावना के संयोग से प्रकृतिवाद का विकास हुआ है और मानव रूप तथा प्रकृति चेतना के संयोग से ईश्वरवाद की स्थापना हुई।

मानसिक विकास में भावों की निश्चित रूपरेखा सहजवृत्तियों के आधार पर बन सकी है। जीवन के साधारण अनुभव में देखते हैं कि पशु-पक्षियों का जीवन इन सहज वृत्तियों के आधार पर सरलता से चल रहा है। जीवन की पूर्ण प्रक्रिया मानव-जीवन के समानान्तर है। तनिक से खटके से चिड़ियाँ उड़ जाती हैं। उन्हें आपस में लड़ते भी देखा जाता है। पशुओं-पक्षियों में सहचरण और कलात्मक सहज प्रवृत्तियाँ भी पाई जाती हैं। मानवीय भावों का विकास इनके आधार पर जब होता है, उस समय इनमें वोध का अंश रहता है। इस रूप में इनमें प्रकृति का योग रहता है। सामाजिक तथा आत्मभाव के विकास का सीधा सम्बन्ध प्रकृति से नहीं है। पर सहचरण और स्वानुभूति के अध्यन्तर का रूप प्रकृति के साथ मिल-जुल गया है, जो प्रकृति पर मानवीय आरोप के द्वारा व्यक्त होता है। मानव के कलात्मक भाव ने प्रकृति का अनुकरण करते हुए सौन्दर्य-भाव का विकास किया है।

सौन्दर्य-भाव के विकास की प्रत्येक स्थिति प्रकृति से सम्बन्धित रही है। मानव को प्रकृति के प्रत्यक्ष-बोधों में सुख-दुःख की संवेदना प्राप्त हुई है। उसने प्रकृति का क्रीड़ात्मक अनुकरण किया। उसने कलात्मक निर्माण के लिए प्रकृति से सीखा है। प्रकृति का सम्पर्क किसी भी स्मृति को जगाकर चिन्तित कर सकता है। इसके अतिरिक्त इन भावों की स्थिति में हमारे मन में प्रकृति के प्रति सहानुभूति उत्पन्न हो जाती है।

प्रकृति के सौन्दर्य को कल्पना-मानस से स्वतन्त्र नहीं कर सकते। प्रकृति की सौन्दर्य भावना मनस्परक है, हमारी कलात्मक दृष्टि से सम्बन्धित है। क्रोचे के अनुसार प्रकृति का सौन्दर्य कलाकार की दृष्टि में आता है—प्रकृति कला की समता में मन है और जब तक मानव उसे वाणी नहीं देता, वह मूक ही बनी रहती है। कलाकार प्रकृति को सौन्दर्य दान देता है। प्रकृति का सारा विस्तार सौन्दर्य रूप में नहीं रहता। उसके

प्रत्येक दृश्य को सौन्दर्य की रूपरेखा में बाँधने के लिए चयन करना पड़ता है। हमारा मन चयन करके विभिन्न संयोगों से सौन्दर्य का चित्र पूरा करता है। कलाकार अपने रंगों के संयोग द्वारा सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करता है।

प्रकृति सौन्दर्य के भाव पक्ष में एक प्रभावशाली भावना है। भाव के बिना रूप का अस्तित्व नहीं है। कला जब सौन्दर्य के उपकरणों से सम उपस्थित कर लेती है, तभी सौन्दर्य का जन्म हो जाता है। काव्य में व्यंजना का सबसे अधिक महत्त्व है। अन्य कलाओं में रूपात्मक सौन्दर्य का आदर्श रहता है। संगीत में भाव और उपकरणों का सम सौन्दर्य है। परन्तु काव्य में अभिव्यक्ति मात्र को व्यंग्य का आश्रय लेना पड़ता है। यह ध्यान जब सौन्दर्य की व्यंजना करती है, तभी काव्य का स्वरूप निखरता है।

कवि-चित्रकार शब्दों की रेखाओं से प्रकृति-चित्र मानस-गोचर करता है। उसके शब्दों की रेखाओं में सशक्त निर्देश ही नहीं, वरन् रंगों का विषम संयोग भी उपस्थित होता है। प्रकृति का सारा आकार-प्रकार उसकी वस्तु-स्थिति, परिस्थिति, क्रियास्थिति में प्रकट होता है। इन सबका योग वातावरण बन जाता है। जिसमें हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों से विभिन्न स्थिति, परिस्थिति, क्रियास्थिति प्रकट करते हैं।

प्रकृति की ओर मनुष्य निसर्गतः आकृष्ट होता रहता है। उससे उसकी इच्छाओं की पूर्ति होती है। इस नैसर्गिक आकर्षण का परिणाम यह होता है कि मनुष्य प्रकृति के उन चित्रों को अपने सुख-दुःख के रस से सिक्त कर अभिव्यंजित करता है। प्रकृति भिन्न-भिन्न कलाओं के रूप में प्रकट होकर मानव हृदय को रसायन्त्रित करती है। 'जीवन' के साथ 'प्रकृति' का संसर्ग इतना घनिष्ठ है कि 'जीवन' की समीक्षा करने वाली कला के अन्तर्गत उसका समावेश अपने आप हो जाता है। प्रकृति एवं कला की इसी विशेषता को लक्ष्य करके अनेक विद्वानों ने कला को 'प्रकृति' का ही उपस्थापन अथवा अभिव्यंजन भी बनाया है।

काव्य में या तो बाह्य प्रकृति का चित्रण रहेगा अथवा मानव-प्रकृति का। भारतीय आलंकारिकों ने बहुत पहले से काव्य के क्षेत्र में बाह्यं दृश्य चित्रण की महिमा को स्वीकार करते हुए अपनी महाकाव्यात्मक मान्यताओं में भी प्रकृति-चित्रण अनिवार्य माना है।

प्रकृति मानव की आदि सहचरी है। आदि काल के प्रथम पुरुष ने जब अपने नेत्र खोले होंगे तो उसे सर्वप्रथम प्रकृति का ही साहचर्य और सहयोग प्राप्त हुआ होगा। वैज्ञानिकों का विकासवाद और आस्तिकों की अपौरुषेय सृष्टि की कल्पना दोनों ही इस विषय में एकमत हैं कि मानव ने प्रकृति की विशाल क्रौड में ही जन्म धारण किया था और उसके साहचर्य में अपनी चेतना को क्रमशः विकसित किया। ज्ञान एवं विज्ञान एक-दूसरे के अभिन्न मित्र की भाँति दिखाई पड़ते हैं। वैज्ञानिक प्रकृति के मूल में व्याप्त चेतना का अनुभव करता हुआ उसके रहस्य को समझने का

प्रयत्न करता है, ज्ञानवान् एवं भावुक प्राणी कवि इस प्रकार के वैज्ञानिक विश्लेपण एवं संघर्ष से दूर रहता है तथा काव्य के माध्यम से अपने मन पर पड़े हुए प्रकृति के विभिन्न प्रभावों को व्यक्त करता है।

प्रकृति कृति की जननी है। कृति से अभिप्राय कविता, कला, धर्म, विज्ञान इत्यादि से है। मानव सृष्टि रचनाएँ कृति के अन्तर्भूत हैं और परमात्मा-सृष्टि कृतियाँ प्रकृति में समाविष्ट हैं। प्रकृति अर्थात् प्रकर्ष प्राप्त कृति मानव की कृति की मूल हैं अतएव प्रकृति कविता की जननी है। विश्व का आदिग्रन्थ ऋग्वेद प्रकृति का महाकाव्य है, जिसके पात्र धनदेवता इन्द्र, ऊर्जादेवता अग्नि, रसदेवता सोम, प्राणदेवता मरुसा, जीवनदेवता नदी, साधनदेवता वन, गतिदेवता अश्व हैं। ये अपने अभिधार्थ में भी इस तथ्य को स्पष्ट करते हैं और प्रतीकार्थ में भी। प्रकृति पर जितनी और जैसी उदात्त काव्य सृष्टि ऋग्वेद में प्राप्त होती है, उतनी विश्व साहित्य के अन्य ग्रंथों में नहीं।

आदिकाव्य रामायण के अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड में वन, पम्पासर और लंका के वर्णन प्रकृति-चित्रण के मनोहारी निदर्शन हैं, जिनसे परवर्ती महाकवियों को प्रभूत प्रेरणा प्राप्त हुई है। इनमें विश्व कवि कालिदास प्रमुख हैं। कालिदास ने 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में वन एवं आश्रम के सौन्दर्य एवं 'मेघदूत' में वन और नदी के सौन्दर्य का उत्कृष्ट चित्रण है। 'ऋतुसंहार' तो स्पष्टतः प्रकृति काव्य है। रघुवंश में वन, गौ इत्यादि का चित्रण भी उत्कृष्ट है। 'वाल्मीकि' और 'कालिदास' की प्रेरणा से ही प्रायः सभी परवर्ती हिन्दी-संस्कृत महाकवियों ने प्रकृति-चित्रण में गहरी रुचि दिखाई है। माघ का प्रभात-वर्णन विश्व-साहित्य की एक महान् निधि है।

प्रकृति और कविता का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध सर्वविज्ञान तथ्य है। अधुनातंन बौद्धिकता एवं यान्त्रिकता के अतिरेक ने इस सम्बन्ध में यत्किंचित विक्षेप अवश्य उत्पन्न किया है। फिर भी दोनों में अब तक संगति चल रही है।

विश्व-कवि तुलसी की 'नानापुराणनिगमागमसम्मत' काव्य सृष्टि में प्रकृति-चित्रण का सम्पन्न स्वरूप स्वाभाविक ही है। प्रकृति के अनुपम लीलास्थल में भारत का कोई भी उच्चस्तरीय कवि प्रकृति-चित्रण में गहरी रुचि लिये बिना नहीं रह सकता, क्योंकि प्रकृति जीवन की नाड़ी है और कविता जीवन की समीक्षा।

साहित्य का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि प्रकृति मानस से भिन्न होते हुए भी भाव-जगत् में मानव की अनुरूपता करती प्रतीत होती है। इसके विपरीत विज्ञान मनुष्य को प्रकृति के धरातल पर खींच लाता है। यद्यपि साहित्य का मुख्य विषय मानव ही रहा है, तथापि प्रकृति के सहयोग के बिना मानव की चेष्टाओं और उसकी मनोदशाओं की अभिव्यक्ति भाव-विहीन और नीरस-सी प्रतीत होती है। भागीरथी तट, पम्पातीरवर्ती वनप्रदेश, ऋष्यमूक पर्वत, आश्रम और चित्रकूट के रमणीक दृश्यों के बिना राम-वन-गमन फीका प्रतीत होता है।

यद्यपि प्रकृति मुख्यतः मानवीय भावनाओं की पृष्ठभूमि का ही आधार-स्तम्भ रही है, तथापि कभी-कभी यह अपने स्वतन्त्र रूप में भी हमारे सामने आती है। मनुष्य के विना भी इसके मनोहर दृश्य हमें मुग्ध किए विना नहीं रह सकते। काव्य के सम्बन्ध में कवि के मानसिक पक्ष के दो प्रमुख रूप हैं। विषय-रूप वस्तु-जगत्, जिससे कवि प्रभाव ग्रहण करता है। दूसरा उसी का मानसिक पक्ष और प्रभावस्थिति है। किसी मनःस्थिति के लिए आलम्बन-रूप वस्तु-विषय (प्रकृति) का अस्तित्व आवश्यक है। प्रकृति-राशि सौन्दर्य विभिन्न रूपों में कवि की काव्यानुभूति में योग देता है। स्वतन्त्र प्रकृति-वर्णन को प्रकृति का आलम्बन रूप वर्णन कहते हैं। प्रकृति में मानव के प्रेम का सा प्रतिस्पन्दन नहीं है। चिर-सहभाव के कारण प्रकृति हमारे प्रेम की अधिकारिणी वन आती है। इसके अतिरिक्त यह मानना पड़ेगा कि प्रकृति में एक ऐसी स्वाभाविक शक्ति है जो समय-समय पर हमारे मन में नवीन भावनाओं का संचार करती रहती है। गम्भीर 'मेघगर्जन' मानव को भयभीत करता है। इन्द्रधनुष घटा इसे आनन्दविभोर कर देती है। इस प्रकार उद्दीपन रूप से तो प्रकृति मानव भावनाओं की सहायिका होती ही है। किन्तु आलम्बन में भी भावों का आदान-प्रदान होता है। आन्तरिक भावों के अज्ञात रहने पर भी ओस में रुदन और मेघों में गर्जन सुनाई देता है। मानव प्रकृति की गोद में कभी शान्ति का अनुभव करता है और कभी भय से कम्पित हो जाता है। इससे सिद्ध होता है किं मानव-हृदय में नवीन भावों को उत्पन्न करने की शक्ति प्रकृति में है। मानव की अपेक्षा प्रकृति में प्रतिस्पन्दन कम है। किसी को कष्ट में देखकर चेतन मानव के नेत्र अश्रुपूर्ण हो जाते हैं। प्रकृति में इस संवेदनशीलता का अभाव है।

प्रकृति नियमित रूप से अपना कार्य करती चली जाती है। यह साधारण मनुष्य के लिए जड़ और भावुक कवि के लिए चेतन है। कवि की मनोदशा के अनुसार यह उसके भावों में परिवर्तन करती है। प्रकृति-प्रेमी सहृदय कवि को प्रकृति में चेतना एवं प्रतिस्पन्दन प्राप्त होता है। अतः वह काव्य में प्रकृति का वर्णन करता है।

शास्त्रीय दृष्टि से प्रकृति के प्रति प्रेम का क्या स्वरूप है, यह प्रश्न यहाँ उपस्थित होता है। आरम्भ से ही मानव में सहकार के रूप में प्रकृति के प्रति आकर्षण की भावना विद्यमान है।नगर के कृत्रिम वातावरण में रहने वाले नागरिक गमलों में अथवा क्यारियों में पौधे लगाते हैं। पक्षियों को पिंजड़े में बन्द करके रखते हैं। मनोरंजन के लिए किसी निर्झर के तीर अथवा उपवन में विहार के लिए जाते हैं। इन सब में प्रकृति के प्रति प्रेम की भावना अन्तर्निहित रहती है।

जो केवल प्रकृति के सुन्दर रूप को देखते हैं, वे प्रकृति के सच्चे प्रेमी नहीं हैं। जिनका अन्तःकरण पद-तल में पड़े हुए पुष्प की हीनावस्था से द्रवित नहीं होता, भयंकर मेघ-गर्ज़न और वन्य जन्तुओं की विकट चित्कार जिन्हें प्रभावित नहीं करती,

पत्रशून्य वृक्षावली, बीहड़ पथ, पंकपूर्ण ताल और तप्तवालू-समूह की ओर जो दृष्टिपात नहीं करते, वे प्रकृति के उपासक नहीं हैं, अपितु दर्शक मात्र हैं।

प्राचीन कवियों ने प्रकृति के सुन्दर, विराट् और भयंकर सभी रूपों का विशद वर्णन किया है। वास्तव में काव्य ओर प्रकृति का सहज सम्बन्ध है। प्रकृति के विस्तृत प्रांगण में विचरण करने वाले कवि ही अमर काव्य की रचना कर सके हैं। काव्य का मूल उद्देश्य शेष सृष्टि के साथ मानव-हृदय का रागात्मक सम्वन्ध स्थापित करना है। जीवन दृष्टि की भाँति प्रत्येक कवि की प्रकृति-विषयक चेतना भी उसकी अपनी ही होती है। प्रकृति का भिन्न-भिन्न रूपों में सिंहावलोकन करने और उसके चित्रण के लिए प्रत्येक कवि स्वतन्त्र है।

काव्य-ग्रन्थों का अध्ययन करने पर विदित होता है कि एक ही काल में एक ही वर्ग के कवियों का प्रकृति के प्रति भिन्न दृष्टिकोण रहा है। प्रकृति का जो प्रभाव मानव के मानस-पटल पर पड़ता है, उसकी अभिव्यक्ति कभी आलम्बन रूप में, कभी मानवीकरण के रूप में होती है। इसी से मिलते-जुलते रूप प्रायः कवियों ने निर्धारित कर दिए। वे सभी एक-दूसरे से अत्यधिक मेल रखते हैं। भक्तिकाल में सूर ने अपने उपास्य के सौन्दर्य का वर्णन करने के लिए उपमान रूप से प्रकृति का उपयोग किया है। तुलसी ने श्रीमद्भागवत से प्रभावित होकर प्रकृति में उपदेश और ज्ञान का आधार प्राप्त किया है।

आचार्य दण्डी ने अपने काव्यादर्श का आदर्श ज्ञापित करते हुए यथास्थान उसमें प्राकृतिक दृश्यों के चित्रांकन (समुद्र, पर्वत, चन्द्रोदय, सूर्योदय एवं ऋतुओं के सरस काव्यात्मक चित्रण) को महाकाव्य के प्राणभूत सिद्धान्त के रूप में स्वीकार किया है। इसी प्रकार विश्वनाथ ने भी महाकाव्य के लिए जिन तत्त्वों का होना आवश्यक माना है, उसमें संध्या, सूर्य, चन्द्रमा, दिवस, रात्रि, नदी, सरोवर आदि वांछनीय हैं।

कवि सामाजिक प्राणी है। इसलिए वह जो भी लिखता है उसका सीधा प्रभाव समाज पर पड़ता है। यह उसका दायित्व है कि समाज की सीमाओं और मर्यादाओं का ध्यान रखे। कवि प्रकृति का वर्णन अपने काव्य में करता है और समाज की मर्यादाओं का भी ध्यान रखता है। इसलिए प्रकृति-वर्णन भी सामाजिक मान्यताओं और नीतियों के अनुकूल होना चाहिए। तुलसी काव्य में प्रकृति चित्रण नैतिक मान्यताओं का प्रतिरूप है। कवि का प्रकृति-चित्रण सौन्दर्य युक्त होता है और उसमें पूर्ण आकर्षण होता है, वह अप्रत्यक्ष रूप से समाज की विचारधाराओं और मान्यताओं का प्रतिरूप भी होता है।

इस प्रकार प्रकृति-चित्रण और समाज का चित्रण दोनों एक-दूसरे पर आश्रित और आधारित हैं। दोनों का सन्तुलित चित्रण ही कवि का उद्देश्य होता है। विशुद्ध प्रकृति-चित्रण काव्य का प्राण है, परन्तु यह चित्रण बहुत विशद हो तो अपना प्रभाव

खो देता है और इसी प्रकृति-चित्रण में यदि विशुद्ध सौन्दर्य और उपदेश का समन्वय हो, तो वह ग्राह्य हो जाता है। इस प्रकार कवि का कार्य केवल प्रकृति-चित्रण या सौन्दर्य-मात्र नहीं होता अपितु उसका सामाजिक दायित्व उसके साथ सदा ही संलग्न रहता है।

प्रकृति और समाज एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। तुलसी काव्य में इसका सुन्दर संगम दृष्टिगोचर होता है। तुलसी अपने युग के महान् विचारक थे। इनके प्रत्येक वर्णन में मर्यादा, सरसता और सरलता है। इसीलिए भक्तिकालीन कवियों में इन्हें श्रेष्ठ कवि माना जाता है। कबीर विरोधी विचारधारा के थे। वे एकदम से समाज का उद्धार करना चाहते थे और इसलिए उन्होंने विरोधी वाणी को अपनाया। अंधविश्वासों, रूढ़ियों की निन्दा की, जो कि प्रकारान्तर में सबको मान्य न हो सकी क्योंकि उनके काव्य में विनय का अभाव था। जायसी युग के सूफी कवि भी अपनी मान्यताएँ पूर्ण रूप से न छोड़ सके और समाज को काव्यों के अतिरिक्त कोई ठोस विचारधारा न दे सके। उनका वर्ग भी सीमित था।

सूर तो निराले भक्त कवि थे। जिन्हें कृष्ण-भक्ति के अतिरिक्त संसार में कोई सार नहीं दिखाई देता था। केवल तुलसी ही ऐसे कवि हैं, जिनमें कबीर, जायसी, सूर—तीनों कवियों की विशेषताएँ एक साथ मिलती हैं। कबीर की तरह वे अंधविश्वासों एवं रूढ़ियों के विरोधी थे। जायसी की तरह प्रेम के समर्थक और सूर की तरह भक्ति रस से ओतप्रोत वे समाज का सुधार करना चाहते थे। तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था को देखकर उनका हृदय द्रवित हो जाता था। इसीलिए उनके काव्य में नीति, धर्म, आदर्श, सामाजिक व्यवस्था, सभी का वर्णन मिलता है। रामकथा के माध्यम से वह आदर्श सामाजिक व्यवस्था को लाना चाहते थे।

तुलसी ने राम को अपने काव्य का नायक बनाया है। जो काव्य किन्हीं मर्यादाओं का भी पालन करता हुआ प्रस्फुटित होता है, उसमें भावना और कल्पना की उड़ानों के लिए क्षेत्र मर्यादा के अन्दर रहकर ही मिल सकता है। उसमें भावना का वह साम्राज्य स्थापित नहीं हो सकता, जिसमें मर्यादा का एकदम लोप हो जाए। वनिताएँ अपने पतियों को खाना परोसना छोड़कर मुरली की तान में लीन होकर लोक-लाज से किनारा करती हुई यमुना के तीर पर पहुँच जाएँ। वहाँ चीर-हरण जैसी लीलाओं का वर्णन हमें नहीं मिल सकता। तुलसी काव्य में तो धर्म की एक व्यवस्था है, समाज की एक व्यवस्था है, राज्य और समाज की भी व्यवस्था है।

तुलसी ने अपने विचार, कल्पना और अनुभूति का आश्रय लेकर एक राज्य व्यवस्था कायम की है। समाज के नियमों और आदर्शों को मान्यता दी है, नीति को अपनाया है। अपने समय की प्रचलित सभी आर्य धर्म की मान्यताओं में सामंजस्य स्थापित करके एक सामान्य भक्ति-मार्ग की मर्यादावादी परम्परा का उत्थान करके

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने काव्य में अपनी वौद्धिकता का उत्कृष्ट उदाहरण पेश किया है।

तुलसी ने ही प्रकृति को नीति का माध्यम बनाया था। प्रकृति केवल सौन्दर्य युक्त ही नहीं है वरन् एक शिक्षक भी है। प्रकृति के नियम मानकर नियमों की अपेक्षा पूर्ण सत्य होते हैं। प्रकृति नायक-नायिका के भावों का आवरण बनती है न कि उनके भावों को हमेशा उद्दीप्त करती रहती है–

लता भवन ते प्रकट मैं तेहि अक्सर दोउ भाई।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु, अलद पटल जिलगाई।

इस भावनात्मक चित्रण में कवि ने सीता और राम के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए प्रकृति के माध्यम से मर्यादा की लीक को निभाया है। प्रेम का प्रदर्शन भी कवि ने खुलकर नहीं किया है। तुलसी ने स्थान-स्थान पर भावना की मानसिक दशाओं और भावनाओं के साथ-साथ प्रकृति के अन्दर पैठने का सफल प्रयास किया है। प्रकृति के सजीव चित्रणों के साथ-साथ पशु-पक्षियों को भी अछूता नहीं छोड़ा है–

हाय गय, कोटिन्हि केलि मृग, पुर पशु चातक मोर
पिक रथांक सुक सारिका, सारस हंस चकोर।

विप्रलम्भ शृंगार के अन्तर्गत प्रकृति का अनूठा प्रयोग तुलसी ने किया है जो परम्परागत होते हुए भी नवीन है–

हे खग मृग हे मधुकर श्रेणी। तुम देखी सीता मृगनैनी।

प्रकृति के माध्यम से कवि ने अलंकारों का भी सुन्दर प्रयोग किया है। तुलसी ने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा का सुन्दर प्रयोग अपने काव्य में किया है। छोटे-छोटे निरंग और परम्परित रूपकों के अतिरिक्त बड़े-बड़े सांगरूपकों का भी प्रयोग कवि ने मानस, गीतावली और विनयपत्रिका में किया है। इन लम्बे-लम्बे सांगरूपकों में सादृश्य ओर साधर्म्य का आद्योपान्त निर्वाह हुआ है। प्रकृति के माध्यम से गम्भीर विषयों को सरल बनाने में कवि को सफलता मिली है। इनमें मानस रूपक करुणा सरिता, रघुवर, बाल सूर्य, प्रयागराज, अहेरी, चित्रकूट, कविता, सरिता, भक्ति-मार्ग, विशेष उल्लेखनीय है। सभी में प्रकृति की सहायता कवि ने पूर्ण रूप से ली है–

नील सरोरुह नील मनि, नील नीलधर स्याम प्रतप्स

चाहे दर्शन के सम्बन्ध में कुछ कहना हो या कोई उपदेश देना हो, कवि ने प्रकृति का आश्रय अवश्य लिया है। मानस का किष्किन्धाकाण्ड नैतिक प्रकृति-चित्रण का अनूठा प्रयोग है। यहाँ कवि को ऋतुओं का सौन्दर्य ही मान्य नहीं है वरन् उन ऋतुओं में होने वाली घटनाओं से शिक्षा ग्रहण की है। दोहावली में भी पेड़, पशु-पक्षियों द्वारा कवि ने अपने नैतिक विचार व्यक्त किए हैं। इन प्राकृतिक घटनाओं और क्रियाकलापों में कवि ने जीवन का सत्य खोजा है और उन्हें ही प्रमाण माना है।

'चातक' और 'कमल' से कवि विशेष रूप से प्रभावित है। चातक उनके प्रेम का प्रतिनिधि है। सन्तों की स्तुति और असन्तों की निन्दा की है। इनकी प्रवृत्तियाँ प्रदर्शित करने के लिए कवि ने शुद्ध आचरण वाले और कुटिल आचरण वाले पशु-पक्षियों व पौधों का आश्रय लिया है। चन्दन, कल्पवृक्ष, हंस शुद्धता के और केला, वाँस, करील, कौआ अशुद्धता के प्रतीक माने हैं।

तुलसी की सामाजिक विचारधारा उनका प्रकृति-वर्णन अत्यन्त मर्यादित है। उन्होंने आदर्श सामाजिक व्यवस्था, आदर्श मानव सम्बन्धों, रीति-रिवाजों की कल्पना की है, जो कि सूर, जायसी, कबीर के काव्यों में विद्यमान नहीं है। तुलसी सबका कल्याण चाहते थे। उनके किसी भी वर्णन में अतिशयोक्ति या अश्लीलता नहीं है।

राम और सीता का प्रेम सात्विक है। सूर की तरह सब कुछ भुलाने वाला नहीं है। न ही जायसी के समान रत्नसेन की कठिन यात्रा के रूप में है, न तो रत्नसेन के समान राम सीता के दर्शन करके मूर्च्छित ही होते हैं। न सीता राम से मिलने के लिए उन्हें राधा के समान सर्प का विष उतारने वाला बतलाकर ही साँप काटे का बहाना करती है। पति-पत्नी का प्रेम सहज मर्यादा और सामाजिक व्यवस्था के अनुकूल है, जो अन्य भक्तिकालीन कवियों में दुर्लभ है।

तुलसी के किसी भी वर्णन में अस्वाभाविकता नहीं आई है। विरह में जायसी जैसी वीभत्सात्मकता नहीं है। यहाँ न तो 'रक्त के आँसू' ही गिरते हैं और न हाड़ ही संख वनते हैं, न ही सूर की राधा एवं सखियों की तरह विरह में पत्थर बना जाता है। विरह की पराकाष्ठा है किन्तु मर्यादा का बहिष्कार कहीं भी नहीं है।

तुलसी का काव्य अन्य भक्त कवियों की अपेक्षा संयत, सुन्दर एवं ग्राह्य है। उस समय की सामाजिक व्यवस्था के प्रति कवि पूर्ण जागरूक था और अपने ढंग से उसे आदर्श रूप देने का कवि ने पूर्ण प्रयत्न किया है, जो कि भक्तकालीन अन्य कवियों ने नहीं किया।

तुलसी का प्रकृति वर्णन भी अपने में अनूठा है। उसमें सौन्दर्य के साथ-साथ नीति का संगम भी अद्वितीय ढंग से हुआ है। केवल सौन्दर्य वर्णन अथवा पाण्डित्य-प्रदर्शन के लिए प्रकृति वर्णन नहीं किया, जैसे कि अन्य भक्त कवियों ने किया है। सूर को केवल प्राकृतिक सौन्दर्य अभीष्ट है और जायसी का प्रकृति वर्णन पाण्डित्यपूर्ण है। कबीर के काव्य में प्रकृति वर्णन अपेक्षाकृत कम है। इस प्रकार तुलसी का काव्य सर्वश्रेष्ठ है जिसमें संपूर्ण विचारधाराओं का पूर्ण सन्तुलन है और यह किसी भी सामाजिक व्यवस्था के अनुकूल है तथा इसीलिए पूर्ण ग्राह्य भी है। उनका काव्य कवीर की तरह नीरस भी नहीं है। उसमें प्रकृति का सौन्दर्य पर्याप्त है। इसीलिए कवि का नैतिक उपदेश प्राकृतिक सौन्दर्य से ओतप्रोत है। इसीलिए वह भी पूर्ण ग्राह्य है।

तुलसी पूर्णतः लोकनायक थे। उन्होंने जनजीवन की भावनाओं का सदा आदर

किया और उनका सही मार्गदर्शन किया, जिससे साधारण जन अपना जीवन और अच्छे रूप से व्यतीत कर सकें। मनुष्य के हृदय में उस अनन्त सौन्दर्य की अभिलाषा बनी रहती है और इस कारण वह उसके प्रतिबिम्ब के प्रति, सीमित सौन्दर्य के प्रति अनिवार्य रूप से आकर्षित हो जाता है। कलाकार तथा साहित्यकार को मनुष्य की इस स्वाभाविक सौन्दर्य-पिपासा को बनाए रखना तथा इसका उदात्तीकरण करना चाहिए। उसी में कला की सार्थकता है। इस कसौटी पर तुलसी का साहित्य खरा उतरता है–

कीरति मनित भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सज कहं हित होई।

लोक संग्रह की भावना उनके साहित्य की प्रमुख विशेषता है। इस दृष्टि से तुलसीदास राम काव्य परम्परा के सर्वोत्तम प्रतिनिधि हैं। उन्होंने रामचरित के माध्यम से जिस भक्ति-मार्ग का प्रतिपादन किया है, उसमें नैतिकता तथा भक्ति के अनिवार्य सम्बन्ध पर बहुत बल दिया गया है। तुलसी ने धर्म के क्षेत्र में तर्क की सीमाओं का सुस्पष्ट शब्दों में उल्लेख किया है। 'वाक्य ज्ञान अत्यन्त निपुण भल पार न पावे कोई, निसि गृह मध्य दीप की बातन्ह तमनिवृत्त महिं होई' में निरे कर्मकाण्ड की व्यर्थता तथा 'जोग जप विराग तप सुतीर्थ अटत। बोधिमैं को मात्र गयंद रेनु की रज बटत' कहकर भक्ति-मार्ग की आडम्बरहीनता पर बल दिया है। भक्त में चातक की एकनिष्ठता के साथ-साथ हंस का विवेक भी होना चाहिए। तुलसी को दृढ़ विश्वास था कि मनुष्य का कल्याण तभी सम्भव है, जब वह परमात्मा के अनुकूल आचरण करता है। इसीलिए उन्होंने गहरी सौन्दर्यानुभूति तथा असाधारण काव्य-सौन्दर्य विकसित करने का प्रयास किया है। राम के अनन्य भक्त तुलसी ने समझ लिया था कि भगवान के प्रति अनन्य भाव ही भक्ति की कसौटी है।

तुलसीदास का मूल प्रतिपाद्य राजनीति नहीं था। अतः उनकी रचनाओं में किसी राजनीतिक सिद्धान्त की आशा व्यर्थ है। परन्तु अपने युग के जीवन और शासन की विषमताओं को देखकर तथा भारत की पूर्ववर्ती उत्तम व्यवस्था से तुलना करके उनके मन में आदर्श समाज की स्थापना की एक उत्कट इच्छा थी। इस आदर्श समाज की झलक उन्होंने 'रामचरितमानस' में वर्णित 'रामराज्य' के प्रसंग में दिखाई है। इसी के साथ युगीन विकृतियों और विषमताओं का वर्णन भी किया है। यह वर्णन आज भी हमारे युग के लिए सटीक बैठता है।

शासक के लिए दण्ड के साथ-साथ शांति, भेद और पुरस्कार की भी आवश्यकता होती है। तुलसी के राम ने राजनीति के इन सभी अंगों का पालन किया। उन्होंने कैकेयी, दशरथ, भरत, सुग्रीव, हनुमान के साथ-साथ शान्ति और समझौते की नीति का पालन किया। सुग्रीव और विभीषण के प्रसंग में दान, प्रलोभन तथा भेद डालने की नीति का पालन किया।

राजा का धर्म है अपनी प्रजा की रक्षा करना। इसीलिए राम प्रत्येक तपस्वी मुनि के पास गए और उन्हें निर्भय होकर तप करने का आश्वासन भी दिया। तुलसी यह मानते थे कि राजा का प्रमुख कर्तव्य प्रजा का पालन और उसे सुखी बनाना है। इस मूल भावना को लेकर तुलसी ने एक आदर्श राजा या शासक के रूप में राम का चित्रण किया है। राम का सारा जीवन त्यागी, उदार और समाज का हित करने वाले पुरुष का जीवन है। उन्होंने अपने सुख की कभी चिन्ता नहीं की।

दशरथ ने युवराज नियुक्ति के समय स्वेच्छाचारी राजा के समान स्वयं निश्चय नहीं लिया, अपितु मन्त्रियों को बुलाया और उनसे प्रजा की इच्छा जानकर राम का राजतिलक करने का निश्चय किया। रामराज्य में कोई स्त्री विधवा नहीं थी, वर्षा समय पर होती थी, खेती खूब फलती-फूलती थी। राम के राज्य में न कोई पानी में डुबता था और न कोई आग में जलता था। राम के समय के सामाजिक चित्रण का पूर्ण चित्रण हमें गोस्वामी जी के काव्य में प्राप्त होता है।

तुलसी काव्य भक्ति-विवेचन और भक्ति-दर्शन के लिए प्रसिद्ध है। 'नवधा भक्ति' में 'रागात्मिका' और 'वेधी' दोनों का समन्वय हुआ है। तुलसी ने अपने भक्ति-विषयक विवेचन में भी नौ प्रकार की नवधा भक्ति का वर्णन रामचन्द्र के मुँह से करवाया है। तुलसी की ईश्वर के प्रति सच्ची आस्था थी, इसलिए रागात्मिकता भक्ति की ओर उनका झुकाव स्वाभाविक था। आनन्द प्राप्ति के लिए ही भक्ति की जाए यही तुलसी को अभीष्ट था—भगवत् तन्मयत्व ही जीव का मोक्ष है।

तुलसी को सगुण राम ही भजनीय है। यद्यपि प्रभु के अनेक नाम हैं तथापि तुलसी ने राम नाम को अधिक महत्त्वपूर्ण माना है। वैदिक कर्मानुसार ज्ञान, कर्म, उपासना आदि सब विधान सच्चे हैं, किन्तु तुलसीदास को सर्वत्र राम ही राम दिखते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी कहा है—"गोस्वामी जी की भक्ति पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी सर्वांगपूर्णता। जीवन के किसी पक्ष को सर्वथा छोड़कर वह नहीं चलती। सब पक्षों के साथ उसका सामंजस्य है, न उसका धर्म या कर्म से विरोध है, न ज्ञान से।"

भारतीय दार्शनिकों की भाँति तुलसी ने मोक्ष प्राप्ति के लिए ज्ञान-मार्ग और भक्ति-मार्ग का निरूपण किया है। तुलसी संसार को मिथ्या मानते हैं तथा मानवीय गुणों को अत्यधिक महत्व देते हैं। जीवन के प्रवाह में सत् और असत् के अस्तित्व को तुलसी ने स्वाभाविक माना है। सत् प्रभाव की परिणति में अपूर्व अद्भुतता होती है। असत् संस्कार के प्राणी भी सत्प्रभाव के दिव्य ज्योतिर्दर्शन के आदर्श के चरमोत्कर्षोज्ज्वल, वन्दनीय प्रतीक बन जाते हैं। तुलसी-काव्य में नारी-चरित्र का भी उज्ज्वल एवं सात्विक रूप प्राप्त होता है। तुलसी के समकालीन साहित्य में नारी-निन्दा प्रचुरता से है। नारी के कामोत्तेजक रूप की निन्दा सर्वत्र की गई है। तुलसी काव्य में नारी-विरोधी

वक्तव्य भी हैं। वहाँ कवि अपनी ओर से कुछ न कहकर प्राचीन मतों का उल्लेख करता है। कवि तुलसी के विचारक एवं सहृदय स्वरूप में अन्तर है। सहृदय तुलसी ने नारी-सौन्दर्य की कमनीयता, तेजस्विता एवं प्रभविष्णुता का अनूठा चित्रण किया है किन्तु विचारक के रूप में वे नारी सामान्य को श्रेष्ठ नहीं समझते। माता, पत्नी आदि रूपों में नारी 'देवी' है। परन्तु जो 'केवल नारी' है वह लोकमंगलकारिणी नहीं है। इसके अतिरिक्त जीवन में कोई मंगल कृत्य बिना 'नारी सुमंगल गान' के पूर्ण नहीं होता। तुलसीदास ने नारी-पुरुष दोनों के अवगुणों को पात्रों के अनुसार उनके मुख से कहलाया है।

'तुलसी-काव्य में प्रकृति-चित्रण' नामक शोध-प्रबन्ध में मैंने प्रयास किया है कि तुलसी काव्य में विखरी हुई प्रकृति को पूर्ण रूप से प्रदर्शित कर सकूँ। कहीं वह वर्णन परंपरागत है और कहीं परंपरामुक्त। प्रकृति के सभी रूप तुलसी में विद्यमान हैं। कई आलोचकों के अनुसार तुलसी में प्रकृति का आलम्बन रूप नहीं है, लेकिन ऐसी बात नहीं है। यदि कवि कुछ कह रहा है और आन्तरिक रूप से केवल प्रकृति-वर्णन ही उसका उद्देश्य है तो वह प्रकृति का आलम्बनात्मक रूप होगा, भले ही वह पूर्ण विशुद्ध न हो। राम की माता राम को जगाती है और कहती हैं कि सूर्य उदय हो गया, मुर्गे बोलने लगे, तारे क्षीण होने लगे हैं, अब उठो तो यह प्रकृति का आलम्बनात्मक रूप है, क्योंकि प्रभाव का सरल चित्रण कवि ने राम की माता द्वारा करवाया है। इसी प्रकार चित्रकूट की शोभा का वर्णन भी प्राकृतिक सौन्दर्य से ओतप्रोत है, यद्यपि पृष्ठभूमि में रामभक्ति ही प्रमुख है, क्योंकि उन्हीं के आगमन के कारण चित्रकूट की शोभा द्विगुणित हो गई है। प्रकट में चित्रकूट के सौन्दर्य का प्राकृतिक वर्णन कहीं-कहीं पूर्ण आलम्बन रूप में है।

इसी प्रकार प्रकृति का उद्दीपन रूप भी अपने मर्यादित रूप में रामकाव्य में उपलब्ध है। पुष्पवाटिका में रामसीता के मिलन के समय का प्राकृतिक-वर्णन उद्दीपनकारी है। सीता हरण के पश्चात् राम को प्रकृति विपरीत दिखाई देती है। वहाँ प्रकृति का वर्णन भी अभूतपूर्व है। सीता को भी अशोक वन में सूर्य शीतल और चन्द्रमा उष्ण लगता है। कमल, हरिण, खंजन आदि प्रसन्न होते हैं, क्योंकि पहले सीता के पास ये सब वस्तुएँ थीं और उनकी शोभा इन वास्तविक पशु-पक्षियों से अधिक थीं, लेकिन सीता के वियोग के कारण इनका प्रभाव फिर बढ़ गया।

तुलसी काव्य में चित्रकूट, ऋष्यमूक, महेन्द्राचल, दण्डकवन, पुष्पवाटिका एवं अशोक वाटिका का चित्रण है। चित्रकूट में राम की महिमा को ही अप्रत्यक्ष रूप से स्पष्ट किया गया है। राम के सम्पर्क से ही उसे गौरव प्राप्त हुआ है। ऋष्यमूक पर्वत के विषय में केवल एक पंक्ति में उल्लेख हैं। महेन्द्राचल से हनुमान कूदे थे। केवल इतना भर कहा गया है—'सिन्धु तीर एक भूधर सुन्दर'। दण्डकवन की भयानकता का

वर्णन है। पुष्पवाटिका का वर्णन आलम्बनात्मक है। अशोक वाटिका का वर्णन वियोग उद्दीपनार्थक है।

रामकाव्य में अनेक सर-सरिता-सागरों का उल्लेख है। तुलसी-काव्य में पम्पा सरोवर का अत्यल्प वर्णन है। इस वर्णन में प्रधानता धार्मिक भावाभिव्यक्ति की है। 'मानस' में गंगा, यमुना, तमसा, सरस्वती, मन्दाकिनी, गोदावरी आदि का उल्लेख है, इनका विस्तृत वर्णन नहीं पाया जाता। इस प्रकार कवि ने अपनी रुचि और भावानुसार ही प्रकृति-चित्रण किया है। तुलसी ने अधिकांशतः अपने अलंकारों के उपमान प्रकृति से ग्रहण किए हैं।

'तुलसी-काव्य-में प्रकृति-चित्रण' नामक शोध-प्रबन्ध में तुलसी-काव्य में उपलब्ध प्रकृति के आलम्बनात्मक, उद्दीपनात्मक, उपदेशात्मक, आलंकारिक, बिम्बात्मक दार्शनिक रूपों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है। उनका प्रकृति-चित्रण कितना परम्परायुक्त है और कितना परम्परामुक्त इस ओर भी विशेष ध्यान दिया गया है।

तुलसी की चातक के प्रति निष्ठा है। तुलसी-काव्य में प्राकृतिक बिम्ब यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। उनका वर्णन भी मैंने अपने शोध-ग्रन्थ में किया है। तुलसी मर्यादा के समर्थक हैं, अतः उनका प्रकृति-चित्रण भी मर्यादित होगा। तुलसी नीति के समर्थक थे तो उसी प्रकार उनका प्रकृति-वर्णन भी नैतिक मूल्यों का ही प्रतिरूप बन गया। तुलसी का प्रकृति वर्णन विशिष्ट स्तरीय है। वह अपने आप में पूर्ण मौलिक है। तुलसी का प्रकृति चित्रण अपने आप में कवि के विचारों का प्रयोग काव्य को उत्कृष्ट बनाने के लिए किया है, उसका प्रकृति वर्णन केवल महाकाव्य के लक्षणों की पूर्ति मात्र ही नहीं है।

तुलसी ने प्रकृति के आलम्बन रूप का चित्रण किया है। यह चित्रण सहज स्वाभाविक है। राम को प्रातःकाल माँ उठाती है, उस समय प्रभात का चित्रण सरल, सरस व प्रतिबिम्बमय है। प्रभात का सारा दृश्य और माँ का सरल वात्सल्य मूर्त हो जाता है। उस वर्णन के लिए कवि ने न ही कल्पना की और न ही क्लिष्ट भाषा व शब्दों का प्रयोग किया है। सरल शब्दों में सरल प्रातःकाल का यथातथ्य वर्णन है। उसमें कवि का कौशल या सप्रयास वर्णन कहीं भी दिखायी नहीं देता। यही तुलसी के प्रकृति वर्णन की सबसे बड़ी विशेषता है। चित्रकूट वर्णन के प्रसंग में कवि का ज्ञान पूर्णतः प्रकाशित हुआ है। कवि ने विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधों का नाम गिनाया है, उनका वर्णन नहीं किया केवल नामोल्लेख किया है जो कि चित्रकूट की समृद्धि का प्रतीक है। इस प्रकार उन्होंने प्रकृति के आलम्बन रूप के अन्तर्गत ऋतुओं, चन्द्रमा, प्रातःकाल, वनादि का वर्णन किया है। यह वर्णन विशद नहीं है वह प्रकृति की खोजबीन नहीं करती अपितु सतही तौर पर उसका स्पर्श करते हैं।

तुलसी मर्यादा के समर्थक थे। इसलिए उनके काव्य में प्रकृति भावों की

उद्दीपक तो हुई है लेकिन इतने छिपे हुए और सुन्दर ढंग से कि मर्यादा और प्रेम में अन्तर ही दृष्टिगोचर नहीं होता। सीता का लता की ओट से दोनों भाइयों को देखना, मृग देखने के बहाने राम के दर्शन करना; इन सबमें सीता के सात्विक प्रेम की अनुभूति दिखाई देती है। प्रकृति प्रेम में सहायक अवश्य है लेकिन वह लज्जा के आवरण को नहीं छोड़ती। इसीलिए राम जब सीता के सौन्दर्य का वर्णन करते हैं तो स्पष्ट रूप से नहीं अपितु कुन्दकली, दाड़िम, कमल आदि के माध्यम से सीता के अद्वितीय सौन्दर्य को प्रदर्शित करते हैं। प्रकृति का उद्दाम वर्णन कहीं भी तुलसी ने अपने काव्य में नहीं किया है।

विरह में भी राम और सीता व्यथित तो अवश्य हैं लेकिन बेसुध नहीं हैं। राम अवश्य सब पेड़-पौधों से सीता के विषय में पूछते हैं, लेकिन इसमें कामातुरता नहीं अपितु प्रिया की रक्षा का भाव अधिक है। संयोग के समय की वर्षाऋतु, अब वियोग में दुःखदायी है। सीता वियुक्त राम को वर्षाऋतु प्रिय नहीं लगती अपितु कष्ट देती है। उसी प्रकार सीता को भी चन्द्रमा अग्निवर्षक और सूर्य शीतल लगता है। यह विरह का पारंपरिक वर्णन है। जिसमें सब प्राकृतिक वस्तुएँ जो संयोग में सुखदायी होती हैं वियोग में कष्टप्रद हो जाती हैं। लेकिन राम और सीता प्रकृति प्रदत्त कष्टों को सहते हैं और वियोग की अवधि पूरी करते हैं। तुलसी ने वियोग में प्रकृति वर्णन को कहीं भी अस्वाभाविक नहीं होने दिया। बिहारी और सूर की नायक-नायिकाओं की तरह उनका प्रकृति वर्णन वियोग में हास्यास्पद नहीं हुआ है वरन् गरिमायुक्त ही रहा है। वियोग में भी तुलसी का प्रकृति वर्णन पूर्णतः संश्लिष्ट और मर्यादापूर्ण रहा है।

तुलसी ने सर्वप्रथम प्रकृति को नैतिक मूल्यों से परिपूर्ण प्रदर्शित किया था। यद्यपि प्राचीन हिन्दी कवियों ने हमेशा अपनी विचारधारा को पुष्ट करने के लिए प्राकृतिक प्रमाणों का ही आश्रय लिया था लेकिन तुलसी ने जैसा विशद, और सांगोपांग भौतिक प्रकृति चित्रण किया है वैंसा अन्यत्र दुर्लभ है। 'किष्किन्धाकाण्ड' तो नैतिक प्रकृति चित्रण का मार्गदर्शक ही माना जा सकता है। अन्य कवियों को सर्वथा ऋतुओं का सौन्दर्य ही प्रिय होता है किन्तु तुलसी ने उसमें ज्ञान का असीम भण्डार देखा। प्रकृति के माध्यम से ही तुलसी ने अपने काव्य में सन्त स्तुति, आन्त निन्दा, परोपकार, दानशीलता, सहायता, एकता, आदर आदि सद्गुणों पर प्रकाश डाला है जो अपने आप में पूर्ण है और साधारण व्यक्ति के लिए भी ग्राह्य है। उनके प्राकृतिक उदाहरण प्रमाणपुष्ट, सरल, सुन्दर और शाश्वत है। जिनका प्रयोग मानव मात्र का कल्याण ही है। मानव की भावनाओं को जितनी सरलता, सूक्ष्मता और दक्षता से तुलसी ने प्रकृति के माध्यम से उद्वेलित किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। एक बार पढ़ने पर पाठक सोचने पर विवश हो जाता है कि जीवन मूल्यों में से कौन से उसे ग्रहण करने चाहिए और कौन से छोड़ देने चाहिए। यही तुलसी के नैतिक काव्य की

सबसे बड़ी उपलब्धि है। ज्ञान के सूक्ष्म रहस्यों को प्रकृति की साधारण घटनाओं द्वारा पाठक को सरलता से ग्रहण कराया है।

काव्य में चमत्कार उत्पन्न करने में भी प्रकृति कवि का पूर्ण सहयोग करती है। तुलसी ने अधिकांश उपमान प्रकृति से ही ग्रहण किए हैं। 'कमल' तुलसी का सर्वाधिक प्रिय उपमान है। अपने आराध्य राम सीता के सौन्दर्य, कोमलता को प्रदर्शित करने के लिए कवि ने सर्वाधिक प्रयोग कमल का ही किया है।

'चातक' भी कवि के प्रेम का प्रतिनिधि हैं। चातक जैसा बनने की भी कवि प्रेरणा देता है और इसी तथ्य को अलंकारों के माध्यम से कवि ने स्पष्ट किया है। प्रकृति विषयक कवि के 'सांगरूपक' जगत् प्रसिद्ध हैं। उनके अलंकार कहीं भी सप्रयास और पाण्डित्य प्रदर्शन को प्रदर्शित नहीं करते। प्रकृति विपयक अलंकार स्पष्ट, सरल व सुन्दर है। कवि ने प्रकृति के सुन्दर रूपों की उत्प्रेक्षा की है और उनका सुन्दर वर्णन अपने काव्य में किया है। तुलसी काव्य समन्वयवादी काव्य हें। इसीलिए उनके काव्य में प्रकृति, भाव और अलंकार का सुन्दर वर्णन है। जो कहीं भी कृत्रिम नहीं लगता।

तुलसी ने अपने काव्य में दार्शनिक रहस्यों को भी प्रकृति के माध्यम से स्पष्ट किया है। पशु-पक्षी सभी रामनाम से प्रभावित है। राम विमुख की समता मूर्ख पशु-पक्षियों और राम-भक्त मनुष्यों की तुलना सयाने पशु-पक्षियों से की है। पतंगे और हिरन के मोह को प्रदर्शित करके माया के विषय में कवि ने अपने विचार प्रकट किए हैं। चातक द्वारा एकनिष्ठ भक्ति का सन्देश दिया है। अज्ञान को रात्रि और ज्ञान को प्रकाश माना है। ब्रह्म सूर्य रूप प्रकाशवान और शक्ति के स्रोत हैं। चमकीली सीप चाँदी जैसी दिखाई देती है, इस उदाहरण द्वारा भ्रम की सुन्दर व्याख्या कवि ने की है। इसी प्रकार प्रकृति के माध्यम से कहे गए कुछ सुभाषित वाक्यों का भी अन्त में संकलित किया है। तुलसी ने प्रकृति को हर रूप में ग्रहण किया है। उनका प्रकृति वर्णन कल्याणकारी और सात्विक है। उनका प्रकृति वर्णन बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार के सौन्दर्य से विभूषित है।

प्रकृति के नियम सरल, सुन्दर व शाश्वत होते हैं। प्रकृति का मानव संस्कारों पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। प्रकृति से ही मानव-जीवन के रहस्य समझे जा सकते हैं। ईश्वर एक कल्पना है लेकिन प्रकृति उस कल्पना का मूर्त रूप है। प्रकृति ईश्वर के समीप ले जाने का एक साधन है। प्रकृति की शरण में आकर ही मनुष्य को पूर्ण शान्ति मिलती है। व्यक्तिगत गुणों का बहुत महत्व है क्योंकि व्यक्ति से ही समाज बनता है। जिस समाज में गुणी व्यक्ति अधिक होते हैं, वह समाज उन्नति करता है। समाज अपने आप में कुछ नहीं है व्यक्तियों से ही उसका अस्तित्व है। इसलिए तुलसी ने व्यक्तिगत गुणों पर अत्यधिक बल दिया है। इसमें उन्होंने प्रकृति

से पूर्ण सहयोग लिया है।

तुलसी ने प्रकृति के माध्यम से सद्गुणों का विकास संगति की महिमा, कुटिलता की बुराई, ऊँच-नीच का अन्तर, मधुर वचनों की महिमा, अहंकार की निरर्थकता, कटु वचनों का परिहार आदि का वर्णन किया है।

जिस प्रकार बगुला हंस नहीं बन सकता, उसी प्रकार कुटिल मनुष्य अभिनय करने पर भी सद्आचरण वाला नहीं बन सकता। संसार में सब छोटे-बड़े अपने कार्य में निपुण हैं जैसे चींटी रेत से शक्कर निकाल लेती है, मछली पानी में नहीं डूबती। इस प्रकार कर्म बड़ा होता है शरीर छोटा होता है। तुलसी ने हर बार प्राकृतिक नियमों के क्रियाकाल द्वारा व्यक्ति के संस्कारों को परिष्कृत करने का प्रयत्न किया है।

हरिण, पतंगे की तरह मन को तृष्णा में लिप्त नहीं करना चाहिए। तृष्णा से विनाश अवश्यंभावी है, जिस प्रकार मोह में पड़कर हरिण और पतंगा अपना जीवन नष्ट कर बैठते हैं। राम ने रीछ, वानर जैसी अन्य जातियों के साथ मित्रवत् व्यवहार एवं भाव रखा है। वे साधारण पशु न होकर राम के मित्र हैं। इस भाव द्वारा कवि ने देश की हरिजन तथा आदिम अन्य जातियों की समस्या सामाजिक दृष्टि से दूर करने का प्रयास किया है। उनका कालुष्यभाव व पिछड़ापन समाप्त करने के विषय में भरपूर प्रयत्न किया है।

तुलसी ने राजा के कर्तव्यों के विषय में प्रकृति के माध्यम से अपने विचार कहीं-कहीं प्रकट किए हैं। यदि राम के समान आज के मन्त्री, प्रशासक तथा राज-कर्मचारी अधिकारी वर्ग समाज के आततायियों, भ्रष्टाचारियों के नाश का प्रण करने लगें तो समाज की हर दिशा में भ्रष्टाचारियों का लोप हो जाय। स्वराज्य ही नहीं सुराज की भी स्थापना हो जाए—

'अर्क अवास पात बिम भयऊ। अस सुराज खल उद्दम गयऊ।'

जिस प्रकार अर्क और अवास बिना पक्षों के हो जाते हैं, उसी प्रकार बुरे लोगों के जाने पर स्वराज्य की स्थापना हो जाती है। आज की अपढ़ मूर्ख जनता के क्षणिक सम्मान का निर्वाचन द्वारा प्राप्त पद पर भूले हुए लोक-हित की चेतना विरहित लोकतंत्र के आधुनिक नेताओं, प्रशासकों के लिए तुलसी ने प्रकृति के माध्यम से गम्भीर और मार्मिक व्यंग्य द्वारा सुन्दर चेतावनी दी है—

तुलसी भेंड़ी की घसन जड़ जनता सनमान।
उपजत ही अभिमान मौ खोवत मूढ़ अपान।

भेड़ों की मूर्ख प्रकृति द्वारा कवि ने प्रशासकों ओर राजाओं को क्षणिक सम्मान में मदमत्त होकर संज्ञाशून्य न होने का उपदेश दिया है। इस प्रकार प्रकृति के द्वारा सामाजिक मान्यताओं पर कहीं आक्षेप किया है और कहीं सामाजिक मान्यताओं को सुधारने का प्रयास किया है। वर्ण या बाह्य रूप का आकर्षण समाप्त करने का प्रयत्न

करना चाहिए, जिस प्रकार काली गाय का दूध अति उज्ज्वल होता है लेकिन वर्ण का उसके गुण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। व्यक्ति को अपना आचरण अच्छा बनाना चाहिए, बाह्य सुन्दरता पर अधिक ध्यान नहीं देना चाहिए। व्यक्ति को किसी-न-किसी की सहायता की आवयकता अवश्य पड़ती है लेकिन सहायता इस प्रकार लेनी चाहिए कि दूसरे को कष्ट न हो; जैसे कि भ्रमर फूल से रस लेता है और पुष्प की सुन्दरता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

कवि बार-बार बाह्य सौन्दर्य के प्रति सावधान रहने का उपदेश देता है। जिस प्रकार मोर अत्यन्त सुन्दर होता है लेकिन विषयुक्त सर्प उसका भोजन है, उसी प्रकार कपटी व्यक्ति कभी-कभी बाहर से भोले दिखाई देते हैं लेकिन उनके मन में विष भरा होता है, उनसे सावधान रहना चाहिए।

छोटा-सा कीड़ा अत्यन्त अधम माना जाता है लेकिन जो रेशम का कीड़ा होता है उसे सब प्यार से पालते हैं क्योंकि वह गुणी होता है। इस प्रकार गुणों का ही सर्वत्र आदर होता है।

व्यक्ति को कोयल की तरह मीठी वाणी बोलनी चाहिए जो कि सबको मधुर लगती है, कौए की तरह कर्कश वाणी नहीं बोलनी चाहिए, इसी कर्कश वाणी के कारण सब उसे भगा देते हैं।

तुलसी ने हर वाक्य प्रकृति की सहायता से प्रमाणपुष्ट किया है और यह प्राकृतिक प्रमाण ग्राह्य और सरल है। व्यक्ति का मानस एक बार तो झंकृत हो उठता है और वह इन नियमों को जीवन में ढालने का प्रयास करना आरम्भ कर देता है।

पशु-पक्षियों से ही मनुष्य को एकता का सन्देश ग्रहण करना चाहिए। मछली, पपीहे, हरिण, कमल, चातक की तरह अपने प्रिय से प्रेम करना चाहिए। सूर्य के समान दानी होना चाहिए। जो बादल बनाकर वर्षा करता है और स्वयं कुछ नहीं चाहता। सत्संगति और कुसंगति का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है जैसे वायु दुर्गन्धयुक्त और सुगन्धयुक्त वस्तुओं के संसर्ग से दुर्गन्धित और सुगन्धित हो जाती है। नीच निरादर से और बड़े आदर करने से सुखदायी होते हैं जैसे बेर और केला काटने पर तथा आम व कटहल सींचने पर बढ़ते हैं।

इस प्रकार व्यक्ति के प्रत्येक क्रियाकलाप एवं विचार को प्रकृति के माध्यम से शुद्ध व परिष्कृत करने का प्रयत्न किया गया है। प्रकृति का मानव एवं समाज संस्कार में पूर्ण सहयोग कवि ने लिया है। प्रकृति में प्रचलित प्रत्येक क्रिया मनुष्य के सामने घटित होती है, इसलिए प्रकृति अपने कार्यों की स्वयं साक्षी होती है और यही कारण है कि कवि ने व्यक्ति व समाज को प्रबुद्ध व परिष्कृत करने में प्रकृति का पूर्ण सहयोग लिया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ की मौलिकता एवं विशेषता

प्रस्तुत ग्रन्थ में तुलसी की प्रकृति विषयक विशेषताओं को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। तुलसी की काव्य रचनाओं और जीवनी पर अनेक शोध-ग्रन्थ लिखे गए हैं, लेकिन समग्र और संपूर्ण रूप से केवल प्रकृति विषय को लेकर किसी ने भी कोई शोध-ग्रन्थ नहीं लिखा है।

स्वतन्त्र रूप से तुलसी के प्रकृति वर्णन को लेकर किसी ने भी अधिक नहीं लिखा। कुछ शोधकर्ताओं ने कहीं-कहीं उपदेशात्मक प्रकृति के चित्रण को वर्णित किया है और उसमें भी मानस का 'किष्किन्धाकाण्ड' ही प्रसिद्ध है, अन्य रचनाओं को नहीं लिया गया। तुलसी के प्रकृति विषयक लगभग सभी वर्णनों को इस शोध-ग्रन्थ में स्थान दिया गया है। सभी विशुद्ध प्रकृति के आलम्बनात्मक वर्णन एवं अध्याय के अन्तर्गत रखे गए हैं। पशु-पक्षियों, सूर्य, चन्द्रमा, नदी, ऋतुओं, वन जहाँ भी प्रकृति का आलम्बनात्मक वर्णन है, वह क्रमशः सभी रचनाओं से उद्धृत करके उनका वर्णन इस शोध-ग्रन्थ में दिया गया है। यदि दो रचनाओं में एक ही प्राकृतिक अवयव का वर्णन है तो कहीं-कहीं उन दोनों की तुलना और विशेषताओं को भी प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया है। एक ही वर्णन विभिन्न रचनाओं में कितना समान ओर कितना भिन्न है, इसके विषय में भी विचार किया गया है।

प्रकृति जब मनुष्य के भावों को उद्दीप्त करती है और मनुष्य के मन के भावों के अनुरूप सुख-दुःखात्मक अनुभव करवाती है तो उसे प्रकृति का उद्दीपन रूप कहते हैं। तुलसी काव्य में उपलब्ध उद्दीपन रूपों का भी वर्णन किया गया है। तुलसी ने मर्यादापूर्ण वर्णन किया है। वर्णन करते समय तुलसी के प्रकृति वर्णन सम्बन्धी विशेषताओं को भी स्पष्ट किया गया है। कुछ वर्णन मर्यादापूर्ण हैं, कुछ सात्विक भावों को प्रदर्शित करते हैं, कहीं प्राकृतिक वर्णन के माध्यम से उत्कृष्ट पति-पत्नी के प्रेम को प्रदर्शित किया गया है, कहीं विरह का प्रकृति के माध्यम से संयमित वर्णन किया गया है। तुलसी के प्रत्येक वर्णन के विषय में भी विचार प्रस्तुत किए गए हैं। विरह व संयोग में प्रकृति की सहायता अथवा विपरीतता का भी चित्रण किया गया है। संयोग में प्रकृति सुहावनी और वियोग में कष्टप्रद हो जाता है, इस प्रकार प्रकृति के उद्दीपन रूप का भी विशेषताओं सहित चित्रण करने का प्रयास किया गया है।

तुलसी काव्य में प्रकृति के उपदेशात्मक रूप का बहुत अधिक महत्व है। तुलसी ही उस समय के ऐसे कवि थे, जिन्होंने प्रकृति में नीति और सौन्दर्य का सुन्दर समन्वय किया। तुलसी का प्रत्येक वाक्य अपने में एक गम्भीर अर्थ और मानव-जीवन के रहस्यों को समेटे हुए हैं, उसे प्रकृति के माध्यम से कवि ने सुन्दर रूप से अभिव्यक्त किया है। प्रकृति के उपदेशात्मक वर्णन के अन्तर्गत भी पशु-पक्षियों, पौधों आदि के विभिन्न वर्ग बनाकर प्रकृति के माध्यम से नीति के विषय में कवि के विचार प्रस्तुत

किए गए हैं। तुलसी के प्राकृतिक वर्णन कितने सीधे, सरल, सटीक व विषयानुसार हैं इनके विषय में भी चर्चा की गई है। तुलसी के प्राकृतिक उपदेशात्मक वर्णन इतने मार्मिक हैं कि सीधे हृदय का स्पर्श करते हैं, उनकी सूक्ष्मता अद्वितीय है। इन विशेषताओं का भी ध्यान रखा गया है। इससे पहले इतने सूक्ष्म रूप से केवल तुलसी के प्रकृति-चित्रण का अध्ययन किसी का भी विषय नहीं रहा है।

तुलसी के काव्य में अलंकारों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अलंकार वर्णन में भी उन्होंने प्रकृति से यथेष्ट सहायता ग्रहण की है। किसी व्यक्ति, वस्तु या दृश्य की विशेषता, सुन्दरता को व्यक्त करने के लिए प्रकृति से उपमान ग्रहण किए गए हैं। वर्णन को और प्रभावशाली व सुन्दर बनाने के लिए प्रकृति तुलसी अलंकारों की प्राण बनी है। तुलसी के प्रकृति विषयक ज्ञान इन सब बातों को ध्यान में रखकर शोध-ग्रन्थ लिखने का प्रयास किया है, तुलसी के प्रकृति सम्बन्धी विचारों को ध्यान में रखते हुए उनके प्रकृति वर्णन की विशेषताओं को स्पष्ट किया गया है। अलंकार में सौन्दर्य भाव और शब्द के कारण होता है। प्रकृति विषयक भाव अत्यन्त सुन्दर व स्पष्ट होने के कारण शीघ्र ही ग्राह्य हो जाते हैं और यही तुलसी के अलंकार-योजना का प्राण है। अलंकारों के सभी भेदों को शोध-ग्रन्थ में स्थान दिया गया है लेकिन उनकी प्रकृति विषयक विशेषता का सम्पूर्ण ध्यान रखा गया है। प्रकृति ने अलंकारों के चमत्कार में कैसे वृद्धि की, इस बात को भी स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है।

यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्ममय है, प्रकृति इसका प्रमुख गुण है। तुलसी ने प्राकृतिक उदाहरणों द्वारा दार्शनिक विवेचन सुन्दर रूप में किया है। यदि नीरस रूप से दार्शनिक रहस्यों का विवेचन करें तो वह सामान्य जन की पहुँच के बाहर होता है। लेकिन प्राकृतिक घटनाओं द्वारा दर्शन समझने में सरलता होती है। माया विनाशकारिणी है इतना कहना उपयुक्त नहीं है, यदि यह स्पष्ट न किया जाए कि किस प्रकार वह मनुष्य का विनाश कर सकती है। इसके लिए सबसे सरल, सुन्दर व सटीक उदाहरण कवि प्रकृति से प्राप्त करता है। मृग रेत को पानी समझकर भागते-भागते प्राण त्याग देता है। उसी प्रकार मनुष्य को सत्य-असत्य की भी प्रतीति होती है जो विनाश का कारण बनती है। यह दार्शनिक विवेचन इस उदाहरण द्वारा सरल, ग्राह्य हो जाता है, यही प्रकृति की विशेषता है और इसी विशेषता का तुलसी ने अपने काव्य में पूर्ण प्रयोग किया है तथा इसी को स्पष्ट करने का इस शोध-ग्रन्थ में प्रयास किया गया है। भ्रम, ब्रह्म, जगत्, मोक्ष सभी पर प्रकृति के माध्यम से तुलसी ने अपने विचार स्पष्ट किए हैं और इनका वर्णन शोध-ग्रन्थ में किया गया है कि तुलसी ने किस-किस प्रकार कहाँ-कहाँ प्रकृति के किस-किस रूप को लिया है। इनको विभिन्न अध्यायों में वर्गीकृत कर उनका वर्णन करने का प्रयास किया गया है।

तुलसी का प्रकृति वर्णन मर्यादापूर्ण है। उसमें कहीं भी मानवीय भावों या

सीमाओं का खण्डन नहीं किया गया। इस प्रकार तुलसी का प्रकृति वर्णन अपने में सम्पूर्ण और काव्यमय है, इसे इसकी विशेषताओं सहित प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में विश्लेषणात्मक शैली को अपना गया है, यत्र-तत्र सामान्य निष्कर्ष भी हैं। सामान्यतः प्रकृति-चित्रण के चार या पाँच रूप माने जाते हैं, मैंने बिम्ब को अलग मानकर प्रकृति-चित्रण के छह रूपों का विश्लेषण किया है। तुलसी के काव्य में प्रकृति के चित्र संश्लेषणात्मक हैं अर्थात् उनमें एक से अधिक प्रकारों को ग्रहण किया जा सकता है। परिणामतः एक अध्याय के उदाहरण अन्य अध्याय में भी आवृत्त हो गए हैं। कई बार, प्रसंग-भेद के कारण निष्कर्षों की भी आवृत्ति हो गई है। शोध-ग्रन्थों एवं समीक्षा-ग्रन्थों में प्रकृति-चित्रण सम्बन्धी विचार बिखरे हुए हैं, उनसे मैंने लाभ तो उठाया है परन्तु उनको ज्यों-का-त्यों उद्धृत करने की आवश्यकता नहीं समझी। इस प्रकार मेरा यह प्रथम प्रयास वस्तुतः अन्वेषण मात्र है, इसमें मैंने तटस्थ विश्लेषण का प्रयत्न किया है। आशा है कि विद्वज्जनों के समक्ष प्रस्तुत करने में इस पर उनकी 'सही'[1] प्राप्त कर सकूँगी।

---

1. बिहँसि राम कह्यो 'सत्य है सुधि मैं हूँ लही है।'
   मुदित माथ नावत, बनी तुलसी अनाथ की, परी रघुनाथ सही है ॥279॥ (विनयपत्रिका)

2

तुलसी-काव्य में प्रकृति का आलम्बन रूप

कवि समाज के साथ-साथ प्रकृति का भी वर्णन किया करता है। मुक्तक एवं प्रबन्ध दोनों ही प्रकार के काव्यों में यह वांछनीय है। मुक्तक काव्य में प्रकृति कवि की भावुक अभिव्यक्ति का आश्रय बन जाती है। प्रबन्ध-काव्य में प्रकृति के वर्णन बीच-बीच में समाविष्ट होकर कथा की इतिवृत्तात्मकजन्य नीरसता से मुक्ति दिलाते हैं। भारतीय कवि प्रकृति की गोद में अपना विकास करता है और प्रकृति को वह अपने अस्तित्व का अभिन्न अंग मानता है।

तुलसीदास रामकथा के गायक थे, परन्तु उनके कथा नायक राम के जीवन की एकतानता प्रकृति से भी है। वे राजप्रासाद में जन्म लेकर भी अपनी शिक्षा-दीक्षा प्रकृति की गोद (तपोवन) में पूर्ण करते हैं। किशोर अवस्था के पश्चात् उनकी युवावस्था भी अरण्यों में बीतती है। कथा के प्रसंग से कवि ने प्रकृति के अनेक सुन्दर चित्र अंकित किए हैं।

प्रकृति के विविध विलासों का संश्लिष्ट चित्रण आलम्बन रूप में दो रूपों में विद्यमान रहता है—

1. दिव्य प्रकृति
2. अदिव्य प्रकृति

दिव्य प्रकृति के अन्तर्गत सूर्य, नक्षत्र, मेघ, वायु, प्रातःकाल, रात्रि इत्यादि आते हैं। अदिव्य प्रकृति के दो रूप हैं—एक जड़ और दूसरा चेतन। जड़ (अचर) प्रकृति के अन्तर्गत समुद्र, पर्वत, वन, भूमि, मरुस्थल, नदी आदि आते हैं। चेतन (चर) प्रकृति के अन्तर्गत पशु, पक्षी, कीट, पतंगे, जीव आदि हैं।

तुलसी ने अपनी रचनाओं में सबसे अधिक अनुरागपूर्ण, सुन्दर एवं समस्त वर्णन राम के कुलगुरु सूर्य के उदय का किया है—

उयउ अरुन अवलोकहु ताता। पंकज कोक लोक सुखदाता।
बोले लखनु जोरि जुग पानी। प्रभु प्रभाउ सूचक मृदु बानी।
अरुनोदय सकुचे कुमुद उडगन जोति मलीन।
जिमि तुम्हार आगमन सुनि भए नृपति बलहीन ॥

सीता-स्वयंवर के अवसर पर ज़ब राम जनकपुरी[1] में थे, उस समय के सूर्योदय

का यह वर्णन है। सूर्य के उदय होते ही बिना परिश्रम के अन्धकार नष्ट हो गया। कमल, चक्रवाक और समस्त संसार को सुख देने वाला अरुणोदय हुआ। इससे कुमुदिनी सकुचा गई और तारागणों का प्रकाश फीका पड़ गया। रात्रि का अन्त होने से कमल, चकवे, भ्रमर और नाना प्रकार के पक्षी हर्षित हुए। तारे छिप गए और संसार में प्रकाश हो गया। इस प्रकार सूर्योदय का सुन्दर और कवित्वपूर्ण वर्णन कवि ने किया है। इसी प्रकार गीतावली में भी सूर्योदय का सहज, सुन्दर स्वाभाविक वर्णन उपलब्ध है—

भोर भयो जागहु, रघुनन्दन। गत-यलीक भगतनि उर-चन्दन
ससि करहीन, छीन दुति तारे। तमचुर मुखर, सुनहु मेरे प्यारे।
विकसित कंज, कुमुद बिलखाने। लै पराग रस मधुप उड़ाने।[2]

कमलों का खिलना और तारों का अपनी चमक खोना प्रातःकाल के लक्षण हैं। चन्द्रमा के अस्त होते ही कुमुद भी मुरझा जाते हैं। प्रातःकाल मुर्गा बाँग देता है। इतनी सामान्य किन्तु महत्त्वपूर्ण घटना की भी तुलसी ने अवहेलना नहीं की है। बालकों का पशु-पक्षियों के प्रति कौतूहल होता है। इसी को ध्यान में रखकर उनका नामोल्लेख किया गया है। सूर्य रघुकूल के गुरु हैं। सूर्य का नामोल्लेख सर्वत्र रचनाओं में आदर से किया गया है। 'मानस' में राम को सूर्य के समान तेजस्वी बताया गया है। जैसे सूर्य अन्धकार का नाश करता है, वैसे ही धनुष भंग के समय राम के खड़े होते ही ऐसा लगा मानो छोटा-सा सूर्य उदित हो गया हो—'उदित उदय गिरि मंच पर रघुवर बाल पतंग' इस प्रसंग में सूर्य के समान ही राम को शूरवीर कहा गया है और कवि ने रूपक-योजना द्वारा प्रातःकाल में होने वाले क्रियाकलापों का भी सुन्दर वर्णन किया है। 'गीतावली' में कवि ने सूर्योदय का सामान्य स्वाभाविक चित्रण किया है। 'मानस' में यह अलंकार युक्त है। अन्य रचनाओं में सूर्य का नामोल्लेख कुलगुरु के रूप में है। परन्तु गीतावली में इसका सहज स्वाभाविक वर्णन अपेक्षाकृत अधिक है—

अरुन उदित, बिगत सरबरी, ससांक किरनहीन
दीन दीपजोति, मलीन दुति समूह तारे।
बिलखित कुमुदनि, चकोर, चक्रवाक हरष भोर,
करत सोर तमचुर खग, गुंजत अलि न्यार।[3]

इस वर्णन के अन्तर्गत कवि ने रात्रिकालीन पक्षी चकोर की व्याकुलता का वर्णन किया है। कुमुदनी भी मुरझा गई है। उगते सूर्य को आग का गोला बताकर उसे अन्धकार का नाशक कहा गया है। चकवे आनन्दित हो रहे हैं। तारों की ज्योति फीकी पड़ गई है। चन्द्रमा प्रातःकाल पूर्ण रूप से निस्तेज हो जाता है। प्रातःकालीन पक्षियों की प्रसन्नता और रात्रिकालीन पक्षियों की उदासी से सूर्योदय का सहज स्वाभाविक चित्रण कवि ने किया है।

दोहावली में उसी सूर्य से नीति का कार्य लिया गया है, जिस प्रकार सूर्योदय से अन्धकार नष्ट हो जाता है, वैसे ही राम-नाम से मन का अन्धकार दूर हो जाता है। सूर्य का आलम्बनात्मक चित्रण तुलसी की अन्य रचनाओं में उपलब्ध नहीं है।

समुद्र

रावण को जव विदित हुआ कि समुद्र को बाँध दिया गया है तो रावण ने समुद्र को अनेक नामों से सम्वोधित किया और कहा—

बांध्यो वननिधि नीरनिधि जलधि सिन्धु बारीस।
सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस ॥[1]

रावण ने कहा कि क्या वननिधि, नीरनिधि, जलधि, सिन्धु, बारीश, तोयनिधि, कंपति, उदधि, पयोधि, नदीश को सचमुच बाँध लिया गया है? यहाँ पर समुद्र को विभिन्न नामों से सम्बोधित किया गया है और ये नाम समुद्र की अपार जल सम्पत्ति की ओर संकेत करते हैं, साथ ही रावण की घबराहट की भी व्यंजना है।

आश्रम

जब राम ने सीता-लक्ष्मण सहित वाल्मीकि आश्रम में प्रवेश किया, तो वहाँ का प्राकृतिक वातावरण बहुत ही मनोहर था। उसी का आलम्बनात्मक चित्रण कवि ने किया है—

देखत बन सर सैल सुहाए। बालमीकि आश्रम प्रभु आए।
राम दीख मुनि बासु सुहावन। सुन्दर गिरि काननु जलु पावन।
सरनि सरोज बिटप वन फूले। गुंजन मंजु मधुप रस भूले।
खग मृग बिपुल कोलाहल करहीं। बिरहित-बैर मुदित मन चरहीं ।[2]

सुन्दर वन तालाब और पर्वत देखते हुए राम ने वाल्मीकि आश्रम में प्रवेश किया। जहाँ सुन्दर पर्वत वन और पवित्र जल है। सरोवरों में कमल और वनों में वृक्ष फूल रहे हैं। मकरन्द रस में मस्त हुए भौंरे सुन्दर गुंजार कर रहे हैं। बहुत-से पक्षी और पशु कोलाहल कर रहे हैं। पशु-पक्षी आपसी वैर भूलकर प्रसन्नचित्त इधर-उधर घूम रहे हैं। आश्रम का वातावरण बहुत ही शान्त है। चारों ओर प्रकृति का सात्विक रूप दृष्टिगोचर होता है।

चन्द्र

स्वतन्त्र रूप में चन्द्रमा की स्तुति मानस के लंकाकाण्ड में उपलब्ध है। चन्द्र के सौन्दर्य ने शृंगार के सन्दर्भ में चिरकाल से कवियों को अभिभूत किया है। तुलसी ने चन्द्रमा के रूप और गुणों का अकृत्रिम वर्णन किया है—

पूरब दिसा बिलोकि प्रभु, देखा उदित मयंक।
कहत सबहि देखहु ससिहि, मृगपति सरिस असंक ॥[6]

चन्द्रमा अन्धकार का नाश करता है। रात्रि में सूर्य के न होने पर चन्द्रमा की चाँदनी ही सबको शीतल करती है। चन्द्रमा सौन्दर्य का ही प्रतिरूप है। सुन्दरता और चन्द्रमा एक ही गुण के मानो दो रूप हैं। चन्द्रमा के पराक्रम और सौन्दर्य दोनों का वर्णन तुलसी ने किया है। चन्द्रमा को सिंह के समान तेज का पुंज और भयहीन कहा गया है। वास्तव में सूर्य के बाद चन्द्रमा ही अन्धकार का नाशक है और इसके तेज की यह विशेषता है कि यह अतीव सुखद होता है। चाँदनी सबको शीतल लगती है। 'मानस' में कवि कहते हैं कि जब ब्रह्मा ने रति को बनाया तो चन्द्रमा के सार-भाग से उसका निर्माण किया, इसीलिए चन्द्रमा के हृदय में छेद हो गया।[7] सौन्दर्य की देवी ने भी सौन्दर्य चन्द्रमा से ही लिया है। इस वर्णन में कवि ने प्राचीन कवियों की रूढ़ियों का पालन किया है। इसके अतिरिक्त मानस में तुलना द्वारा एक स्थल पर चन्द्रमा को सुन्दरता में सीता से हीन भी माना गया है। 'सिय मुख ससि किमि कहि जाय' चन्द्रमा तो दिन में निस्तेज हो जाता है परन्तु सीता का मुख तो शतदिन आलोकित होता रहता है। 'रामाज्ञाप्रश्न' में द्वितीया के चन्द्रमा के दर्शनों को भाग्यदाता माना गया है।

'गीतावली' में भी सौन्दर्य की उपमा विशेषतः सीता के सौन्दर्य की तुलना बार-बार चन्द्र से की गई है। उसका स्वतन्त्र वर्णन उपलब्ध नहीं है। 'गीतावली' के 'बालकाण्ड' में चन्द्रमा की सोलह कलाओं का वर्णन अलंकार रूप में क्रमशः राम के जीवन से तुलनापूर्वक किया गया है। 'श्रीकृष्ण गीतावली' में गोपियों को विरह में यही चन्द्र ताप देता है और सूर्य शीतल लगता है। 'दोहावली' में स्थल-स्थल पर यह कहा गया है कि जिस प्रकार चकोर चन्द्र को देखकर प्रसन्न होता है, उसी प्रकार सज्जन लोग सन्तों को देखकर उनके सान्निध्य में प्रसन्न होते हैं। चन्द्रमा का स्वतन्त्र स्तुतिपरक वर्णन 'मानस' में उपलब्ध है, शेष रचनाओं में विभिन्न कार्यकलापों द्वारा चन्द्रमा की प्रशंसा की गई है या उससे किसी के श्रीमुख अथवा व्यक्तित्व की तुलना की गई है।

पवन

पवन का वर्णन कवि ने अधिक नहीं किया है। सब रचनाओं में केवल नामोल्लेख है। समीर अनुभव करने वाला प्रकृति का एक अंग है। वह दृश्य नहीं अपितु अदृश्य रूप में मानव-जीवन का कल्याण करता है। इसके बिना एक क्षण भी जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। सुमेरु पर्वत के समीप प्रवाहित होने वाले पवन का पारम्परिक वर्णन करते हुए कवि कहता है–

सीतल मन्द सुगन्ध सुभाऊ। सन्तत बहइ मोहर बाऊ।[8]

सुमेरु पर्वत पर बहने वाली वायु शीतलता, सुगन्ध और सामान्य वेग युक्त है। जो मन को शीतलता प्रदान करती है। राम जिस अरण्य एवं नगर में जाते हैं, वहाँ का वातावरण प्रफुल्लित हो जाता है। प्रकृति के सब क्रियाकलाप अपने उपकरणों से राम का स्वागत करते हैं और अधिकतर उस वर्णन के अन्त में कवि कहता है कि वहाँ शीतल, मन्द, सुगन्ध समीर बह रहा था। यह वर्णन प्रायः सभी रचनाओं में एक-सा है, चाहे वह नगर का वर्णन हो या पम्पासरोवर के तटवर्ती क्षेत्र का। राम को प्रसन्न करने के लिए वहाँ सदा 'त्रिविध समीर' बहती रहती है।

बादल

आकाश-मार्ग के मुक्त पर्यटक बादलों का वर्णन कवि वर्षा ऋतु के अन्तर्गत करते हैं और बादलों के साथ बिजली भी विद्यमान रहती है। बादलों का स्वतन्त्र चित्रण तुलसी काव्यों में कम मिलता है। इसलिए कवि ने बरसते हुए बादलों का बिजली के साथ वर्णन किया है। कृष्ण के गोवर्धन-धारण के सन्दर्भ में प्रलय का स्वाभाविक वर्णन द्रष्टव्य है—

ब्रज पर घन घमण्ड करि आए।
अति अपमान बिचारि आपनो कोपि सुरेस पठाए।
सीत सभीत पुकारत आरत गोसुत गोपी ग्वाल।[9]

जब बाढ़ आती है या समुद्री तूफान आते हैं तो इसी प्रकार प्रलयंकारी दृश्य उपस्थित हो जाता है। यह वर्णन वर्षा ऋतु के अन्तर्गत नहीं आ सकता, क्योंकि सामान्य वर्षा का वर्णन नहीं है। बादलों का असाधारण रूप से चमकना और बरसना भयावह रूप उपस्थित करते हैं। यहाँ कवि ने प्रकृति के विनाशकारी रूप का वर्णन किया है। कवि ने प्रकृति के सौम्य, शान्त और उग्र सभी रूपों का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त 'मानस' में दार्शनिक विश्लेषण के लिए भी बादलों का प्रयोग किया गया है। माया से आच्छादित ब्रह्म को हम असत्य मानकर जगत् के भयामोह को सत्य मान लेते हैं। यह आवरण जब हटता है तभी सत्य के दर्शन होते हैं। जैसे सूर्य के सामने बादल आ जाते हैं तो थोड़ी देर के लिए अन्धकार हो जाता है, लेकिन बादलों के हटते ही प्रकाश हो जाता है। 'विनयपत्रिका', 'दोहावली' आदि में बादलों की दानशील प्रवृत्ति द्वारा मानव को शिक्षा दी गई है। इस प्रकार रचनाओं के वर्ण्य विषय के अनुरूप प्राकृतिक उपकरणों का स्वरूप एवं वर्णन कुछ बदल जाता है।

दावाग्नि

यहाँ भी तुलसी ने प्रकृति के सुरम्य वातावरण का चित्रण न करके भयावह रूप

का चित्रण किया है। इस बार बरसते हुए बादल नहीं अपितु दावाग्नि की भयंकरता का चित्रण कवि ने किया है। कभी-कभी दावाग्नि पूरे वन को नष्ट कर डालती है और इससे वन में रहने वाले पशु-पक्षी घबराकर इधर-उधर भागते हैं। 'कवितावली' में चित्रकूट वन में फैली हुई दावाग्नि का भी प्रभावशाली चित्रण कवि ने किया है–

लागि दवारि पहार पहारण ही लहकि कपि लंक जया खर खौकी।
चारु भुजा चहूँ ओर चलें लपटें झपटै सो तमीचर तौंकी।
क्यों कहि जात महासुषमा उपमा तकि ताकत है।
मानौ लसी तुलसी हनुमान हिए जगजीति जरायनी चौकी।[10]

पशु-पक्षियों का आर्त्तवाणी में पुकारना अत्यन्त ही सटीक वर्णन है। इसके अतिरिक्त जड़ प्रकृति के अन्तर्गत पर्वत, नदियाँ, तालाब आते हैं।

नदी

नदियों का नामोल्लेख कवि ने अपनी काव्य रचनाओं में अधिक किया है। उनका विस्तृत प्राकृतिक वर्णन अधिक नहीं है। 'रामचरितमानस' के चित्रकूट वर्णन के समय 'मन्दाकिनी' नदी का 'नामोल्लेख' है–

नदी पनच, सर सम दम दाना। सकल कलुष कलि साउज नाना।
चित्रकूट जनु अचल अहेरी चुकइ न घात मार मुठभेरी ॥[11]

विनयपत्रिका में कवि ने गंगा-यमुना की श्रद्धा भाव से स्तुति की है–

हरित गम्भीर वानीर दुहूँ तीरवर, मध्य धारा बिशद विश्व अभिरामिनी।
नील-पर्यक-कृत-शयन सर्पेश जनु, सहस सीसावली स्त्रोत सुर स्वामिनी।[12]

गंगा अपनी स्वच्छता और पवित्रता के लिए प्रसिद्ध है। गंगा की जलधारा मनुष्यों की शारीरिक, मानसिक और धार्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। इसलिए यह संसार का कष्ट दूर करने वाली मानी जाती है। प्रकृति का जो भी अंग मनुष्य जीवन के लिए अतिआवश्यक होता है, उसके प्रति अपनी श्रद्धा प्रदर्शित करने के लिए मानव ने उसे दिव्य स्थान दे दिया। सूर्य, समुद्र, नदियाँ मनुष्य का पोषण करते हैं, उनके बिना मनुष्य का जीवन असम्भव है। इसलिए इन प्राकृतिक उपकरणों को उच्च स्थान मिल गया, जिसमें गंगा का प्रमुख स्थान है। राम तुलसी के इष्ट हैं। प्रकृति चाहे दिव्य हो चाहे अदिव्य, उन्हें सब में राम का ही प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। गंगा की लहरों की पवित्रता और शुभ्रता व्यक्त करने के लिए रामचरित की शुद्धता को आधार बनाया गया है। इसके अतिरिक्त स्वतन्त्र रूप में गंगा-स्तुति या उसका वर्णन अन्य काव्यों में नहीं है, केवल एक-दो स्थानों पर नामोल्लेख है। वनवास के समय चित्रकूट जाते समय राम ने सीता और लक्ष्मण सहित गंगा-स्नान किया था। अयोध्या नगर के वर्णन के प्रसंग में सरयू नदी का नामोल्लेख है क्योंकि उसी नदी के किनारे

यह नगर बसा हुआ था।

'विनयपत्रिका' में यमुना की भी स्तुति की गई है—

जमुना ज्यों-ज्यों लागी बाढ़न।
त्यों-त्यों सुकृत-सुभट कलि-भूपहिं, निदरि लगे बहु काढ़न।[13]

यमुना का प्रताप ही ऐसा है कि उसके सम्पर्क से सब कुरीतियाँ और पाप विनष्ट हो जाते हैं। वह अपने सम्पर्क में आने वालों का उद्धार कर देती है। गंगा, यमुना नदियों के वर्णन में कवि ने उनके अलौकिक रूप को अधिक लिया है। प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन अधिक नहीं किया। 'गीतावली' में प्रयाग के संगम का सुन्दर चित्रण कवि ने किया है। प्रयाग का वर्णन राम से सम्बन्धित है। जिस प्रकार प्रयाग में स्नान करने से वैराग्य प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार राम के प्रेम से मोक्ष प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार नदियों का वर्णन आध्यात्मिक अधिक है।

सरोवर

बिकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा।
बोलत जलकुक्कुट कलहंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा॥[14]

यहाँ तुलसी ने वस्तु-परिगणन शैली का उपयोग किया है। 'तुलसी' प्रकृति की प्रत्येक वस्तु का नाम गिनाकर उसका विश्लेषणात्मक चित्रण करके पाठक को अर्थ-ग्रहण करवाते हैं। 'मानस' में पम्पासरोवर के तट का चित्रण करते हुए कवि उसके आसपास विद्यमान फूलों और फलों से युक्त वनस्पतियों का नामोल्लेख कर सरोवर के तट की समृद्धि का वर्णन करता है। कवि ने स्वयं तटस्थ रहकर जहाँ जो कुछ जैसा है, उसका वैसा ही वर्णन कर दिया है। कहीं भी वर्णन की स्वाभाविकता में अन्तर नहीं आता। देशकाल और समय की कसौटी पर इनका प्रकृति-चित्रण खरा उतरता है। कवि ने परम्परा का पूर्ण रूप से पालन नहीं किया है, उनके प्रकृति-चित्रण में अन्तःप्रेरणा ओर स्वनिरीक्षण का प्रभाव अधिक परिलक्षित होता है।

प्रकृति तो स्वाभाविक रूप से हम सबके साथ विद्यमान रहती है, लेकिन जब मनुष्य नगरों में रहता है तो वह प्रकृति के सान्निध्य से थोड़ा दूर हो जाता है। इसलिए वह इस कमी को स्वनिर्मित बागों, तालाबों ओर बावलियों द्वारा दूर करता है। प्रकृति के प्रति मनुष्य का स्वाभाविक प्रेम होता है। इसलिए वह उससे दूर नहीं रह सकता। किसी-न-किसी तरह और किसी-न-किसी रूप में उसे अपने जीवन में समाविष्ट कर लेता है—

वापी तड़ाग अनूप कूप मनोहरायत सोहहीं।
सोपान सुन्दर नीर निर्मल देसि सुर मुनि मोहहीं॥[15]

यहाँ प्रकृति के सात्विक रूप को प्रदर्शित किया गया है। कहीं भी उसमें चंचलता या उत्तेजना विद्यमान नहीं है। सब कुछ सरल, स्वाभाविक और सुन्दर है।

कहीं किसी को किसी से कुछ भी अपेक्षा नहीं है। सब आत्मसन्तुष्ट और अपने प्राकृतिक क्रियाकलाप में मग्न हैं। सर्वत्र सुन्दरता और स्वच्छता है। नगर की ओर भी यह प्राकृतिक वर्णन संकेत करता है। सब ओर सम्पन्नता है, इसीलिए बाग, तालाब, सब हरे-भरे और पशु-पक्षियों से युक्त हैं।

इसी प्रकार कथा में अन्त में काकभुशुण्डि के प्रसंग में नील पर्वत के शिखर पर विद्यमान तालाब का सुन्दर स्वाभाविक चित्रण कवि ने किया है—

गिरि सुमेर उत्तर दिसि दूरी। नील सैल एक सुन्दर भूरी।
तिन्ह पर एक-एक बिटप बिसाला। बट पीपर पाकरी रसाला ॥[16]

यहाँ प्राकृतिक वातावरण में अलौकिकता का भी समावेश हो जाता है। सामान्यतः तालाबों में हंस विचरण नहीं करते और पर्वत शिखर पर तालाब होना भी असाधारण बात है। यह तालाब भी सुमेरु पर्वत के निकट है। यह अलौकिकता काकभुशुण्डि के प्रभाव से है। उनके प्रभाव से सब ओर पवित्र किन्तु रहस्यमय वातावरण है।

कथा के प्रारम्भ में कवि कहता है कि राम का चरित एक सरोवर है जिसका जल अत्यन्त निर्मल है। जिसमें घनी फैली हुई कमलिनी है। भ्रमरों की सुन्दर पंक्तियाँ हैं, अनेक प्रकार की मनोहर मछलियाँ हैं। वहाँ सुन्दर पक्षी विहार करते हैं। लेकिन यह सरोवर-वर्णन काल्पनिक एवं आलंकारिक है और राममहिमा का गान ही इसका प्रमुख ध्येय है। इसलिए यह स्वतन्त्र प्रकृति चित्रण के अन्तर्गत नहीं। 'गीतावली' में भी चित्रकूट के प्रसंग में वन का वर्णन है। कई प्रकार की वनस्पतियों का कवि ने नामोल्लेख किया है। तालाबों का स्वतन्त्र वर्णन नहीं किया है। बस इतना कह दिया है कि वहाँ सुन्दर तालाब हैं। 'विनयपत्रिका', 'दोहावली' में नीति-ज्ञान को समझाने के लिए भी इस प्रकार के वर्णन का उपयोग नहीं किया गया।

वन वर्णन

तुलसी रामभक्त थे। उन्होंने स्वान्तः सुखाय राम का गुणगान किया। अपने इष्टदेव राम को उन्होंने इस लोक में मानव-क्रियाएँ करते देखा, अतः उनके मन में मानव और प्रकृति का सम्बन्ध स्थापित हो गया। राम पदांकित वन, नगर, ग्राम आदि सब इनके अनुराग और भक्ति के विषय हो गए। वन में चित्रकूट इनके आराध्य का निवास-स्थान होने से विशेष प्रिय हुआ। कथा के आरम्भ में ही विश्वामित्र सुकार्य के लिए दशरथ पुत्रों को ले जाते हैं तो मार्ग में राम-लक्ष्मण प्राकृतिक जगत् को कौतूहल से देखते हैं, शिलाओं पर बैठते, झरनों को देखते, फिर गुरु से डरकर लौट आते हैं, यह समस्त वर्णन बहुत ही सुन्दर और मनोवैज्ञानिक है।

तुलसी ने वनों के सौन्दर्य का चित्रण अधिक किया है, कहीं-कहीं वहाँ के कष्टपूर्ण जीवन का भी चित्रण किया है। सामान्यतः प्रकृति का आह्लादकारी चित्रण ही

है। अति भयानक चित्रण कवि ने कहीं भी नहीं किया। वनों की गहरी कन्दराओं और नदियों में भी अपना एक अपूर्व आकर्षण होता है। जो स्वयं सौन्दर्य युक्त होता है। इस भयानकता में भी पूर्ण सम्मोहन है। सारे वन (दण्डक, चित्रकूट) इतने समृद्ध हैं कि कहीं कोई अभाव परिलक्षित नहीं होता। पशु, पक्षी एवं वनस्पति का सर्वत्र बाहुल्य है। दण्डक वन तो इतना सघन है कि चकोर को लगता है कि रात्रि हो गई और वह इसी भ्रम में चन्द्र के दर्शनों के लिए उत्सुक हो जाता है। यह वन हरीतिमा से परिपूर्ण है। वनवास के समय राम ने चित्रकूट में समय व्यतीत किया, इसलिए वह कवि को विशेष प्रिय है—

विटप विसाल लता अरुझानी। विविध बितान दिये जनु तानी।
कूजत पिक मानहुँ गज माते। ढेक महोख ऊँट बिसराते ॥[17]

यहाँ तुलसी ने वसन्त ऋतु में होने वाले पशु, पक्षियों और वनस्पतियों का चित्रण किया है। राम आगमन के कारण प्रकृति उत्साह में आ गई है, इसलिए इतनी सुन्दर प्रतीत हो रही है। यहाँ तुलसी का प्रकृति के प्रति आन्तरिक अनुराग परिलक्षित होता है। यद्यपि युद्ध और सेना का वर्णन है, कहीं भी वह प्राकृतिक सौन्दर्य की कोमलता को विनष्ट नहीं करता, अपितु उसकी वृद्धि ही करता है। यहाँ भी कवि को प्रकृति का सुकुमार रूप अभीष्ट है। प्रकृति की रमणीयता ओर क्रियाकलापों का कवि ने सुन्दर वर्णन किया है और आन्तरिक सौन्दर्य का भी यथेष्ट ध्यान रखा है। यही तुलसी के प्राकृतिक चित्रण की विशेषता है।

इसी प्रकार 'गीतावली' का चित्रकूट वर्णन भी प्रकृति के आलम्बन रूप के अन्तर्गत आता है। जब राम, लक्ष्मण, सीता, चित्रकूट वन में रहते हैं तो लक्ष्मण चित्रकूट की शोभा का वर्णन करते हैं—

चित्रकूट पर राउर जानि अधिक अनुरागु।
सखा सहित जनु रतिपति आयउ खेलन फागु।[18]

यहाँ भी कवि का मुख्य उद्देश्य प्रकृति वर्णन है। लक्ष्मण बहुत ही सुन्दर वर्णन द्वारा प्रकृति में होने वाले प्रत्येक क्रियाकलाप से राम-सीता को परिचित करवाते हैं। यह साधारण क्रियाकलाप एक अलग ही जीवन को स्मरण करा देते हैं। मनुष्य का स्वभाव है कि वह सब कुछ अपने चिन्तन के अनुसार बना लेता है और वैसा ही अनुभव करता है। इसीलिए पशु-पक्षियों का कोलाहल उन्हें कर्णप्रिय और अपनी प्रशंसा करता प्रतीत होता है। राम-सीता लक्ष्मण के हृदय शान्त और प्रसन्न हैं, इसलिए हंस, कबूतर, चकवा, चकोर, तोते उन्हें गाते हुए प्रतीत होते हैं—

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक संग गज पंचानन।
खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई।
कूजहिं खग मृग नाना वृंदा। अभय चरहिं बन करहि अनंदा।

बिधु महि पूर मयूखन्हि रवि तप जेतनेहि काज।
माँगे बारिद देहिं जल रामचन्द्र के राज।[19]

अयोध्यापुरी के वनों में वृक्ष सदा फलते-फूलते हैं। हाथी और सिंह वैर भूलकर प्रेम से रहते हैं। पक्षी मीठी वाणी बोलते हैं। पशु समूह वनों में विचरण करते हैं। त्रिविध समीर प्रवाहित होता है। भ्रमर गुंजार करते हैं। नदियों में निर्मल जल बहता है। समुद्र मर्यादा में रहते हैं। तालाब कमलों से पूर्ण हैं। समय पर वर्षा होती है। सूर्य और चन्द्र पृथ्वी का कल्याण करते हैं। इस तरह सम्पूर्ण प्रकृति राम की कृपा से प्रभावित है। अयोध्यापुरी की प्राकृतिक सम्पदा अतुलनीय है। उसका वर्णन कवि ने किया है।

त्रिबिध समीर, नीर, झर झूरननि, जहँ तहँ रहे ऋषि कुटी बनाई।
खग, मृग मुदित एक संग विहरत, सहज विषम बड़ बैर बिहाई।[20]

प्राचीन काल में वनों में प्रायः तपस्वी विहार करते थे। इसीलिए उनके आसपास नैसर्गिक रूप से शान्त वातावरण रहता था। इसी का चित्रण तुलसी ने स्वाभाविक रूप से किया है। पशु-पक्षी जब निर्भय होते हैं तो विशेष स्वर में अपनी मधुर बोल बोलते हैं। इसी का सम्पूर्ण चित्रण तुलसी ने किया है। राम के आगमन से वन फिर हरा-भरा हो गया है। जो जल और स्थल में उत्पन्न होने वाले पौधे सूख चुके थे, फिर से फल-फूल गए हैं। वृक्ष भी पुष्पित, फलित और पल्लवित होने लगे। पक्षीगण कूक रहे हैं, भ्रमर मनोहर गुंजार कर रहे हैं। झरनों से जल झर रहा है। पक्षी और मृगगण अपना स्वाभाविक वैर भूलकर प्रसन्नतापूर्वक विहार कर रहे हैं। यह वर्णन विशिष्ट काल्पनिक नहीं अपितु स्वाभाविक है जो वन के क्रियाकलापों का एक सहज चित्र खींच देता है। पाठक का मन प्रकृति का साकार दर्शन कर लेता है। यही प्रकृति के आलम्बन रूप की विशेषता होती है।

वन में बेंत, ताल, तमाल, कदली, कदम्ब, चम्पक, पाटल, रसाल, कटमल और आम के वृक्ष पूर्ण समृद्धि पर हैं। कमल पुष्प के प्रति भी कवि को विशेष मोह है। कवि के लिए कमल सौन्दर्य और पवित्रता का प्रतिरूप है। 'कमल' के नामोल्लेख के बिना कवि का काव्य अधूरा है। तुलसी को वन में होने वाली वनस्पति का पूर्ण ज्ञान था। तरह-तरह के वृक्षों का नामोल्लेख उस समय की प्राकृतिक समृद्धि का परिचायक है। प्रकृति में कितनी विभिन्नता होती है, प्रकृति कितने रंगों, प्राणियों और कितनी सम्पदा से युक्त होती है, यह तुलसी के वर्णनों से ज्ञात होता है।

प्राकृतिक सम्पदा, पशु-पक्षियों के स्वाभाविक क्रियाकलाप का वर्णन चित्रकूट वन के प्रसंग में कवि ने किया है, वन केवल सुखदायी ही नहीं है, वहाँ केवल समृद्धि और शान्ति ही नहीं है, अपितु कष्ट भी हैं। इसीलिए वनवास के समय सीता को रोकते हुए राम वन की भयंकरता का वर्णन करते हैं–

कंदर खोह नदी नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे।
कुस कंटक भंग कांकर नाना। चलत पयोदेहि बिनु पद ज्ञाना।[21]

वन में नदी-नाले, गहरी खाइयाँ और कन्दराएँ होती हैं। वन में कहीं भी पौधों की काट-छाँट करके सुनिश्चित मार्ग नहीं बनता। पेड़-पौधे स्वतन्त्र रूप से जिधर स्थान मिलता है, बढ़ जाते हैं। वन प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर होते हैं, लेकिन वन में मानव नियम नहीं चलते। वन में कहीं पहाड़ और कहीं गहरी नदियाँ होती हैं। राम चाहते हैं कि सीता वन न जाय, इसलिए वे वहाँ की भयानकता का वर्णन करते हैं, वह स्वयं भयभीत कदापि नहीं हैं। यह वर्णन भी भयानकता को पूर्ण रूप से व्यक्त नहीं कर पाता। प्राकृतिक सौन्दर्य को यहाँ भी विनष्ट नहीं किया गया क्योंकि ऊँचे पर्वतों, पेड़, झाड़ियों में अपना एक अपूर्व आकर्षण होता है, जो कि स्वयं सौन्दर्य युक्त है। यह वर्णन 'मानस' एवं 'गीतावली' में एक-सा ही है।

ऋतु वर्णन

ऋतु वर्णन कवियों का प्रिय विषय होता है। इसके कारण त्यौहारों का वर्णन भी सम्भव हो जाता है। तुलसी ने ऋतु वर्णन को किसी प्रकार से नायक-नायिका की छिपी हुई भावनाओं को व्यक्त करने का माध्यम नहीं बनाया। मनुष्य की यह प्रवृत्ति है कि वह खुले रूप में जिस बात को नहीं व्यक्त कर पाता, उसके लिए कोई माध्यम खोज लेता है। उसमें प्रकृति का प्रमुख स्थान है और उसमें भी ऋतुएँ उसकी सम्पूर्ण सहायक होती हैं। नायक, नायिका प्रेम विभोर हैं, इसका सम्पूर्ण वर्णन हमारा कवि नहीं कर पाता क्योंकि शायद वह मर्यादा-विरुद्ध होगा, इसीलिए कवि कहता है कि चाँदनी नायक के भावों को उद्दीप्त कर रही है। त्रिविध समीर लज्जाशील नायिका को अपने प्रिय के प्रति समर्पित करने की प्रेरणा दे रहा है। बहुधा प्रकृति ही उनके भाव प्रदर्शित करती है जिसमें वसन्त ऋतु का विशेष महत्त्व है। तुलसीदास ने प्रकृति का उद्दीपक वर्णन कम किया है, आलम्बनात्मक सहज वर्णन उनकी विशेषता है।

'विनयपत्रिका' में कवि ने वसन्त का विशद वर्णन किया है। यहाँ प्रकृति के प्रति उनका आन्तरिक अनुराग परिलक्षित होता है। प्रस्तुत रूप में शिव का वर्णन है, अप्रस्तुत रूप में उनका प्रमुख ध्येय वन की सुन्दरता को स्पष्ट करता है–

देखा देखो, बन वन्यो आज उमाकान्त,
मानों देखन तुमहिं आई रितु बसन्त।[22]

इस वर्णन का ध्येय प्रकृति वर्णन है। इसलिए यह प्रकृति के आलम्बन रूप वर्णन के अन्तर्गत आता है। वसन्त ऋतु में होने वाले क्रियाकलापों का वर्णन शिव-पार्वती के माध्यम से किया है। कोयल का कूकना वसन्त के आगमन की सूचना देता है। वसन्त ऋतु में वन पूर्ण रूप से समृद्ध होता है। पक्षियों का चहचहाना, फूलों

का खिलना, त्रिविध समीर, पेड़-पौधों का सम्पूर्ण वर्णन सुन्दर है।

'गीतावली' में वसन्त ऋतु का चित्रण उपलब्ध है। वन में वसन्त ऋतु शोभा का वर्णन एक विजयी सेनापति के रूप में किया है—

कलुपति आए भलो वन्यो वन समाज। मानो भए हैं मदन महाराज आज।
कलि-सचिव सहित नय-निपुन मार। कियो बिस्व बिबस चारिहु प्रकार ॥[23]

कवि प्रकारान्तर से प्रकृति के प्रत्येक क्रियाकलाप को वर्णित वस्तु पर घटाता चलता है। सेना के जो विधि विधान हैं, उन्हीं के अनुसार वसन्त ऋतु में होने वाले कार्यकलाप दृष्टिगोचर होते हैं। प्राचीन काव्यों में इसी तरह का चित्रण मिलता है। रीतिकालीन कवियों ने तो वर्णनों में शास्त्रीयता का समावेश किया है। वसन्त ऋतु का स्वतन्त्र वर्णन नहीं किया। परन्तु यहाँ नई कोपलों के आगमन और पक्षियों के चहचहाने से वसन्त ऋतु की मोहकता का परिचय मिलता है। जैसे कामदेव सबके हृदय को वश में कर लेता हैं, उसी प्रकार वसन्त ऋतु में भी सम्मोहन शक्ति होती है।

वसन्त ऋतु अपनी सुन्दरता, समृद्धि और मादकता में सभी ऋतुओं में श्रेष्ठ होती है। वसन्त ऋतु का सौन्दर्य अनुपम होता है। यह ऋतु सभी की मनोकामना पूर्ण करने वाली और आह्लादकारी होती है। इसीलिए इसे ऋतुराज वसन्त कहा जाता है। यह प्रकृति वर्णन कवि ने सहज ही परम्परा से ग्रहण किया है।

प्रकृति के आलम्बन रूप में कवि प्रकृति को साधन न बनाकर साध्य मान लेता है। कवि प्रकृति का निरीक्षण करता है और उसके सूक्ष्मतम तत्त्वों के प्रति आकर्षित होता है। कवि प्रकृति की प्रत्येक वस्तु का पृथक्-पृथक् परिगणन नहीं करता अपितु सबको एकत्र करके संश्लिष्ट वर्णन करता है। उसका मन प्रकृति में रम जाता है और वह आत्मविभोर हो जाता है। अपनी तल्लीनता में हृदय की मुक्तावस्था को प्राप्त होता है। उसके प्रकृति-चित्रण की यही विशेषता है कि पाठक को प्रकृति के प्रत्यक्ष दर्शन का आनन्द प्राप्त होता है।

वसन्त ऋतु के समान वर्षा ऋतु भी अतीव आनन्ददायक होती है। वर्षा न हो तो वर्ष भर पेड़-पौधों को पानी न मिले और वे शुष्क होकर नष्ट हो जाएँ। नदी और तालाब भी सूख जाएँ। इस प्रकार प्रकृति को पूर्ण रूप से जीवित तो वर्षा ऋतु ही रखती है।

तुलसी ने वर्षा ऋतु में सौन्दर्य के साथ मानव-प्रेम, दया, सहिष्णुता के भी दर्शन किए हैं। मानवीय मूल्यों की व्याख्या भी इसी के अन्तर्गत की है। राम वर्षा ऋतु में होने वाली क्रियाओं में मानव-जीवन के सत्य को देखते हैं और इसी की व्याख्या करते हैं—

ससि सम्पन्न सोह महि कैसी। उपकारी के सम्पत्ति जैसी।
निसि तम घन खद्योत बिराजा। जनु दम्भिन्ह कर मिला समाज ॥[24]

वर्षा ऋतु का ऐसा वर्णन बहुत ही दुर्लभ है। ऋतु वर्णन में बहुधा कवि परम्परा का पालन करते हैं और प्रकृति के उद्दीपन रूप के अन्तर्गत ये वर्णन पाए जाते हैं। नायक-नायिका के प्रेम को उद्दीप्त करने के लिए यह वर्णन सर्वत्र हिन्दी साहित्य में उपलब्ध है, लेकिन वर्षा ऋतु का उपयोग दर्शन और नीति के चित्रण के लिए तुलसी ने ही किया है। इसीलिए यह वर्णन आलम्बन रूप में आता है। प्रकृति का सौन्दर्य और क्रियाकलाप उन्हें शिक्षा देते हैं। उसकी ऋतुओं में परिवर्तन उन्हें जीवन के रहस्य समझाता है। प्रकृति वर्णन के साथ अपने उच्च विचारों का प्रदर्शन उन्होंने वर्षा ऋतु के अन्तर्गत किया है—

कबहुँ दिवस महं निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाह कुसंग सुसंग॥[25]

कितना सुन्दर वर्णन है। एक साधारण-सी बात है कि वर्षा ऋतु में कभी आकाश बादलों से घिर जाता है और कभी सूर्य प्रकट हो जाता है। इसमें कुसंग और सुसंग का वर्णन कवि ने किया है। कवि को सभी ऋतुओं में भौतिक सौन्दर्य की अपेक्षा मानवीय मूल्यों का सौन्दर्य और जीवन की सत्यता अधिक दृष्टिगोचर होती है। बादलों की धारा न तो किसी प्रिया के अश्रु हैं और न किसी प्रेयसी के दूत, वे मानव को मानवीयता का सन्देश देने वाले उपकरण हैं।

'गीतावली' में वर्षा ऋतु के भौतिक सौन्दर्य की व्याख्या की गई है। इस ऋतु में होने वाली क्रियाओं का सुन्दर स्वाभाविक वर्णन कवि ने किया है।

'ग़ीतावली' में कवि प्रकृति के सौन्दर्य से भावविभोर होकर उसका वर्णन करता है—

उनये सघन घनघोर, मृदु झरि सुखद सावन लाग।
पिक-मोर-मधुप-चकोर-चातक-सोर उपबन बाग॥[26]

जल की मन्द फुहारों का गिरना, मेंढक का शब्द करना, बिजली का चमकना, मोर का नाचना, चकोर का कर्णप्रिय ध्वनि करना, चातकों का शोर करना आदि का सुन्दर चित्रण है। इस पथ में मुख्य रूप से वर्षा ऋतु के पशु-पक्षियों का वर्णन है।

बन उपबन नव किसलय, कुसुमित नाना रंग।
बोलत मधुर मुखर खग पिकबर, गुंजत मृंग॥[27]

वर्षा ऋतु में पक्षी चहचहाते हैं, वृक्ष नवीन पत्ते धारण करते हैं। तरह-तरह के फूल खिलते हैं। चारों ओर की हरियाली और प्रफुल्ल पशु-पक्षियों का वर्षा ऋतु के अन्तर्गत कवि ने सुन्दर स्वाभाविक चित्रण किया है। यह चित्रण पूर्ण रूप से मर्यादा युक्त है। लेकिन 'मानस' की तरह नीतियुक्त नहीं है।

'मानस' में कवि ने शरद् ऋतु का भी सुन्दर चित्रण किया है। वहाँ भी प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ ही कवि ने मानव-जीवन के मूल्यों को विस्मृत नहीं किया है।

'गीतावली' में भौतिक सौन्दर्य कवि को प्रिय है। लेकिन 'मानस' में–

पंक न रेनु सोह असि धरनी। नीति निपुन नृप कै जसि करनी।
जल संकोच बिकल भई मीना। अबुध कुटुम्बी जिमि धनहीना ॥[28]

शरद् ऋतु में आकाश और धरती निर्मल हो जाती है। तुलसी ने काव्य में ऋतु वर्णन तो किया है, लेकिन वह काव्य की सहज धारा से प्रभावित हैं। उनका वर्णन स्वाभाविक है। वे पाण्डित्य प्रदर्शन या काव्यशास्त्र की नियमावली को पूर्ण करने हेतु प्रकृति का चित्रण नहीं करते। अपितु सहज स्वाभाविक रूप से प्रकृति वर्णन करते हैं। वर्षा के बाद उन्होंने शरद् ऋतु का वर्णन किया है, जो नीति और ज्ञान की दृष्टि से सर्वोत्तम है। मानव-जीवन का पूर्ण सार किष्किन्धाकाण्ड में निहित है। वे प्रकृति के सहज स्वाभाविक रूप का वर्णन करते हुए भी गूढ़ ज्ञान की बात उसमें समाहित कर देते हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य का पान करते हुए भी मनुष्य सहज ही मानव-धर्म और मानव-प्रेम की भावना को आत्मसात कर लेता है। अन्य रचनाओं में स्वतन्त्र रूप से ऋतु वर्णन उपलब्ध नहीं है।

पशु-पक्षी वर्णन

तुलसी ने विभिन्न पशु-पक्षियों का चित्रण भी किया है। कभी पशु-पक्षियों द्वारा मानव को सन्देश देते हैं, कभी उनके माध्यम से राम की वीरता का चित्रण करते हैं। अधिकांशतः पशु-पक्षियों का आलम्बनात्मक चित्रण ही किया गया है। ये पशु-पक्षी राम को देखकर प्रसन्न होते हैं और वियुक्त होने पर दुःखी होते हैं। कवि ने कुछ पशु-पक्षियों का केवल नामोल्लेख किया है। उनके क्रियाकलापों का वर्णन अधिक नहीं किया। काव्य में वर्णित पशु-पक्षी यथासम्भव राम की सहायता भी करना चाहते हैं। सज्जनों की मनोवृत्ति के लिए उदात्त स्वभाव के पशु-पक्षियों का चित्रण है।

मानस के आरम्भ में ही प्रतापभानु मृगया के समय एक सूअर देखते हैं, उसके भयंकर रूप का चित्रण कवि ने बहुत स्वाभाविक रूप में किया है–

फिरत बिपिन नृप दीख बराहू। जनु बन दुरेउ ससिहि ग्रसि राहू ॥
बड़ बिधु नहिं समात मुख माहीं। मनहुँ क्रोध बस उगिलत नाहीं ॥
कोल कराल दसन छबि गाई। तनु बिसाल पीवर अधिकाई ॥
घुरुघुरात हय औरो पाएँ। चकित बिलोकत कान उठाएँ ॥[29]

प्रतापभानु ने वन में झूमते हुए एक सूअर देखा। वह बहुत भयानक दाँतों वाला था। उसका शरीर विशाल और मोटा था। जब उसने घोड़े के आने की आहट सुनी तो वह घुरघुराता हुआ कान उठाकर चौकन्ना होकर देखने लगा। सूअर के विकराल स्वरूप का यथातथ्य चित्रण है। आहट पाकर सजग हो जाना पशुओं की सामान्य प्रवृत्ति है।

चातक

चातक का प्रेम एकनिष्ठ होता है। वह स्वाति नक्षत्र की पहली बूँद ही ग्रहण करता है। वह प्यासा होता है फिर भी अन्य प्रकार का जल ग्रहण नहीं करता और प्यासा ही मर जाता है। कवि चातक की इस एकनिष्ठ भक्ति से प्रभावित है। चातक कवि के प्रेम का प्रतीक है। वह कवि की भक्ति-भावना का भी प्रतिनिधित्व करता है। कवि को प्रेम में एकनिष्ठता ही प्रिय है। इसीलिए कवि के लिए मछली का जल से, हरिण का संगीत से, साँप का मणि से प्रेम प्रशंसनीय है। कवि की सभी रचनाओं में चातक को आदरणीय स्थान मिला है। ये कवि के प्रेरणादायक जीव हैं। प्रेम एवं भक्ति के विषय में चातक कवि के लिए गुरु के समान है। इसीलिए कवि बार-बार अपनी रचनाओं में उसके महत्त्व को प्रदर्शित करते हैं और उसकी प्रशंसा करते हैं। उसके अनुरूप बनने की चेष्टा करते हैं और संसार को भी उससे कुछ सीखने के लिए उपदेश देते हैं। उसकी महानता का वर्णन करते हुए उस जैसा बनने के लिए कहते हैं। यह उनके प्रेम का ही प्रतिरूप है। चातक का अपने प्रिय के प्रति प्रेम असीम है। वह इतना कष्ट सहता है और बदले में पानी की एक बूँद चाहता है, उसका प्रेम स्वार्थयुक्त नहीं है। इसी प्रकार भक्त भी केवल ईश्वर का दर्शनाभिलाषी होता है। वह मुक्ति की कामना नहीं करता, अपितु इष्टदेव के प्रति अपने को समर्पित करके प्रेम प्रकट करना चाहता है। इस प्रकार चातक पूर्ण रूप से भक्त बनकर इष्टदेव के सम्बन्ध का प्रतिनिधित्व करता है।

तुलसी कहते हैं कि हे ईश्वर, मुझे चातक जैसा पुण्य, नेम और प्रेम दो। विनयपत्रिका में तुलसी सीता के माध्यम से राम तक अपना सन्देश भिजवाते हैं। वे कहते हैं—"मैं चातक का सा प्रण किए हूँ। मैं मर जाऊँगा, लेकिन राम-भक्ति नहीं त्याग सकता।" भक्ति की गहराई और एकाग्रता को चातक प्रण से प्रदर्शित किया गया है—

रामनाम-रति-स्वाति-सुधासुभ सीकर प्रेमपियासा।
गरजि, तरजि, पाषाण वरषि पवि, प्रीति परखि जिय जानै।
अधिक अधिक अनुराग उमंग उर, पर परमिति पहिचानै।[30]

चातक अन्य पानी की आशा छोड़कर, स्वाति के जल की पवित्र पहली बूँद को ही ग्रहण करता है। ऐसे ही राम-नाम में प्रीति करनी चाहिए। मेघ वज्र गिराता है, ओले बरसाता है, जब प्रीति परख लेता है, तब स्वाति नक्षत्र की बूँद बरसाता है। भगवद्भक्ति में कष्टों का भी सामना करना पड़ता है। उनसे घबराना नहीं चाहिए, बल्कि इष्ट के प्रति प्रेम को और पुष्ट करना चाहिए। चातक प्रेम में असंख्य कष्ट सहता है और अन्त में स्वाति नक्षत्र की एक बूँद प्राप्त करता है। इष्ट के प्रति चातक जैसा ही प्रेम करना चाहिए। इसके अतिरिक्त भी 'विनयपत्रिका' में चातक का अनेक स्थानों पर वर्णन है।[31] कई बार ऐसा भी होता है चातक आकाश में धुएँ के गुबार को

देखकर प्यार के कारण अपनी बुद्धि से उसे मेघ जानता है, परन्तु वहाँ न तो शीतलता है, न पानी है वरन् धुएँ के कारण नेत्रों की हानि होती है। प्रेमी प्रेम में अन्धा हो जाता है और उसे प्रत्येक वस्तु में अपना प्रिय ही प्रतिभासित देता है। प्रेम की तीव्रता को व्यक्त करने के लिए तुलसी चातक के प्रत्येक क्रियाकलाप का वर्णन करते हैं। इसी एकनिष्ठ प्रेम को प्रदर्शित करने के लिए कवि विभिन्न एकनिष्ठ प्रेमियों का वर्णन भी अपने काव्य में करते हैं—

नाद निठुर, समचर सिखी, सलिल सनेह न सूर।
ससि सरोग, दिनकरु बड़े, पयद, प्रेम-पथ कूर ॥[32]

शिकारी निर्दयी होता है, उसे दया नहीं होती, राग सुनकर हरिण राग गाने वाले के पास चला जाता है। राग को यह नहीं लगता कि उसे हरिण को बचाना चाहिए। पतंग दीपक पर पड़कर जल जाता है। दीपक पतंग पर कोई दया नहीं करता। मछली पानी के न रहने पर प्राण त्याग देती है। लेकिन पानी निष्ठुर बना रहता है। चन्द्रमा में दाग है, लेकिन उसके अवगुणों को न देखकर चकोर उसके धोखे में अंगारे चुगता है। मनुष्य उसे पकड़ लेता है, लेकिन चन्द्रमा उसे नहीं बचाता। कमल सूर्य से ऐसा प्रेम रखता है कि उसके बिना नहीं खिलता तो भी जल के बिना सूर्य उसे भस्म कर देता है। इस प्रकार प्रकृति में जहाँ कहीं भी कवि एकनिष्ठ प्रेम देखते हैं, उससे प्रभावित होते हैं, उसका अनुकरण करते हैं, चातक ही नहीं हरिण, पतंगा, मछली, चकोर, कमल, सबका प्रेम अनुकरणीय और प्रशंसनीय है। कवि बार-बार प्रकृति में होने वाले क्रियाकलापों से कुछ-न-कुछ सीखता रहता था। प्रेम एकनिष्ठ है तो एकांगी भी है किन्तु प्रेम महान् है, यद्यपि प्रेमियों के सभी प्रिय निष्ठुर हैं, फिर भी उनके दुर्गुण प्रेमी की तपस्या और प्रेम को भंग नहीं कर सकते। पशु-पक्षियों-फूलों तक में प्रेम की भावना और उसकी तीव्रता को कवि ने स्वीकार किया है। ऐसा ही वर्णन 'दोहावली' और 'गीतावली' में भी है।[33] निःस्वार्थ और एकनिष्ठ प्रेम को बढ़ाना चाहिए, उसकी तीव्रता कम नहीं होनी चाहिए—

चातक तुलसी के मतें, स्वातिहुँ पिऐ न पानि।
प्रेम तृषा बाढ़ति भली, घटें घटेगी आनि ॥[34]

तुलसीदास के मत से चातक को स्वाति नक्षत्र में बरसा हुआ पानी भी नहीं पीना चाहिए, क्योंकि प्रेम की सार्थकता तीव्र होने में है, उसे कम नहीं करना चाहिए। इससे प्रेम सही अर्थों में पुष्ट नहीं हो पाता। तुलसी चातक के प्रेम करने के ढंग से अति प्रभावित हैं। उसको प्रेरणादायक मानते हैं। कवि को इष्टदेव के प्रतापस्वरूप ही प्रकृति प्रफुल्लित दिखाई दे रहा है। प्रकृति के स्वतन्त्र वर्णन के साथ ही कहीं-न-कहीं तुलसी रात से भी जुड़े रहते हैं। उन्हीं की कृपा से वे प्राकृतिक सौन्दर्य का रसपान कर सकते हैं और उसका वर्णन करने में समर्थ हो पाते हैं। तरह-तरह के पक्षियों और

उनके साथ वृक्ष लताओं का स्वाभाविक चित्रण कवि ने सुन्दर रूप में किया है। कहीं भी किसी वस्तु का वर्णन बढ़ा-चढ़ाकर नहीं किया है वरन् जैसा आँख ने देखा और हृदय ने अनुभव किया, उसका शब्दशः वर्णन कर दिया है, यह वर्णन अतीव मनोहारी है।

एक दोहे में सब प्रेमियों का एक साथ वर्णन कर दिया है। बाद में फिर स्वतन्त्र रूप से भी इनका वर्णन कवि ने किया है। चातक के बाद चकोर को भी तुलसी ने अपने काव्य में ऊँचा स्थान दिया है—

रामचन्द्र चन्द्र तू, चकोर मोहि कीजै।[35]

चकोर निरन्तर चन्द्रमा का दर्शन करना चाहता है।[36] इसी प्रकार राम की माताएँ भी अपने नेत्रों को चकोर बनाकर राम के मुखचन्द्र को निहारती हैं। राम बहुत ही सुन्दर थे। चन्द्रमा शीतल और सुखदायी होता है, राम भी वैसे ही शोभा और कान्ति से युक्त हैं। चन्द्रमा से चकोर अत्यधिक प्रेम करता है। इसीलिए तुलसी ने राम की माताओं की चकोर रूप में कल्पना की है। वे भी राम के मुखचन्द्र को चकोर की भाँति निहारती हैं। इसके अतिरिक्त राम के चन्द्र मुख को निहारकर चतुर चकोरी रूप नगर की नारियाँ प्रसन्न होती हैं। राम चन्द्रमा के समान सुन्दर हैं। वह सबका मन हर लेते हैं, कभी माताओं का, कभी पुरवासियों का, प्रत्येक व्यक्ति का प्रेम व्यक्तिगत रूप से उतना ही गहरा होता है, जितना कि पहले व्यक्ति का। जैसे सब चकोर पक्षी चन्द्रमा को प्रेम करते हैं, वैसे ही सम्पूर्ण मानव-जाति को राम अपने मुखचन्द्र से लुभा लेते हैं। प्रत्येक व्यक्ति का प्रेम अपने में उतना ही गहरा होता है, जितना कि प्रत्येक चकोर का चन्द्रमा के प्रति। इसके अतिरिक्त सर्प, मछली, कमल, हरिण आदि के प्रेम का स्वतन्त्र रूप से भी कवि ने चित्रण किया है।

सर्प

तुलसी मनि निज दुति फनिहि, व्याधहि देउ दिखाइ।
बिछुरत होइ न आँधरो, ताते प्रेम न जाइ॥[37]

मणि के लोभ से सर्प के मारने के लिए आए हुए व्याघ को मणि अपने प्रकाश से सर्प भले ही दिखा दे और सर्प को मरवा डाले, परन्तु इतने से मणि के प्रति सर्प का अनुराग कम नहीं होता। वह उस प्रकाश के बिना अन्धा हो जाता है और सिर पटक-पटककर अपने प्राण त्याग देता है। सर्प विषयुक्त होता है, उसे भयंकर माना जाता है। लेकिन प्रेम में ऐसे प्राणी की भी दयनीय स्थिति हो जाती है। वह अपने प्रिय के वियोग में प्राण दे देता है, चाहे उसका प्रिय उसके साथ दुष्टता ही करे। प्रेमी अपने प्रिय से प्रेम करता है उसके अवगुणों की ओर उसका ध्यान नहीं जाता। इस प्रकार एक विषैले जन्तु से भी प्रेम सीखना चाहिए, क्योंकि उसका प्रेम महान् है।

कमल

जरत तुहिन लखि बनज बन रवि दै पीठि पराउ।
उदय बिकस अथवत सकुच मिटै न सहज सुभाउ॥[38]

कमल के वन को पाले से जलते हुए देखकर भी सूर्य, उनकी ओर पीठ देकर चाहे भाग जाए, परन्तु सूर्य के उदय होने पर खिल जाना और अस्त होने पर संकुचित हो जाना कमल का सहज स्वभाव है, जो मिट नहीं सकता। तुलसी का अभिप्राय यह है कि जब प्रकृति के जीव-जन्तु-फूल सब निःस्वार्थ प्रेम करते हैं और प्रतिदान की आशा नहीं करते, तो मनुष्य को इन सबसे कुछ सीखना चाहिए। मनुष्य के पास तो विचार करने के लिए मस्तिष्क है। प्रकृति के माध्यम से कविवर अपनी बात समझाते हैं और इन छोटी-छोटी घटनाओं को इतने बड़े अर्थ में प्रस्तुत करते हैं।

मछली

मगर, पानी के साँप, मेंढक और कछुए आदि जलचर जीवों का जल ही जीवन है और जल ही घर है, परन्तु ये सब जल के बिना जीवित रह सकते हैं, परन्तु जल के साथ सच्चा प्रेम तो मछली है। उसका प्रेम अनुकरणीय है और वह ही इन सब में श्रेष्ठ है—

तुलसी मिटे न मरि मिटेहुँ सांचो सहज सनेह।
मोरसिखा बिनु मूरिहूँ पलुहत गरजत मेह॥[39]

जब चाहे स्वयं अपने हाथ से विष घोलकर मछली को दे दे, पर यदि मछली बिना जल के जीवित रह जाए तो प्रेम की परम्परा समाप्त हो जाएगी। जल द्वारा कैसी भी नीचता करने पर एकनिष्ठ व्रत पालन करने वाली मछली जल के वियोग में जीवित नहीं रह सकती। वास्तव में प्रेम ही इन जीव-जन्तुओं का जीवन है। प्रिय के बिना ये जीवित नहीं रह सकते। प्रिय से प्रतिदान की आशा नहीं करते। मछली का प्रेम भी महान् है। सच्चा स्वाभाविक प्रेम मिटाने पर भी नहीं मिटता। बादलों के गरजते ही मयूरशिखा बूटी बिना जड़ की होने पर भी तुरन्त पनप उठती है। प्रेम सच्चा होना चाहिए। सच्चे प्रेम से असम्भव भी सम्भव हो जाता है, क्योंकि प्रेम में अतीव शक्ति होती है। प्रेम स्वयं अपना मार्ग प्रशस्त करता है। जैसे मयूरशिखा का वर्षा में बिना जड़ के पनपना। इन सब जीव-जन्तुओं में मछली श्रेष्ठ है, क्योंकि बाकी सब प्रेम की पीड़ा को तीव्रता से तो अनुभव करते हैं और प्रिय के वियोग में प्राण भी दे देते हैं, परन्तु प्रिय से वियुक्त होकर कुछ समय तक जीवित रहते हैं, इसके विपरीत मछली पानी से अलग होते ही प्राण त्याग देती है।[40] संसार में प्रियतम और प्रेम दोनों ही सुलभ हैं परन्तु सच्चे प्रेम के नाते मछली से अधिक पवित्र तीनों लोकों में कोई नहीं है, क्योंकि यह एक क्षण के लिए भी प्रियतम का वियोग

सहन नहीं कर सकती। इन जीव-जन्तुओं से प्रेरणा लेकर कवि उनसे अपनी समानता करता है—

स्यामघन गुन वारि, छवि-मीन, मुरलि तान-तरंग।
लक्ष्यो मन बहु भाँति, तुलसी होइ क्यों रस भंग॥[11]

प्रेम-भक्ति में प्रसिद्ध एवं निपुण सभी जीव-जन्तुओं से कवि ने अपनी तुलना की है। कवि भी उनके समान ही प्रेम-भक्ति में निमग्न है और उन सबका सामंजस्य कवि से है। प्रिय कान्ह का श्याम शरीर श्याभ मेघ के समान है, उसमें कवि का चित्त चातक की भाँति लुभाया हुआ है। कान्ह के गुण जल के समान हैं जिसमें कवि का मन मीन के समान निमग्न है। कान्ह की छवि मणि के समान है, उसमें कवि के नेत्र सर्प की भाँति अनुरक्त रहते हैं। कान्ह की मुरली के तान-तरंग व्याघ के कलगान के समान हैं। फिर उसके बाद कवि कहता है कि यह सच है कि मैं एकनिष्ठ प्रेमी हूँ परन्तु इस एकाग्रता का बहुत अधिक मूल्य चुकाना पड़ता है। इसलिए वह मन की पीड़ा और सन्तोष को भी इन्हीं जीव-जन्तुओं की सहायता से व्यक्त करता है। सर्प, मृग, कमल, चातक एवं मीन इन एकांग निष्ठावानों की पंक्ति में बैठकर मूर्ख मन सुख की कामना क्यों करता है? प्रेमी को प्रिय का वियोग भी सहना पड़ता है, प्रेम में अपने प्राणों की आहुति भी देनी पड़ती है। प्रेम और सुख दोनों विरोधी बातें हैं। इसलिए कवि कहता है कि एकनिष्ठ प्रेमियों जैसा बनकर सुख नहीं मिल सकता। जैसे सर्प, मृग, पतंग, कमल, सब प्रेम में अपना जीवन त्याग देते हैं। उसी प्रकार प्रेमियों के जीवन में कष्ट अधिक होता है। इस प्रकार चातक तो कवि की प्रेमाभक्ति का प्रतिनिधि है और अन्य जीव भी उनके प्रेम की पीड़ा एवं एकनिष्ठता को व्यक्त करते हैं। तुलसी मनुष्य की अपेक्षा इन जीव-जन्तुओं से अधिक प्रभावित हैं और उनकी क्रियाओं एवं भावनाओं का अनुकरण करने की प्रेरणा देते हैं। प्रकृति को वे शिक्षक के रूप में देखते हैं। मानव-जीवन के अनेक रहस्यों का अनावरण प्रकृति के विभिन्न क्रियाकलाप ही करते हैं। प्रकृति अनादिकाल से ही मानव को प्रेरणा देती रही है और जीवन के मूल्यों का उद्घाटन करके उनको समझाती रही है।

तुलसी ने प्रकृति के उपदेशात्मक रूप का वर्णन अधिक किया है क्योंकि कवि होने के दायित्व को वे पूर्ण रूप से समझते थे। प्रकृति में विचरण करने वाले पक्षियों एवं अन्य जन्तुओं से प्रेम का पाठ सीखते हैं। वास्तव में प्रकृति हमारा पालन-पोषण करती है। इसलिए उसके नियम अनायास ही हम ग्रहण कर लेते हैं। चातक के माध्यम से गोस्वामी जी ने प्रेम की एकनिष्ठता के महत्त्व को प्रतिपादित किया है। प्रेम प्रतिपादन नहीं चाहता, निःस्वार्थ प्रेम ही श्रेष्ठ है। ये सब विशेषताएँ चातक में विद्यमान हैं। इन्हीं गुणों के कारण ही कवि ने उसे अपना प्रतिनिधि स्वीकार किया है। प्रेम की लगन ही चातक को महान् बनाती है। प्रेम की तीव्रता को व्यक्त करने के

लिए कवि चातक के मुँह की ओर देखता है। प्रकृति में स्वच्छन्द विचरण करने वाले पक्षी भी अपने प्रेम के प्रति पूर्ण समर्पित होते हैं। उनसे कवि शिक्षा ग्रहण करता है और उन जैसा बनने का प्रयत्न करता है। चातक के अतिरिक्त हरिण, मछली, पतंगा, सर्प भी अपने प्रेम के प्रति पूर्ण समर्पित होते हैं। यही समर्पण उन्हें महान् बनाता है। कवि ने प्रकृति में होने वाले प्रत्येक क्रिया-कलाप से प्रेरणा ग्रहण की है और उनके साहचर्य का आनन्द उठाया है। तुलसी ने राम-वन-गमन प्रसंग में राम द्वारा बीहड़ वनों का संक्षिप्त वर्णन करवाया है। इसी प्रकार कहीं-कहीं तुलसी ने भयावह प्राकृतिक वातावरण का भी उल्लेख किया है। सामान्यतः तुलसी को प्रकृति का शान्त, सुरम्य और उदात्त रूप अभीष्ट है। प्रसंगानुसार कहीं-कहीं कवि ने भयावह वातावरण का भी चित्रण किया है—

असुभ होन लागे तब नाना। रौवहिं खर सृगाल बहु स्वाना।
बोलहिं खग अग आरति हेतू। प्रगट भए नभ जहं तहं केतू ॥[42]

लंका में मंदोदरी के मन में तरह-तरह की आशंकाएँ होती हैं और उस समय वातावरण भी असामान्य-सा हो गया है। नाना प्रकार के अपशकुन होने लगे। बहुत-से गदहे, स्यार और कुत्ते रोने लगे। जगत् के अशुभ को सूचित करने के लिए पक्षी बोलने लगे। आकाश में पुच्छल तारे प्रकट हुए, प्रचण्ड वायु बहने लगी, सूर्य ग्रहण होने लगा, पृथ्वी डोलने लगी। इस प्रकार प्रकृति के विनाशकारी रूप का भी कहीं-कहीं कवि ने वर्णन किया है। जब अधर्म बढ़ जाता है तो पृथ्वी का स्वरूप असामान्य हो जाता है।

तुलसी ने प्रकृति-वर्णन में कहीं भी अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन नहीं किया है। सरल एवं सहज प्रवाह से ही वे काव्य-रचना करते गए हैं। अपनी बुद्धि और रुचि के अनुसार उन्हें प्रकृति में जो अभीष्ट हुआ, उसकी रचना करते गए। कहीं भी काव्यशास्त्र की मान्यताओं को पूर्ण करने के हेतु प्रकृति का परम्परागत वर्णन नहीं किया। भावों की भिन्नता होते हुए भी तुलसी-काव्य में कहीं-कहीं प्राकृतिक चित्रण की आवृत्ति है, परन्तु एक पुस्तक से दूसरी पुस्तक में वर्णन कुछ भिन्न हो जाता है। 'मानस' में सर्वत्र उदात्तता और मर्यादा का ध्यान रखा गया है। 'मानस' में प्रकृति-चित्रण स्वाभाविक होते हुए भी 'गीतावली' की अपेक्षा अधिक मर्यादित है। यही चित्रण 'गीतावली' में मर्यादित होते हुए भी सौन्दर्य के प्रति अधिक झुकता दिखलाई देता है। 'मानस' का स्वाभाविक प्रकृति-चित्रण राममय अधिक है। वहाँ राम प्रमुख हैं और प्रकृति-चित्रण गौण है, परन्तु 'गीतावली' में यही चित्रण सौन्दर्योन्मुखी अधिक है। 'विनयपत्रिका' में चित्रण सहज स्वाभाविक नहीं है। वहाँ प्रकृति का स्तुत्य रूप ही दृष्टिगोचर होता है, जैसे गंगा-स्तुति या यमुना-स्तुति। चन्द्रमा के शौर्य ओर प्रताप का वर्णन 'मानस' में है, लेकिन राम-भक्ति के बाहुल्य के कारण अन्त में कवि उसे राम

का दास कहकर सम्बोधित करता है। प्राकृतिक चित्रण वनों, नदियों का अधिक है। मानव-निर्मित प्रकृति के रूप का चित्रण 'गीतावली' में कहीं-कहीं है, कवि सहज नैसर्गिक प्रकृति से अधिक प्रभावित है, मानव-निर्मित वाग-बगीचे उसे प्रभावित करते हुए भी सन्तुष्ट नहीं कर पाते। राम ने भी नगर से अधिक वनों में निवास किया है, विवाह से पूर्व भी कौशिक मुनि उन्हें माँगकर ले गए थे और मार्ग में वन के प्रति उनका सहज कौतूहल और उत्साह आदि सुन्दर रूप में 'मानस' में चित्रित है। 'गीतावली' में कहीं-कहीं नगर के प्राकृतिक सौन्दर्य का भी वर्णन है। ऋतु वर्णन काव्य में प्रमुख स्थान रखता है। तुलसी ने इसका प्रयोग अपने काव्य में किया है परन्तु परम्परा से हटकर। 'मानस' का ऋतु-वर्णन तो दर्शन और ज्ञान का भण्डार है जबकि 'गीतावली' में वही सुकोमल रूप में प्रदर्शित किया गया है।

रूपक द्वारा कवि ने प्रकृति के आलम्बन रूप का वर्णन किया है। यह वर्णन आलम्बन के अन्तर्गत रखा गया है क्योंकि यहाँ कवि को मुख्य रूप से प्रकृति के सौन्दर्य का वर्णन अभीष्ट है। उसी को पुष्ट करने के लिए वह रूपक या उत्प्रेक्षा का आश्रय लेता है। 'मानस' में चित्रकूट का वर्णन इसी वर्ग के अन्तर्गत आता है। इसमें आगे चलकर उसे सेना के सेनापति के रूप में चित्रित किया गया है। इस वर्णन में वीरत्व का भाव अधिक है। वन के पशु, पक्षी, पौधे, सब सेना के अंग हैं। लेकिन वह सेना अपने एक-एक प्रहार से एक-एक पाप नष्ट कर डालती है। यही वर्णन जब 'गीतावली' में कवि चित्रकूट वन के विषय में करता है तो उसमें ऐसा ही रूपक बाँधता है, परन्तु वहाँ कवि के भाव कोमल हैं और अपेक्षाकृत शृंगार भाव की ओर अधिक प्रवृत्त हैं। वन के अंग भँवरा, झरना आदि सब मनुष्य के भावों को प्रदर्शित करते हैं, जबकि मानस में उसी वर्णन में दया, धर्म और मर्यादा अधिक परिलक्षित होती है, 'गीतावली' में वह वर्णन, मात्र प्राकृतिक सौन्दर्य को स्पष्ट करने के लिए किया गया है। इसी प्रकार 'विनयपत्रिका' में वन का रूपक शिव के साथ बाँधा गया है। वहाँ भी शिव के प्रति स्तुत्य भाव होते हुए भी प्राधान्य प्राकृतिक सौन्दर्य के चित्रण का अधिक है। इसीलिए यह चित्रण प्रकृति के आलम्बन रूप के अन्तर्गत आया है। वन के प्रत्येक क्रियाकलाप की शिव के अंगों से तुलना प्राकृतिक सौन्दर्य को और स्पष्ट कर सकी है। इस प्रकार की रूपक-योजना तुलसी-काव्य में अन्यत्र नहीं है। स्वतन्त्र रूप से एक देवता के माध्यम से प्रकृति-चित्रण 'विनयपत्रिका' में उपलब्ध है। 'मानस' में तो और रचनाओं की अपेक्षा राम-भक्ति का प्राधान्य है। इसलिए वहाँ का प्रकृति-चित्रण सौन्दर्य की अपेक्षा राम-भक्ति को अधिक स्पष्ट करता है।

प्रकृति सदैव मनुष्य की अभिन्न संगिनी रही है। इसलिए कविजन काव्य में सरसता और प्रभावोत्पादकता लाने के लिए प्रकृति-चित्रण करते हैं। तुलसी-काव्य में

सामान्य सहज प्रकृति चित्रण भी उपलब्ध है। विभिन्न रचनाओं में इसका समावेश कवि ने किया है। जब मनुष्य प्रसन्न होता है तो प्रकृति भी प्रसन्न एवं प्रफुल्ल दिखाई देती है। वही प्रकृति का उल्लासमय वातावरण दुःख में दुःखमय दिखाई देता है। मनुष्य का स्वभाव है कि अपने आपको सन्तुष्ट करने के लए वह कोई-न-कोई आधार खोज लेता है, प्रकृति इन आधारों में प्रमुख है।

प्राकृतिक वातावरण ऋतुओं के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। जब राम चित्रकूट वन में जाते हैं तो वहाँ का मनोहारी वातावरण कवि को राम के आगमन के कारण सौन्दर्योन्मुखी दिखाई देता है। इसलिए वे कहते हैं कि राम के आगमन के कारण ही प्रकृति अपनी हरीतिमा दिखाकर अपनी प्रसन्नता व्यक्त कर रही है। चारों ओर जो फूल-फल विकसित हैं, वह सब राम का ही प्रताप है, इसी प्रकार 'गीतावली' में भी राम के चित्रकूट निवास के समय प्रकृति का सुन्दर स्वाभाविक चित्रण है। इन दोनों रूपों में काफी समानता है। दोनों ही काव्यों में कवि ने पशु-पक्षियों की बोलियों और फूलों की प्रफुल्लता द्वारा प्रकृति की प्रसन्नता को व्यक्त किया है। दोनों ही वर्णन सरस एवं स्वाभाविक हैं। दोनों में वन में होने वाले क्रिया-कलापों का सुन्दर चित्रण कवि ने किया है। परन्तु 'मानस' में प्रकृति शान्त रूप में प्रसन्न दिखाई देती है, चंचलता और चपलता का उसमें कवि ने समावेश नहीं किया, जबकि 'गीतावली' में वह थोड़ी-सी रसिक हो गई प्रतीत होती है। कवि कहता है कि राम के आने से वन में सदा ऋतुराज वसन्त का प्रभाव बना रहता है, जैसे कि वह कामदेव का विहार-वाटिका हो। यहाँ राम और सीता युगल रूप में वन में निवास कर रहे हैं तो कवि की भावनाएँ भी उसी अनुरूप हैं, लेकिन 'मानस' में ऐसा ही स्वाभाविक चित्रण चित्रकूट के सन्दर्भ में है। उसमें शान्ति और प्रफुल्लता की अपेक्षा हृदय के सात्विक भावों को प्रकृति के माध्यम से व्यक्त किया गया है। 'मानस' में वृक्षों की सम्पन्नता को 'भरे' शब्द या 'फूलहि फलहिं' शब्द के प्रयोग द्वारा व्यक्त करते हैं, यही वर्णन 'गीतावली' में 'सरस फूलत' शब्दों द्वारा किया है। 'मानस' की अपेक्षा 'गीतावली' में रस का प्राधान्य है। 'जानकी मंगल' और 'रामाज्ञा प्रश्न' में भी कहीं-कहीं स्वाभविक प्रकृति चित्रण के दर्शन होते हैं। परन्तु यह रचना बहुत छोटी है इसलिए विस्तार से प्रकृति-वर्णन का कवि के पास अवकाश नहीं है। 'जानकी मंगल' में कौशिक मुनि के साथ वन को जाते हुए बालकों का प्रकृति के उपकरणों के साथ खेलने का सुन्दर चित्रण कवि ने किया है। वन में कभी ये मृगों को पकड़ते हैं, कभी पर्वत, नदी को देखते हैं। इसका मनोवैज्ञानिक चित्रण इस छोटी-सी पुस्तिका में उपलब्ध है। यद्यपि यह चित्रण तुलसी के अन्य महत्वपूर्ण काव्यों की तरह विस्तृत नहीं है, फिर भी अपनी मनोवैज्ञानिक चित्रण शैली के कारण इस चित्रण का महत्त्व स्थापित है। यहाँ कवि ने प्रकृति का चित्रण अन्य रूप में किया

है। घने मेघ छाया करते हैं और अपने इष्ट राम को वन में आया जानकर उनको गर्मी से बचाते हैं। यहाँ प्रकृति प्रफुल्ल दिखाई तो देती है, लेकिन उसमें कवि ने दासत्व भाव को अधिक स्पष्ट किया है। प्रकृति का चित्रण 'मानस' या 'गीतावली' में स्वाभाविक रूप में है और 'जानकी मंगल' में अपनी विनयशील प्रफुल्लता से व्यक्त किया गया है।

'मानस' में तुलसी ने प्रकृति के भयानक रूप का चित्रण अधिक नहीं किया। जहाँ किया भी है वहाँ प्रकृति उद्दीपन रूप के अन्तर्गत आता है, जब वे कहते हैं—"घन घमण्ड घन गर्जत घोरा।" यहाँ प्रिया के वियोग के कारण राम व्याकुल हैं। यद्यपि भयानक और वीभत्स वर्णन 'लंकाकाण्ड' में उपलब्ध है, लेकिन वहाँ वर्णन का आश्रय कवि ने प्रकृति को नहीं बनाया है। 'विनयपत्रिका' में प्रकृति के उपास्य रूप और 'गीतावली' में प्रकृति के कोमल रूप को अभिव्यक्त किया गया है। 'कवितावली' में एक स्थान पर प्रकृति के भयानक रूप का चित्रण दृष्टिगोचर होता है जहाँ पर आग लगने से सभी पशु-पक्षी भय से व्याकुल होकर दौड़ रहे हैं। लेकिन अधिकांशतः ऐसा वर्णन बहुत कम है। कवि को प्रकृति का सुकोमल रूप ही अभीष्ट है। 'श्रीकृष्ण गीतावली' में भी एक स्थान पर इन्द्र के कोप को प्रकृति द्वारा कवि ने स्पष्ट किया है कि बादल ब्रज के ऊपर पानी बरसाते हैं और रह-रहकर भयानक उल्कापात होता है। कवि को प्रकृति का सुकुमार रूप अभीष्ट है, लेकिन भयानकता का भी कवि ने वर्णन किया है क्योंकि यह भी जीवन का सत्य है। जीवन में अच्छा-बुरा सब निहित है। इसलिए जीवन के सत्य से भागने की अपेक्षा उसे अपने काव्य में स्थान देना उचित है। उनके प्राकृतिक वर्णन में भयानकता तो है, लेकिन क्रूरता नहीं है। कहीं भी उन्होंने प्रकृति के अमानवीय रूप को नहीं दिखाया। जो सत्य है, उसे ही अपनी रचनाओं में स्थान दिया है। इसी प्रकार 'रामाज्ञा प्रश्न' में अपशगुन को प्रदर्शित करने के लिए कवि ने निन्दनीय पक्षियों द्वारा प्रकृति का भयानक रूप दिखाया है। वन में शूर्पनखा के प्रसंग में उन्होंने शृगालों का रोना आदि दिखाकर प्रकृति के अनिष्टकारी रूप का चित्रण किया है। इन पशु-पक्षियों की गतिविधियाँ मनुष्य के जीवन पर भी प्रभाव डालती हैं। इसी से ये भावी इष्ट और अनिष्ट की सूचना प्राप्त करते हैं। 'लंकाकाण्ड' में भी युद्ध के समय सियारों का रोना, कुत्तों का रोना आदि अनिष्ट के सूचक हैं। प्रकृति मनुष्य की मित्र है और उसके साहचर्य में ही मानव-जीवन की सार्थकता है। इसी भाव को कवि ने अपने काव्य में स्थान दिया है।

'मानस' और 'गीतावली' में कहीं-कहीं वस्तु-परिगणन शैली द्वारा कवि ने प्राकृतिक सौन्दर्य को स्पष्ट किया है। एक-एक वस्तु का नाम गिनाकर उसका उल्लेख कवि ने किया है। 'मानस' में पम्पासरोवर के प्रसंग में कवि ने सरोवरवर्ती एक-एक

वृक्ष का नाम उद्धृत किया है। चम्पक, वकुल, कदम्ब, तमाल, पाटल, रसाल, इन सबका नाम गिनाकर प्रकृति के सौन्दर्य का वर्णन किया है। ऐसा ही वर्णन 'गीतावली' में भी चित्रकूट वन के प्रसंग में है। कवली, कदम्ब, सुचपक, पाटल, पनस, रसाल आदि वृक्षों के नाम गिनाकर वर्णन किया गया है। दोनों ही वर्णन समान हैं। यहाँ तक कि वृक्षों के नामों की भी पुनरावृत्ति हुई है। यह वर्णन तुलसी की अन्य रचनाओं में उपलब्ध नहीं है। सप्रयास कवि ने इसका चित्रण नहीं किया है। केवल काव्यधारा में प्रवाहित होते हुए कवि प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण कर गया है। यह परम्परा को पूर्ण करने हेतु काव्य में सम्मिलित नहीं किया गया। प्रकृति का सौन्दर्य इतना शक्तिशाली था और उसमें इतनी विविधता थी कि कवि उनका वर्णन करता चला गया। प्रयत्न करके किया गया वर्णन उपलब्ध नहीं है। एक-एक वृक्ष का नाम लेने से प्राकृतिक सौन्दर्य और सम्पन्नता अधिक प्रसर हो उठती है और उसका रसास्वादन सहज हो जाता है। इसीलिए कवि ने प्रकृति के आलम्बन रूप के अन्तर्गत वस्तु-परिगणन शैली का प्रयोग किया है।

रात, दिन, धूप, छाया—ये सब प्रकृति के सहज क्रियाकलाप हैं। इसी प्रकार ऋतुएँ भी समयानुसार आती हैं और जाती हैं। प्रत्येक ऋतु की अपनी विशेषता और अपना आकर्षण होता है। इनका मानव-जीवन पर भी अत्यधिक प्रभाव पड़ता है क्योंकि इनके अनुसार मनुष्य अपने वस्त्र और भोजन निर्धारित करता है। काव्यों में ऋतु-वर्णन कवियों का प्रिय विषय रहा है। बहुधा षड्ऋतु वर्णन या बारहमासा के रूप में यह विषय काव्य में स्थान पाता है। तुलसी ने अपने काव्यों में परम्परागत रूप से इनका चित्रण नहीं किया। तुलसी की दो-तीन रचनाओं में कथा का पूर्ण प्रवाह है। अन्य रचनाएँ या तो मुक्तक रचनाएँ हैं या खण्डकाव्य। इसलिए 'मानस' और 'गीतावली' में ऋतु वर्णन उपलब्ध है, अन्य रचनाओं में नहीं, क्योंकि दोहावली, विनयपत्रिका, वैराग्य संदीपनी तो ज्ञान, दर्शन और नीति पर आधारित पुस्तकें हैं। 'कवितावली' वीर रस से ओतप्रोत काव्य-रचना है। वहाँ ऋतु वर्णन के लिए कवि को अवकाश नहीं मिला। 'मानस' और 'गीतावली' में तुलसी ने ऋतु-वर्णन किया है। लेकिन यह परम्परा से हटकर किया हुआ वर्णन है। 'मानस' का यह वर्णन ऋतु-वर्णन कम दर्शन और ज्ञान का कोष अधिक है। उसमें सारी ऋतुओं का वर्णन उपलब्ध नहीं है। वर्षा ऋतु कवि को विशेष प्रिय है। अन्य हिन्दी कवियों को भी वर्षा ऋतु विशेष प्रिय है। परन्तु पावस का वर्णन बहुधा नायक-नायिका के शृंगारिक भावों को उद्दीप्त करने के लिए किया जाता है, विरह में भी यह ऋतु प्रिय की स्मृति को और प्रज्जवलित कर देती है। तुलसी ने इसका प्रयोग ज्ञान-वर्णन हेतु अपने काव्य में किया है। कवि ने प्रकृति को एक शिक्षक के रूप में प्रस्तुत किया है। गीतावली में वही वर्षा ऋतु का वर्णन स्वाभाविक सौन्दर्य से ओतप्रोत है। 'मानस' में वन की वर्षा ऋतु का वर्णन है,

जबकि 'गीतावली' में अयोध्यापुरी का वर्षा ऋतु-का वर्णन है। यहाँ तालाबों के आसपास पक्षी बोल रहे हैं। मन्द-मन्द फुहारें पड़ रही हैं। चातक, वीर, पारावत सब अपनी वोलियाँ बोल रहे हैं। इन्द्रधनुष आकाश पर दिखाई देता है। इस प्रकार 'गीतावली' का ऋतु वर्णन सौन्दर्योन्मुखी है। इसी प्रकार वसन्त ऋतु वर्णन भी प्राकृतिक सौन्दर्य से समृद्ध है। वहाँ कवि ने प्रकृति को एक शिक्षक के रूप में प्रदर्शित न करके मन की भावनाओं के अनुरूप प्रदर्शित किया है। ऐसा कहा जाता है गुणों से ही वस्तु या मनुष्य का महत्त्व होता है। बाह्य सौन्दर्य तो क्षणिक होता है। अत्यन्त कुरूप वस्तु या व्यक्ति भी अपने गुणों से सम्मान पाता है। बाह्य सौन्दर्य का भी महत्त्व है, एकदम से बहुत सुन्दर वस्तु या व्यक्ति को देखकर मनुष्य को अतीव आनन्द प्राप्त होता है। वह अपनी सुध-बुध खो बैठता है। उसी में रम जाता है। दोनों प्रकार की सुन्दरता का वर्णन कवि ने अपनी विभिन्न रचनाओं में किया है। 'मानस' में प्रकृति के कार्यों और उसके गुणों द्वारा मनुष्य को शिक्षा दी है और 'गीतावली' में प्रकृति के नैसर्गिक सौन्दर्य का रसपान कराया है। इस प्रकार तुलसी का ऋतुवर्णन, परम्परागत न होकर स्वप्रतिभा का प्रमाण है। तुलसी तो स्वयं मार्ग दिखाने वाले थे, वे किसी के बनाए मार्ग पर कैसे चलते। इस प्रकार उनका सम्पूर्ण प्रकृति-चित्रण अपने आप में मौलिक है। उस पर किसी का अनुकरणात्मक प्रभाव परिलक्षित नहीं होता। विचार उन्होंने अवश्य प्राचीन कवियों से प्राप्त किए हैं, शिक्षा उन्होंने अवश्य अन्य कवियों से ली, परन्तु उसे पुष्ट अपने मौलिक चिन्तन से ही किया है।

मानसकार ने तीन ऋतुओं का वर्णन किया है। वर्षा, शरद और वसन्त ऋतु का वर्णन उनके काव्य में मिलता है। प्रकृति चित्रण में ऋतुओं के वर्णन में उन्होंने विशेष रुचि नहीं ली, अपितु ऋतु वर्णन को उपदेश का माध्यम बनाया है। प्रमुख रूप से जो मनुष्य के जीवन पर प्रभाव डालती है, उन्हीं ऋतुओं को कवि ने काव्य में स्थान दिया है। श्रृंगारी कवि विषयी मन पर पड़ने वाले प्रभाव का चित्रण ऋतुओं के अनुसार किया करते थे। गोस्वामी तुलसीदास मर्यादा के अनुसार मन के भावों का चित्रण करते हैं। इसलिए प्रत्येक ऋतु और प्रत्येक मास का वर्णन उनका अभीष्ट नहीं है। उन्होंने काव्य-परम्परा के अनुसार ऋतु-वर्णन नहीं किया, प्रत्युत भागवत के प्रभाव से कुछ चित्रों में रुचि दिखलाई है।

कवि जब किसी रचना का निर्माण करता है तो अप्रस्तुत रूप से उसमें उसका व्यक्तित्व प्रतिभासित होता है। रचनाकार अपनी रचना से कैसे भिन्न हो सकता है, वह तो उसके अक्षर-अक्षर में विद्यमान रहता है। किसी भी कवि की रचनाओं से उसका व्यक्तित्व आसानी से जाना जा सकता है। तुलसी रामभक्त थे वह सर्वविदित है, लेकिन यह तथ्य लोगों ने उनकी रचनाओं को पढ़ने के उपरान्त ही जाना। तुलसी-काव्य के प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत पक्ष में उनका व्यक्तित्व सर्वत्र झाँकता हुआ मिलता है।

तुलसी जीवन में मर्यादा के बहुत अधिक समर्थक थे। यही तथ्य उनके प्रकृति-चित्रण के आलम्बन रूप में भी प्राप्त होता है। वे प्रकृति का बहुधा सुन्दर, कोमल चित्रण करते हैं, उनमें कहीं भी अमर्यादित वर्णन दृष्टिगोचर नहीं होता। उनके प्रकृति-वर्णन के फूल, पौधे, पशु, पक्षी, नदियाँ सब प्रसन्नता और सुख को प्रदर्शित करते हैं। कहीं भी जीवन के अमानवीय भावों को प्रदर्शित नहीं किया गया। वे सदा यही कहते हैं कि जिस प्रकार मेघ पानी का दान करते हैं, वृक्ष सबकी छाया करते हैं, उसी प्रकार मानव भी उन गुणों को जीवन में अपना सकता है। इस प्रकार के मानवीय गुणों की जमकर वकालत करते हैं।

संसार में अच्छे-बुरे सब प्रकार के लोग होते हैं, परन्तु तुलसीदास उनमें से सन्तों के समर्थक और दुष्टों के निन्दक थे। प्रकृति में जिस स्वाभाविक सौन्दर्य का चित्रण उन्होंने किया है, वे जीवन में भी उसी सौन्दर्य और कोमल भावना को लाना चाहते थे। इसीलिए 'मानस' में उन्होंने चित्रकूट वन को एक शिकारी के रूप में प्रदर्शित किया है, जिसका निशाना अचूक है और जो एक-एक पाप को अपने निशाने का शिकार बनाता है।

'मानस' का किष्किन्धाकाण्ड भी ऋतु का वर्णन और नीति का दर्पण है। मनुष्य अपनी धन सम्पदा, पुत्र नारी आदि में खो जाता है और उनके चले जाने पर व्याकुल हो जाता है, जैसे शरद् ऋतु में पानी कम हो जाने के कारण मछलियाँ व्याकुल होती हैं। प्रकृति द्वारा जीवन के रहस्य को समझाया है। तुलसी को इस जगत् की असारता का ज्ञान था और वे बाह्य सौन्दर्य से कभी प्रभावित नहीं होते थे, क्योंकि उन्हें प्रत्येक वस्तु की नश्वरता का ज्ञान था। वे सत्संगति और साधुजनों के समर्थक थे। यह उन्होंने प्रकृति के माध्यम से सरल रूप से समझाया है।

'तुलसी' सौन्दर्य विरोधी नहीं थे। प्रकृति के सौन्दर्य का उन्होंने सुन्दर चित्रण किया है। प्राकृतिक नियमों का उन्हें पूर्ण ज्ञान था। उन्होंने प्रकृति के सान्निध्य में रहकर काव्य-रचना की होगी क्योंकि इतना सरस, सुन्दर और प्रभांवशाली प्रकृति-वर्णन कल्पना द्वारा सम्भव नहीं है। शरद्, वर्षा और वसन्त ऋतु की पूर्ण विशेषताएँ उनके काव्य में उपलब्ध हैं, इसलिए उनके प्राकृतिक वर्णन में वर्णित छोटी-सी घटना भी तुलसी के कौशल से प्रभावशाली हो जाती है। उनकी रचनाओं की यही विशेषता है कि कोई भी प्रांकृतिक वर्णन ऐसा नहीं है, जिसे पाठक हृदयंगम न कर पाए। वर्षा ऋतु में मोरों का बोलना और नाचना, बिजली का चमकना, शुक की मधुर ध्वनियाँ, फूलों का खिलना, आकाश में बगुलों की पंक्ति, मेघों का कुछ समय के अन्तराल में बरसना, कभी फुहार पड़ना, कभी मूसलाधार वर्षा, तालाबों, नदियों का पानी से भर जाना। तुलसी को प्रकृति से विशेष लगाव था, लेकिन वे कल्पना द्वारा नहीं अपितु अनुभव और हृदय के माध्यम से उसका वर्णन करते थे। प्रकृति के

सौन्दर्य से अभिभूत होकर उन्होंने प्रकृति का सहज स्वाभाविक वर्णन किया है। प्रकृति का सौन्दर्य उसके पवित्र एवं अकाट्य नियमों में है, उसका बाह्य रूप भी उन्हीं नियमों का उद्घाटन मात्र है।

तुलसी ने प्रभात वर्णन, चन्द्र वर्णन, सरोवर वर्णन में प्रकृति का सरल, सहज और पवित्र चित्रण किया है। इष्ट देव के सान्निध्य में प्रकृति भी विनम्र हो जाती हैं। प्रातःकाल राम को जगाते हुए 'गीतावली' में बहुत ही सरल रूप से राम की माता कहती हैं, सवेरा हो गया, मुर्गे बोलने लगे, कमल खिल गए, चन्द्रमा अस्त हो गया, अब तुम उठो। यहाँ सात्विक भाव और वात्सल्य को प्रकट करने के लिए पृष्ठभूमि बनाकर प्रकृति साधारण रूप में चित्रित की गई है।

तुलसी प्रेम की एकनिष्ठता के समर्थक थे। इसीलिए अपने काव्य में उन्होंने मछली, कमल, चातक, पतंग, चकोर, हरिण आदि को आदरणीय स्थान दिया है। ये सब प्रेम की एकनिष्ठता के प्रतीक हैं। अपने प्रिय के वियोग में प्राण त्याग देते हैं। प्रकृति के ये सजीव अंग भक्त के आदर्श हैं।

प्रकृति के आलम्बन रूप के अन्तर्गत कवि ने पशु-पक्षियों, वनस्पति, सूर्य, चन्द्र, ऋतुओं आदि का सरल स्वाभाविक चित्रण किया है। कई पर्वतों का तो नामोल्लेख ही है, उनका प्राकृतिक वर्णन नहीं है। तुलसी ने प्रसंगानुसार प्रकृति का सहज चित्रण किया, उसको अपने आचार्यत्व से बोझिल नहीं बनाया। विषयानुसार जिस प्रकार का प्रकृति-वर्णन आदर्श, अनुकरणीय एवं उचित था, वैसा ही वर्णन तुलसी-काव्य में उपलब्ध है।

इस प्रकार कवि ने प्रकृति के आलम्बन रूप के अन्तर्गत प्रकृति का सहज, सरल, सुन्दर स्वाभाविक वर्णन किया है। गोस्वामी जी प्रकृति के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उसमें अपने इष्टदेव एवं उनके आदर्शों का स्वरूप देखते हैं और उसी का वर्णन पाठक के निमित्त प्रस्तुत कर देते हैं। समाज के कवि होकर भी वे प्रकृति के अपूर्व द्रष्टा और उसके वैदिक स्वरूप के अनन्य चित्रकार सिद्ध होते हैं।

सन्दर्भ

1. रामचरितामनस, 1/238/4
2. गीतावली, 1/36/5
3. वही, 1/38-39/2-1
4. रामचरितमानस, 6/5
5. वही, 2/124/3, 4
6. वही, 6/11
7. वही, 6/12/4
8. वही, 3/40/3
9. कृष्ण गीतावली, 18/203
10. कवितावली, 7/143/102
11. रामचरितमानस, 2/133/2
12. विनयपत्रिका, 18/3, 4 —वि.प्र. 20
13. वही, 21/1, 2
14. रामचरितमानस, 3/40/1
15. वही, 7/4 छन्द
16. वही, 7/56/2, 3

17. वही, 3/38/3
18. ग़ीतावली, 2/47/9
19. रामचरितमानस, 7/23/1, 2
20. गीतावली, 2/46/5-6
21. रामचरितमानस, 2/62/3, 4
22. विनयपत्रिका, 14
23. गीतावली, 2/49/1-5
24. रामचरितमानस, 4/15/3
25. वही, 4/15 दो.
26. गीतावली, 7/18/3
27. वही, 7/23/3
28. रामचरितमानस, 4/16/4
मानस, 4/17/4 भी
29. रामचरितमानस, 1/156/3, 4
30. विनयपत्रिका, 65/1
31. वही, 78/2, 90/2
32. वही, 191
33. दोहावली, 278-314
कवितावली, 1/32/2, 1/33/1
34. दोहावली, 279
35. विनयपत्रिका, 80/5
36. वही, 35/1
37. दोहावली, 315
38. दो. 316
39. दो. 319
40. दो. 320
41. कृष्ण गीतावली, 54/4
42. रामचरितमानस, 6/78/2

3

तुलसी-काव्य में प्रकृति का उद्दीपन रूप

प्रकृति के अवयवों से जो सम्मोहनकारी वातावरण उत्पन्न होता है, जो कि हृदय के भावों का प्रतिनिधित्व करता है, प्रकृति का उद्दीपन रूप कहलाता है। यह प्राकृतिक वातावरण संयोग शृंगार में नायक-नायिका का सहायक होता है और वियोग में ये ही प्राकृतिक अवयव विपरीत लगने लगते हैं। संयोग में प्रकृति नायक-नायिका के शृंगारिक भावों को उद्दीप्त करती है, फूल-पत्ते, वृक्ष, पशु-पक्षी सब नायक-नायिका के सहायक होते हैं और प्राकृतिक वातावरण नायक-नायिका के भावों के अनुकूल होता है। लेकिन वियोग में संयोग का वही सुन्दर वातावरण विपरीत लगने लगता है, चन्द्रमा की चाँदनी उष्ण लगती है। तुलसी ने अपने काव्य में प्रकृति का संयोग और वियोग दोनों पक्षों में प्रयोग किया है।

उपवन

स्वयंवर से पहले राम-लक्ष्मण गुरु के साथ मिथिला आए हुए हैं। प्रातःकाल पूजा के लिए वे बाग में गए। उस समय उस उपवन और वातावरण का चित्रण उनके भावों को उद्दीप्त करता है—

भूप बागु बर देखेउ जाई। जहं बसन्त रितु रही लोभाई ॥
लागे बिटप मनोहर नाना। बरन बरन बर बेलि बिताना ॥
नव पल्लव फल सुमन सुहाए। निज सम्पत्ति सुर रुख लजाए ॥
चातक कोकिल कीर चकोरा। कूजत बिहग नटत कल भोरा ॥[1]

जनक के उपवन में बसन्त ऋतु चित्ताकर्षक लग रही है। मन को लुभाने वाले अनेक वृक्ष लगे हैं। रंग-बिरंगे उत्तम लताओं के मण्डप छाए हुए हैं। नये पत्तों, फलों और फूलों से युक्त वृक्ष हैं, भ्रमर गुंजार रहे हैं, तालाब में जल पक्षी कलरव कर रहे हैं, उसमें कमल खिले हुए हैं। बाग का रमणीय वातावरण सत्य ही अद्‌भुत था। एक विचित्र प्रकार का उल्लास छाया हुआ था। उपवन में चारों ओर एक मोहिनी-सी छायी हुई थी। सब ओर प्रसन्नता और प्रेम का आभास दृष्टिगोचर होता है। सारी सृष्टि सन्तुष्ट और अपने में मग्न दृष्टिगोचर होती है। उस समय का प्राकृतिक वातावरण मन को प्रफुल्लित करने वाला है। इस प्रकार प्रकृति का मनोमुग्धकारी और उद्दीपनात्मक

वर्णन कवि ने किया है।

उस समय सीता भी गौरी पूजन के लिए उपवन में आई हुई थीं। एक सखी फुलवाड़ी देखने गई। वहाँ उसने राम, लक्ष्मण को देखा और सीता के सम्मुख राम के सौन्दर्य का वर्णन किया। उसी वर्णन से सीता के मन में प्रेम और उत्कण्ठा उत्पन्न हुई–

सुमिरि सीय नारद बचन उपजी प्रीति पुनीत।
चकित बिलोकति सकल दिसि जनु सिसु मृगी सभीत।[2]

राम-सौन्दर्य-वर्णन सुनकर सीता के मन में प्रीति उत्पन्न हुई, वे चकित होकर इधर-उधर देख रही हैं मानो डरी हुई मृगछोनी हो। 'सिसु मृगी' द्वारा कवि ने सीता के सात्विक भय, सुन्दरता, कोमलता एवं भोलपेन को प्रकट किया है। उपवन में जैसे शिशु मृगी सुन्दर लगती है, वैसे ही सीता उस उपवन में शोभायमान हैं।

चन्द्रमा

राम के आगमन का समाचार पाकर वे राम-दर्शनों की इच्छुक हो उठीं–

अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा॥
भए बिलोचन चारु अचंचल। मनहूँ सकुचि निमि तजे दिगंचल॥[3]

सीता के कंकन, करधनी और नूपुर के शब्द सुनकर राम कहते हैं कि कामदेव ने डंके पर चोट मारी है। राम के हृदय में शृंगार भाव जागृत हो गया। इसके बाद राम ने सीता को देखा तो सीता के मुख रूपी चन्द्रमा के लिए राम के नेत्र चकोर हो गए। सीता के मुख को चन्द्र और राम के नेत्रों को चकोर मानने से प्रीति का महात्म्यपूर्ण रूप स्पष्ट हो गया। प्रकृति के इस अपूर्व प्रेम सम्बन्ध द्वारा राम-सीता-प्रेम की पवित्रता, एकनिष्ठता और तीव्रता पूर्ण रूप से व्यक्त हो गई। चकोर चन्द्रमा से ही प्रीति करता है। प्रेम में जैसी दशा सीता की है, वैसी ही राम की भी है। कवि ने पहले राम के प्रेम को व्यक्त करने के लिए चन्द्र-चकोर के प्रेम का आश्रय लिया था, अब सीता के प्रेम को व्यक्त करने के लिए भी चन्द्र और चकोरी का आश्रय कवि ने लिया है–

थके नयन रघुपति छबि देखे। पलकन्हिहूँ परिहरीं निमेषें।
अधिक सनेहँ देह मै भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी।[4]

सीता भी प्रेम विह्वल हो गईं और राम रूपी शरद् के चन्द्रमा को बेसुध चकोरी की तरह देख रही हैं। दोनों की एक-सी ही दशा का वर्णन किया गया है। चकोर की चन्द्रमा से प्रीति का आश्रय लेकर तीव्र प्रेम को अभिव्यक्त किया है। लेकिन तुलसी ने मर्यादा का सर्वत्र ध्यान रखा है। उनका शृंगारिक वर्णन कहीं भी अश्लील नहीं है। प्रकृति के अवयवों का आश्रय लेकर कवि ने मर्यादा-पुष्ट प्रेम का वर्णन किया है।

चन्द्रमा प्रेमियों के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक अवयव है।

प्रेम में प्रेमी अपनी प्रिया की प्रशंसा करता है। प्रिय को अपनी प्रिया भी सबसे उत्तम लगती है। चन्द्रमा को शीतलता और सौन्दर्य का प्रतीक माना गया है। लेकिन यह चन्द्रमा भी सीता के समक्ष दोषयुक्त प्रतीत होता है। प्रकृति और मानवीय सृष्टि में राम को केवल अपनी प्रिया ही सुन्दर लगती है क्योंकि वे इतनी सुन्दर है कि सौन्दर्य का प्रतिनिधि चन्द्रमा भी उनके समक्ष दोषयुक्त प्रतीत होता है–

जनमु सिन्धु, पुनि बन्धु विषु, दिन मलीन सकलंक।
सिय मुख समता पाव किमि चन्दु बापुरो रंक ॥[5]

खारे समुद्र से उत्पन्न चन्द्रमा विष का भाई है, चन्द्रमा दिन में क्षीण हो जाता है, लेकिन सीता तो रात-दिन सौन्दर्य श्री से युक्त हैं। इस प्रकार प्राकृतिक अवयव चन्द्रमा को हीन बताया गया है। इससे सीता के प्रति राम का प्रेम अधिक स्पष्ट होता है। सीता के मुख की चन्द्रमा से तुलना राम के प्रेम की तीव्रता को व्यक्त करती है।

विनयपत्रिका, दोहावली, वैराग्य संदीपनी में दर्शन, ज्ञान, नीति की बातें हैं। वहाँ कवि को शृंगार रस का अवकाश नहीं है। 'कवितावली' में मुख्यतः वीर रस वर्णित है। 'जानकी मंगल' और 'पार्वती मंगल' में कवि ने नायक-नायिका की प्रसन्नता का साधन भौतिक वस्तुओं द्वारा व्यक्त किया है। विवाह नगर में हो रहा है इसलिए प्राकृतिक वर्णन सम्भव नहीं था। चन्द्रमा अब वियोग में कितना दुःखदायी है, इसका वर्णन भी कवि ने किया है। अब तक शृंगार में इसकी चाँदनी सुखदायी थी, लेकिन वियोग में यही असहनीय है–

सीतलता ससि की रहिं सब जग छाइ।
अगिनि ताइ ह्वै हम कहं संचरत आइ ॥[6]

चन्द्रमा की शीतलता संसार में व्याप्त हो रही है। जानकी के वियोग में तपे शरीर से लगकर वह शीतलता अग्नि-सी ताप धारण कर लेती है। यहाँ चन्द्रमा की शीतलता सीता को शीतल नहीं लगी वरन् स्वयं उष्ण हो गई। यहाँ विरहानल को व्यक्त करने के लिए कवि ने प्रकृति के उद्दीपन रूप का आश्रय लिया है। चन्द्रमा की उष्णता ही कवि के भावपूर्ण रूप से मुखर कर सकी है।

उजिवरिया निसि नहिं धाम।
जगत जरत अस लागु मोहि बिनु राम।[7]

प्रियवियुक्त सीता को रात्रि की फैली हुई चाँदनी धूप के समान लगती है। राम-वियुक्त जगत् उन्हें जलता हुआ प्रतीत होता है। मानस के अतिरिक्त अन्य रचनाओं में कवि ने प्रकृति के उद्दीपन रूप का वर्णन अधिक नहीं किया, क्योंकि उनका प्रमुख लक्ष्य शान्ति, धर्म, प्रेम, दया और नीति का वर्णन करना था।

'श्रीकृष्ण गीतावली' में यही चन्द्रमा गोपियों का वैरी है—

सन्तत दुखद सखी, रजनीकर

स्वारथ रत्त तब अबहूँ एकरस मोका कबहूँ न भयो तापहर।

× × ×

अब बिनु मन, तन दहन दया तजि, राखत रवि छवै नयन बारिधर।[8]

चन्द्रमा सदा दुःखदायी है। रास-विलास के समय यह पूर्ण कलाओं से उचित नहीं हुआ था। अब यह दया छोड़कर विरहाग्नि में जलाता है। नेत्र रूपी मेघ उस विरहाग्नि से रक्षा करते हैं। नेत्रों के देवता सूर्य हैं और उस अश्रुपात से ही विरहाग्नि थोड़ी कम होती है। चन्द्रमा गोपियों के लिए तापहारी नहीं है। रात्रि सब प्रकार के तापों का हरण करती है और चन्द्रमा शीतलता प्रदान करता है। गोपियों का साथ दूर करना तो अलग वही चन्द्र उष्मा देता है। जो चन्द्रमा इतनी दया करता है, वही गोपियों को स्वार्थी प्रतीत होता है। इस प्रकार सभी रचनाओं में विरह वर्णन में मुख्यतः समानता है। विरह में हर रचना में नायक या नायिका को प्रकृति विपरीत लगती है और उसकी विशेषताएँ भी असामान्य प्रतीत होती है।

कमल

उपवन में राम सीता को देखकर प्रेम विभोर हो जाते हैं और निरन्तर सीता का ही ध्यान करते हैं।

करत बतकही अनुज सन मन सिय रूप लोभान।

मुख सरोज मकरन्द छबि करइ मधुप इव पान।[9]

लक्ष्मण से बात करते हुए भी राम मानसिक रूप से सीता के समीप हैं। वे सीता के मुख रूपी कमल के छवि रूपी मकरन्द को भौंरे की तरह पी रहे हैं। कमल के ऊपर भ्रमर की आसक्ति द्वारा राम के प्रेम का उद्दीपनात्मक वर्णन है। सीता की भी यही दशा है—

चितवति चकित चहूँ दिसि सीता। कहं गए नृपकिसोर मनु चिन्ता।

जहं बिलोक मृग सावक नैनी। जनु तहं बरिस कमल सित श्रेनी।[10]

सीता चकित हैं कि वे दोनों कुमार कहाँ गए। बाल मृगनयनी सीता जहाँ दृष्टि डालती हैं, वहाँ मानो श्वेत कमलों की पंक्ति बरस जाती है। कमलों से उनकी दृष्टि की उपमा देने से कवि का तात्पर्य है कि सीता की दृष्टि मनोमुग्धकारी थी। वे सर्वत्र प्रफुल्लता का संचार करती थीं। कमलों की पंक्तियों द्वारा कवि ने सीता की दृष्टि की सुन्दरता एवं उन्माद को प्रदर्शित किया है। श्वेत कमल की पंक्तियाँ श्रृंगारिक भावों के साथ पवित्रता और सात्विक भावों को भी प्रकट करती हैं। लता की ओर से सखियाँ तपी राम का दर्शन करवाती हैं—

लता ओट तब सखिन्ह लखाए। स्यामल गौर किसोर सुहाए।
देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने ॥[11]

लता की ओट से नायिका का अपने प्रिय को देखना स्त्री स्वभाव का सुन्दर चित्रण है। उत्सुकता तो सीता रोक नहीं पातीं, लेकिन लज्जा उन्हें सामने आने से रोकती है। इस प्रकार वे लता की ओट से अपने प्रिय को देखती हैं। प्रकृति का अंग लता प्रिय-दर्शन में उनकी सहायता करता है और लज्जा का आवरण भी बनता है।

कमल शारीरिक सौन्दर्य की वृद्धि करता है। शरीर के जो अंग सुन्दर होते हैं, उनकी उपमा कमल के साथ दी जाती है—

भाल तिलक श्रमबिन्दु सुहाए। श्रवन सुभग भूषन छबि छाए।
बिकट भृकुटि कच घूघरवारे। नव सरोज लोचन रतनारे ॥[12]

राम के माथे पर तिलक और पसीने की बूँदे शोभायमान हैं। नये लाल कमल के समान लाल नेत्र हैं। कमल तो तुलसी को विशेष प्रिय हैं। इससे तो वे हर अंग की उपमा देते हैं, क्योंकि यह कोमलता और प्रफुल्लता का प्रतीक है। कमल लाल और कोमल होता है, सद्यःविकसित तो कोमलता की सीमा से भी परे होता है। राम के नेत्र सद्यःविकसित कमल के समान लाल और सुन्दर हैं, जिन्हें देखकर सीता अपनी सुधबुध खो बैठती हैं।

जिस प्रकार सीता के आभूषणों और सौन्दर्य का वर्णन है, उसी प्रकार दोनों भाइयों के भी रूप वर्णन को प्रकृति के माध्यम से कवि ने व्यक्त किया है—

सौभा सीवँ सुभग दोउ बीरा। नील पीत जलजाभ सरीरा।
मोरपंख सिर सोहत नीके। गुच्छ बिच बीच कुसुम कली के ॥[13]

राम ने कलियों के आभूषण धारण किए हैं। सिर पर मोर पंख सुशोभित हैं। उनके शरीर की आभा नीले और पीले कमल-सी है। उनके बीच-बीच में फूलों की कलियों के गुच्छे लगे हैं। शृंगार के लिए राम ने कलियाँ धारण की हैं, जो उनके सौन्दर्य को द्विगुणित कर देती हैं। उनका वर्ण कमल के वर्ण के समान स्निग्ध, चमकीला और शोभायुक्त है।

बरवै रामायण में सीता के विरह का सुन्दर वर्णन किया है। इसमें केतकी पुष्प की प्रफुल्लता का प्रयोग अति सटीक है—

सीय बरन सम केतकी अति हिय हारि।
कहेसि भँवर कर हरवा हृदय बिदारि ॥[14]

सीता के वर्ण की साम्य करते हुए निराश होकर केतकी पुष्प ने अपना हृदय फाड़ दिया है। कलंक रूप में भौरों की माला पहन ली है। केतकी पुष्प के माध्यम से प्रथम तो कवि ने सीता के सौन्दर्य का वर्णन किया है। केतकी पुष्प का खिलना कहना कवि को अभीष्ट नहीं है, अपितु पुष्प का हृदय फाड़ देना कहना अधिक समीचीन है, क्योंकि यह सीता के दुःख को पूर्ण रूप से व्यक्त करता है। पुष्प के ऊपर बैठा हुआ

भँवरा मानो कलंक है। इस प्रकार केतकी पुष्प के माध्यम से कवि ने सीता के सौन्दर्य, शोक और कलंक का वर्णन वियोग श्रृंगार के अन्तर्गत किया है।

सूर्य

कृष्ण गीतावली में उद्धव विरह-तप्त गोपियों को ज्ञान-सन्देश देते हैं, लेकिन विरह-व्याकुल गोपियाँ अपने प्रेम को छोड़ने के लिए तैयार नहीं है और कहती हैं–

जब तें ब्रज तजि गये कन्हाई।
तब तें विरह-रबि उदित, एक रस सखि बिछुरनि वुष पाई।
घटत न तेज, चलत नाहिन रथ, रह्यो उर भर नभ पर छाई।
इन्द्रिय रूपरासि सोचहिं सीवे, सुधि सबकी बिसराई।[15]

जब से कृष्ण गए हैं, सूर्य निरन्तर उदित रहता है। उसका तेज भी घटता-बढ़ता नहीं वरन् ज्येष्ठ की दुपहरी के तप्त सूर्यवत् निरन्तर विरह ताप देता रहता है। इसका रथ तो चलता ही नहीं है। सूर्य चौबीस घण्टे उदित रहे, यह अनहोनी बात है, लेकिन विरह में सब विपरीत बातें ही होती हैं। किसी भी राशि का सूर्य उन्हें अत्यधिक गर्मी देता है। सर्दियों में धूप सुखदायक होती है, लेकिन विरह रूपी सूर्य के हमेशा तप्त रहने से गोपियाँ विरह की भयंकर ज्वाला में जल रही हैं–

ससि तैं सीतल मोको लागे माई री तरनि।
माके ऊरन बरति अंग-अंग दव
बाके उरु मिटति रजनि जनित जरमि।
सब विपरीत भये माधव बिनु
हित जो करत अनहित की करनि।[16]

गोपियाँ कहती हैं कि चन्द्रमा से तो सूर्य ही शीतल लगता है। इस चन्द्रमा के उदय होने पर अंग-अंग से अधिक आग निकलती है और सूर्य के उदय होने से रात की जलन दूर होती है। कृष्ण के बिना सब विपरीत लगता है। सूर्य की जलन में गोपियों की तन-मन की जलन सम्मिलित हो जाती है। चन्द्रमा की चाँदनी उस जलन को उद्दीप्त करती हैं, जिससे जलन और बढ़ जाती है। यहाँ प्राप्त वेग सूर्य की सामान्य विशेषता गोपियों को विपरीत प्रतीत हो रही है।

'मानस' में भी राम-विरह के प्रसंग में इस प्रकार का वर्णन उपलब्ध है–

कहेउ राम बियोग तब सीता। मो कहुँ सकल भए बिपरीता।
नव तरु किसलय मनहुँ कृसानु। काल निसा सम निसि ससि भानु।
कुबलय बिपिन कुन्त बन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा।
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा।
कहेहूँ ते कछु दुःख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई।[17]

सीता के वियोग में राम को सभी प्राकृतिक वस्तुएँ उलटे स्वभाव की प्रतीत होती हैं। जो वस्तुएँ सीता सान्निध्य में रुचिकर प्रतीत होती थीं, वे ही शत्रुवत् लगने लगी हैं। इसलिए राम कहते हैं कि सीता के वियोग में सब विपरीत हो गया है। वृक्षों के नये कोमल पत्ते अग्नि के समान, चन्द्रमा सूर्य के समान, कमल वन भालों के समान हो गए हैं। मेघ खौलता हुआ तेल बरसाते हैं। जो हितकारी प्राकृतिक अवयव हैं, वे पीड़ादायक हो गए हैं। त्रिविध वायु सर्प के समान जहरीली हो गई है। विरह की पीड़ा इतनी तीव्र है कि सुन्दर कोमल और सहायक प्रकृति विपरीत एवं कष्टप्रद प्रतीत होती है। प्रकृति नायक के विरह मात्र को और भी तीव्र कर रही है–

पावक-विरह समीर स्वास तनु तूल मिल तुम जारनि हारे।
तिन्हहिं निदरि अपनो हित कारन नयना निपुन रखवारे।[18]

विरह अग्निरूप है। आह भरे श्वास विरहाग्नि को बढ़ाने वाली वायु है। विरह ताप से सूखा शरीर रुई के समान तुरन्त जल जाएगा। यहाँ विरह को अग्नि के समान और आहों को अग्निवर्धक वायु के समान माना है। यहाँ प्राकृतिक साधनों द्वारा कवि ने विरह की तीव्रता को व्यक्त किया है।

पशु-पक्षी वर्णन

प्रकृति में स्वच्छन्द विचरण करने वाले पशु-पक्षियों का आश्रय लेकर नायक-नायिका अपने प्रेम को व्यक्त करते हैं। इनके बहाने अपने मन को शान्ति देते हैं। सीता के प्रेम की संयम और मर्यादा की सीमा एक कंचन मृग के वर्णन द्वारा कवि ने व्यक्त की है–

देखन मिस मृग बिहग तरु फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छवि बाढ़इ प्रीति न थोरि ॥[19]

सीता जब वापिस जाने लगी तो मृग देखने के बहाने बार-बार मुड़कर पीछे देखती है। राम-दर्शन की अभिलाषा और व्याकुलता का चित्रण कवि ने मृग के माध्यम से सुन्दर रूप से किया है। वे कुलीन हैं, अमर्यादित व्यवहार नहीं कर सकतीं। इसलिए प्रकृति का आश्रय लेकर अपनी अभिलाषा पूर्ण करती हैं।

राम विरह वर्णन में वियोग शृंगार की सफल व्यंजना हुई है–

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी।
खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रबीना।
कुन्द कली दाड़िम दामिनी। कमल सरद रासि अहिभामिनी।
बरुन पास मनोज धनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा।[20]

राम विरह में इतने व्याकुल हैं कि पक्षियों तक से अपनी प्रिया का पता पूछने लगते हैं। खंजन, तोता, कबूतर, हिरन, मछली, भौरों का समूह, कोयल, कुन्दकली,

अनार, बिजली, कमल, शरद का चन्द्रमा, नाग्नि, कामदेव का धनुष, हंस, गज और सिंह अपनी प्रशंसा सुन रहे हैं। प्रकृति के अवयवों से सीता के अंगों की स्मृति संस्फुरित होती है। इसमें मौलिकता या सूक्ष्मता नहीं है। ऐसे वर्णनों की परिपाटी रही है। तुलसी उसे गतिशील करने में बहुत सफल रहे हैं। इस वर्णन में मार्मिकता अवश्य है। प्रकृति के अवयवों की सीता के अंगों से तुलना बहुत ही सुन्दर रूप से कवि ने अपने काव्य में की है।

श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं। नैकु न संक-सकुच मन माहीं।
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू ॥[21]

जब तक सीता वन में विद्यमान थी, तब तक सब प्राकृतिक अवयव लज्जित रहते थे क्योंकि वे सीता की तुलना में कुछ भी नहीं थे। सीता अतीव सौन्दर्यशालिनी थी। इसीलिए राम को प्रतीत होता है कि बेल, केला हर्षित हो उठे हैं। वे सब सीता के अंगों के सामने तुच्छ थे, अपमानित थे, लज्जित थे। आज सीता को न पाकर वे अपनी शोभा के अभिमान में फूले नहीं समा रहे।

विरह में राम इतने व्याकुल हो गए हैं कि समस्त प्रकृति उन्हें अपना उपहास करती प्रतीत हो रही है। प्रेम की उद्दाम लालसा से ग्रसित व्यक्ति ही जड़ और चेतन का अन्तर भूल जाता है। यही दशा राम की है। वे प्रकृति से बातें करते हैं, अपनी व्यथा कहते हैं, उससे रुष्ट भी होते हैं। इस समय प्रकृति उनकी शत्रु भी है और मित्र भी है। विरह के कारण प्रकृति उन्हें शत्रुवत् प्रतीत हो रही है और मन की व्यथा भी वे प्रकृति के सामने ही व्यक्त कर रहे हैं। तुलसी कहते हैं राम सीता को इस प्रकार विलाप करते खोज रहे हैं जैसे कि कोई महाविरही और अतिकामी पुरुष हो। वियोग श्रृंगार के अन्तर्गत प्रकृति के उद्दीपन रूप को प्रदर्शित किया गया है।

यह प्रकृति राम को शिक्षा देती भी प्रतीत होती है। राम को देखकर हरिणों के झुण्ड दौड़े आते हैं—

हमहिं देखि मृग निकर पराहीं। मृगी कहहिं तुम्ह कहं भय नाहीं।
तुम्ह आनन्द करहु मृग जाए। कंचन मृग खोजन ए आए ॥[22]

राम को लगता है कि हिरनियाँ हिरनों से कह रही हैं कि तुमको भय नहीं है। तुम तो सोने के हिरण नहीं, बल्कि साधारण हिरन हो। जो पशु-पक्षी राम को आनन्द देते थे, उपहास करते प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार हाथी भी अपनी प्रियाओं से कहते हैं—

संग लाइ करिनीं करि लेहीं। मानहुँ मोहि सिखावनु देहीं।
सास्त्र सुचिन्तित पुनि पुनि देखिअ। भूप सुसेवित बस नहीं लेखिअ ।[23]

हाथी हथिनियों को साथ लगा लेते हैं, राम को ऐसा लगता है मानो कह रहे हों स्त्री को कभी अकेले नहीं छोड़ना चाहिए। राम को वियोग में हर प्राकृतिक क्रियाकलाप

कुछ शिक्षा देता या उपहास करता प्रतीत होता है। जो पशु-पक्षी अपनी प्रियाओं के साथ हैं, उन्हें देखकर राम व्याकुल हो जाते हैं। इस प्रकार वियोग शृंगार के अन्तर्गत तुलसी ने प्रकृति का उद्दीपन रूप प्रस्तुत किया है–

'गीतावली' में वियोग शृंगार का वर्णन प्रकृति के माध्यम से है–

सरित जल मलिन सरनि सूखे नलिन
अलि न गुंजत कल कूजे न मराल।
बन न विलोकि बात बन मृग माउ।
तरु जे जानकी लाए ज्याये
हेरे न हूँकारि झरे फलन रसाल।[24]

वनवास में चित्रकूट के प्राकृतिक सौन्दर्य का कवि ने वर्णन किया है। सीता हरण की घटना के बाद परिस्थितियाँ विपरीत हो जाती हैं। वही प्राकृतिक सौन्दर्य राम को प्रिया के वियोग में कष्टप्रद प्रतीत होता है। नदियों का जल मैला दिखाई देता है। कमल तालाब में भी सूख रहे हैं, यद्यपि कमल को पूर्ण जल उपलब्ध है, लेकिन फिर भी वह निष्प्रभ और निस्तेज हो गया है। हंस मनोहर शब्द नहीं करते। वन में पक्षी और मृग समूह कोई भी प्रसन्न प्रतीत नहीं होता। जो प्राकृतिक वातावरण या क्रिया-कलाप संयोग में राम सीता के अनुकूल थे, वे ही अब सीता-वियोग में विपरीत लगने लगे हैं।

समीर

राम के अतिरिक्त सीता के विरह का भी मार्मिक चित्रण कवि ने अशोक वाटिका के प्रसंग में प्रकृति के माध्यम से किया है। वे हनुमान को अपने जीवित रहने का कारण बताती हैं–

विरह अनल स्वासा समीर निज तनु जरिबै कहं रही न कछू सक।
अति बल जल बरषत दोउ लोचन, दिन अरु रैन रहत एकहि तक।[25]

विरहानल से संतप्त प्राणवायु द्वारा सीता के शरीर दग्ध होने में कोई सन्देह नहीं था, लेकिन उनके नेत्र रात-दिन निरन्तर जलधारा बरसाते हैं। इतनी तप्त प्राणवायु को सीता की नेत्र दृष्टि कम कर देती है। अग्नि, वायु और दृष्टि इन प्राकृतिक उपकरणों की विशेषता द्वारा सीता भी विरह दशा का सुन्दर चित्रण है।

देहि वाटिका बसहि तहं हम मृग विव को पुरादन मोर।
स्वाय-सुबोर, मट भई मोरहु तेहि मन पशु न छन्इ तिह दोन।[26]

अशोक वाटिका के पशु-पक्षी विरहाग्नि से संतप्त हो पुराने निवास स्थानों को छोड़कर चले गए हैं। सीता के श्वास वायु से भेंट होने पर शीतल मन्द सुगन्ध पवन फिर उस ओर नहीं आती। त्रिविध समीर अपने सम्पर्क में आने वाली हर वस्तु को

शीतल कर देता है, लेकिन सीता के श्वास इतने तप्त हैं कि त्रिविध समीर भी उष्ण हो जाते हैं। विरह की पराकाष्ठा का वर्णन कवि ने तप्त वायु द्वारा किया है। पशु-पक्षी भी सीता के विरह-युक्त उच्छ्वासों से भयभीत हो लौट जाते हैं। प्रकृति पर भी सीता के विरह का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। तुलसी का विरह-वर्णन प्रत्येक काव्य में एक जैसा है। विरहानल से जलते हुए श्वासों से प्रज्ज्वलित होते हुए भी अश्रु-जल द्वारा सन्तुलन का वक्तव्य भी मानस, गीतावली, कृष्ण गीतावली, बरवै रामाण काव्य में है।

पेड़-पौधे

विरही व्यक्तियों को वसन्त ऋतु बहुत व्याकुल कर देती है—

बिरह बिकल बलहीन मोहि जानेसि निपट नकेल।
सहित बिपिन मधुकर खग मदन कीन्ह बगमेल ॥[27]

राम कहते हैं मुझे विरह व्याकुल बलहीन देखकर कामदेव ने वन, भौरों और पक्षियों को साथ लेकर मुझ पर धावा बोल दिया है। मन की व्यथित अवस्था में प्रकृति का प्रभाव विपरीत होता है। इसी प्रकार वसन्त का सौन्दर्य भी उन्हें विकल बना देता है। वसन्त में नाना प्रकार के वृक्ष उन्हें कामदेव के वीर सैनिक और पक्षी सेना के हाथी- घोड़ों के समान प्रतीत होते हैं। वसन्त का सुन्दर रूप उसमें भय और आशंका उत्पन्न करता है। विरह-व्यथित राम को वन के भँवरे, खग, मृग आदि प्राकृतिक पदार्थ और जीव काम-पीड़ित करते हैं। वसन्त के भव्य रूप के प्रति उन्हें विरक्ति और विकर्षण होता है।

बिटप बिसाल लता अरुझानी। बिबिध बितान दिए जनु तानी।
कदलि ताल बर धुजा पताका। देखि न मोह धीर मन जाका ॥[28]

विशाल वृक्षों में लताएँ उलझी हुई ऐसी मालूम होती हैं, मानो नाना प्रकार के तम्बू तान दिए गए हैं। केले और ताड़ सुन्दर ध्वजा पताका के समान हैं। यह वातावरण इतना मोहित कर देता है, कामोद्दीप्त कर देता है कि अच्छे-अच्छे धैर्यशाली भी काम के वश में हो जाते हैं। राम प्रकृति का उद्दीपन रूप देखकर अत्यधिक दुःखी हो जाते हैं। प्रकृति उन्हें शत्रुवत् लगने लगती है। उनका दुःख बढ़ाती है और वे विरहाग्नि में जलने लगते हैं।

सुग्रीव की सहायता करने के बाद राम ने प्रवर्षण पर्वत पर निवास किया। उस समय का प्राकृतिक वातावरण भी राम को असह्य हो गया। पहले तो राम प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करते हैं। फिर विरह में व्याकुल हो जाते हैं। वह वातावरण उन्हें कामोद्दीप्त बना देता है और साथ ही राम विषाद से भर उठते हैं।

सुन्दर बन कुसुमित अति सोभा। गुंजत मधुप निकर मधु लोभा।
कंद मूल फल पत्र सुहाए। भए बहुत जब ते प्रभु आए।

देखि मनोहर सैल अनूपा। रहे तहं अनुज सहित सुरभूपा।
मधुकर खग मृग तनु धरि देवा। करहिं सिद्ध मुनि प्रभु कै सेवा।[29]

सुन्दर वन अति शोभायुक्त है। भ्रमर गुंजार कर रहे हैं। वन में कन्दमूल फल और पत्तों की बहुतायत है। मन को मोहित करने वाला वातावरण है। एक क्षण के लिए राम इसमें लीन हो जाते हैं, लेकिन फिर अपने को विरही जान दुःखित हो जाते हैं। इस वर्णन में प्रकृति तटस्थ है। वह राम के भावों को उद्दीप्त नहीं करती, अपितु मित्रवत आचरण करती है। इसके बाद वर्षा ऋतु राम को और व्यथित कर देती है—

घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा।
दामिनी दमक रह न घन माही। खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं।[30]

बरसते हुए बादल राम को और व्यथित कर देते हैं। उन्हें लगता है कि अभी तो बादल गरज रहे हैं। जब वर्षा होगी तो विरह व्यथा कैसे सहेंगे? वर्षा उनके विरह की व्यथा को द्विगुणित कर देती है। यहाँ पर प्राकृतिक वातावरण ने राम जैसे संयमी पुरुष को भी विचलित कर दिया। प्रकृति ने राम के सुप्त भावों को जागृत कर दिया और वे अपने को प्रिया-वियुक्त जानकर शोक-मग्न हो गए।

सीता के लिए भी विरह समुद्र की तरह अपार है जिसकी कोई सीमा नहीं है। यह विरह समाप्त होने में ही नहीं आता।

हरिजन जानि प्रीति अति गाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि बाढ़ी।
बूड़त बिरह जलधि हनुमाना। भयहु तात मो कहुँ जलजाना।[31]

सीता विरह सागर में पूर्ण रूप से डूबी हुई है, लेकिन राम की स्मृति उन्हें डूबने नहीं देती। वे ही विरह के अपार सागर में सीता का सहारा है। जिस प्रकार सागर अपार, अगम्य, असीम होता है, उसी प्रकार विरह भी असीम है।

अग्नि

श्रृंगार भाव के अतिरिक्त भी प्रकृति अन्य भावों को उद्दीप्त करती है। कवितावली में अग्नि के माध्यम से भयानक वातावरण उपस्थित किया गया है।

छुटै बार, बसन उघारे, धूम धुंध-अंध
कहैं बारे, बूढ़े 'बारि-बारि' बार-बारहीं।
हय हिहिनात, भागे जात घहरात गज
भारी भीर ठेलि पेलि रौंदि खोदि डारहीं।।[32]

चारों ओर धुँआ है। घोड़े हिनहिनाकर भाग जाते हैं, हाथी चिंघार मारते हैं और भीड़ को कुचल डालते हैं। चारों ओर अग्नि फैली हुई है। इस प्रकार यह वातावरण भय की भावना को उद्दीप्त करता है।

अग्नि को समाप्त करने के लिए रावण ने मेघ बुलाए, लेकिन उससे भी कोई लाभ नहीं हुआ–

'भलै नाथ' नाइ माथ चले पाथ-प्रद-नाथ,
वरषै मुसलधार बार-बार घोरि कै।
जीवन तें जागी आगी, चपरि चौगुनी लागी,
तुलसी भभरि मेघ भागे मुखु मोरि कै।[33]

रावण के आदेश से मेघ बार-बार गरज-गरजकर मूसलाधार पानी बरसने लगे किन्तु जल से अग्नि और भी प्रज्वलित हो गई तथा चपलता और बढ़ गई। इस प्रकार बार-बार भय के भाव को उद्दीप्त किया गया है।

प्रकृति की सहायता से ही आश्चर्यजनक वातावरण का भी चित्रण किया है।

गछि मंदर बंदर भालु चले, सो मनों उनये घन सावन के।
'तुलसी' उत झुंड प्रचंड झुके, झपटें भट जे सुरदावन के।[34]

वानर और भालू पर्वतों को लेकर इस प्रकार चले मानो सावन की घटा घिर आयी हो। जिस प्रकार आकाश को बादल आच्छादित कर लेते हैं, उसी प्रकार वानर और भालू प्राकृतिक वस्त्रों-शस्त्रों से सुशोभित थे। यहाँ तक कि अचल विशाल पर्वत भी उनके शस्त्रों में सम्मिलित हो गए थे। दोनों पक्ष प्राकृतिक शस्त्रों का ही प्रयोग कर रहे थे–

सर-तोमर सेल समूह पवारत, भारत बीर निसाचर के।
इत तें तरु-ताल-तमाल चले, खर खंड प्रचंड महीधर के।[35]

रावण की सेना तीर, बरछी और सेलों के समूहों का प्रहार करती है। राम की सेना ताड़ और तमाल के वृक्षों तथा पर्वतों के बड़े-बड़े पैने टुकड़ों से प्रहार कर रही है। इस प्रकार आश्चर्यजनक वातावरण उपस्थित हो गया है। प्रकृति की सहायता से मन के अद्भुत भाव उद्दीप्त होते हैं। इसी प्रकार प्रकृति की सहायता से वीभत्स मात्र भी उद्दीप्त होते हैं–

लोथिन सों लोहू के प्रबाह चले जहाँ-तहाँ,
मानहुँ गिरिन्ह गेरु-झरना झरत हैं।
सोनित सरित घोर, कुंजर-करारे मारे,
कूल तें समूल बाजि-बिटप परत हैं।[36]

यहाँ-वहाँ से लहू की धाराएँ बह रही हैं। मानो पर्वत से गेरु के झरने झर रहे हैं। लहू की नदी में हाथी-घोड़े गिरते हैं ऐसा लगता है कि किनारे के वृक्ष जड़ सहित उखड़कर पड़ रहे हैं। वीरों के शरीर नदी के जल जन्तु हैं। कौए और गिद्ध कोलाहल कर रहे हैं। इस प्रकार प्रकृति की सहायता से यह वर्णन मन के वीभत्स भावों को उद्दीप्त किया है–

ममता अस तें सब भूलि गयो, भयो भोरु महा भय भामहि रे।
जरठाइ-दिसां रबिकालु उग्यो, अजहूँ जड़ जीव! न जागहिरें।[37]

यह मनुष्य ममतावश सब भूल जाता है। लेकिन जब वृद्धावस्था रूपी पूर्व दिशा में काल रूप सूर्य का उदय हो गया है, अब तो जीवन के सत्य का आभास होना चाहिए। इस प्रकार प्रकृति के माध्यम से मानव के सुप्त सात्विक भावों को उद्दीप्त करने का प्रयत्न किया गया है।

कोई व्यक्ति बाह्य रूप से जितना भी समृद्ध हों लेकिन राम की भक्ति के बिना उसका जीवन निरर्थक है–

ऐसे भए तो कहा 'तुलसी' जो पै राजिवलोचन रामू न जाने।
कामू से रूप, प्रताप दिनेसु से, सोमु से सील, गनेसु से माने।
हरिबन्दु से सांचे बड़े विधि-से मधवा-से महीप बिषे-सुख-साने।[38]

यदि किसी ने कमलनयन राम को नहीं जाना तो वह रूप में कामदेव, प्रताप में सूर्य और शील में चन्द्रमा के समान होने पर भी वास्तविक लाभ प्राप्त नहीं करता। प्रकृति द्वारा मनुष्य की विशेषताएँ प्रदर्शित की गई हैं और उन्हें रामभक्ति के समक्ष हीन मानकर राम के प्रति प्रेम भाव को उद्दीप्त किया गया है।

पालि कै कृपाल! व्याल-बालको न मारिए
ओ काटिए न नाथ! बिषदू को रुखु लाइ कै।[39]

तुलसी कहते हैं कि सर्प के बालक को पाल-पोसकर नहीं मारना चाहिए और न विष का वृक्ष भी लगाकर उसे काटना चाहिए, पोषित व्यक्ति की कभी भी हानि नहीं करनी चाहिए। बार-बार कवि प्रकृति का आश्रय लेकर मानव के सात्विक और शुद्ध भावों को उद्दीप्त करने का प्रयत्न करता है।

प्रकृति के जो सुन्दरतम रूप हैं, उनसे ईश्वर की तुलना कर कवि ने ईश्वर को अतीव सौन्दर्यशाली प्रदर्शित किया है। मनुष्य का स्वभाव है कि सौन्दर्य उसे शीघ्र प्रभावित कर लेता है और दृश्य जगत् में प्रकृति से अधिक सौन्दर्यशाली एवं ईश्वर के प्रतिरूप में किसी अन्य को नहीं जाना जा सकता। इसलिए ईश्वर के सौन्दर्य वर्णन के लिए कवि ने प्रकृति का ही आश्रय लिया है और ईश्वर भक्ति की भावना को उद्दीप्त करने का प्रयत्न किया है–

नील जलदाभतनु श्याम, बहु काम छवि राम राजीवलोचन कृपाला।[40]

विष्णु नीले मेघ के समान श्याम शरीर वाले, अनेक कामदेवों की शोभा वाले, कमल के सदृश सुन्दर नेत्र वाले हैं। इसलिए नीले मेघ और कमल के सौन्दर्य द्वारा ईश्वर के रूप का वर्णन उनके प्रति मानव को सहज ही श्रद्धापूर्ण कर देता है।

संसार में सुख-दुःख का सहना अनिवार्य है। यह हमारे अपने बनाए हुए हैं। स्वर्ग-नरक का निर्माण भी हम स्वयं ही करते हैं–

सत्रु, मित्र, मध्यस्थ, तीनि ये, मन कीन्हें बरिआई।
त्यागन, गहन, उपेच्छनीय, अहि, हाटक, तृनकी नाई।[1]

शत्रु को साँप के समान त्याग देना चाहिए। मित्र को स्वर्ण के समान ग्रहण करना चाहिए और उदासीन की तृण की तरह उपेक्षा कर देनी चाहिए। ये सब मन की कल्पनाएँ हैं। इस प्रकार मन को समझाना चाहिए। जैसे पेड़ में कटपुतली और सूत वस्त्र बिना बताए ही रहते हैं, उसी प्रकार मन में अनेक प्रकार के पात्र रहते हैं। जिन्हें संयम द्वारा वश में करना चाहिए। इस प्रकार मनुष्य के सद्गुणों को प्रकृति द्वारा क्रियान्वित (उद्दीप्त) किया गया है।

यह मानव की प्रवृत्ति है कि वह किसी भी वस्तु को देखकर, सुनकर, पढ़कर कुछ-न-कुछ अनुभव करता है। किसी भी रचना को पढ़कर उसके मन के भाव उद्दीप्त होते हैं। यही कार्य रचनाकार जब प्रकृति के माध्यम से करता है तो उसे प्रकृति का उद्दीपन रूप कहते हैं। शृंगार रस में यह संयोग और वियोग रूप में होता है। इसके अतिरिक्त प्रकृति दया, करुणा, भय, जुगुप्सा, हर्ष, अद्भुत आदि भावों को भी उद्दीप्त करती है। प्रकृति के उपदेशात्मक रूप के अन्तर्गत शान्त भावों का समावेश स्वतः ही हो जाता है, इसलिए स्वतन्त्र रूप से उनका चित्रण नहीं किया है। दया, अहिंसा, परोपकार, संगति आदि सद्गुणों को प्रबुद्ध करने में प्रकृति पूर्ण सहायता करती है इसलिए उद्दीपन रूप में उनका चित्रण अधिक न कर उपदेशात्मक रूप में उनका चित्रण अधिक किया गया है।

भक्ति और वैराग्यपरक भावों को उद्दीप्त करने वाले प्रकृति के अवयव प्रकृति के दार्शनिक रूप के अन्तर्गत समाविष्ट किए हैं। कवि ने प्रकृति द्वारा नौ रसों को उद्दीप्त किया है, जिसमें शृंगार रस प्रमुख है और इसका चित्रण ही विशद रूप में है।

तुलसी ने प्रकृति का उद्दीपनात्मक चित्रण अपनी काव्य रचनाओं में किया है। उद्दीपन के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का चित्रण तुलसी काव्य में उपलब्ध है। यह वर्णन सभी काव्य रचनाओं में मिलता-जुलता है। कहीं भी अधिक विभिन्नता नहीं है। मानस, गीतावली, कृष्ण गीतावली, बरवै रामायण—सभी काव्य-रचनाओं में नायक-नायिका को विरह में सूर्य शीतल और चन्द्रमा उष्ण लगता है। सीता के अश्रु ही उन्हें विरहाग्नि से बचाते हैं। संयोग में प्रकृति सहायक हैं। वियोग में सूर्य का प्रकाश ही रक्षक है। यद्यपि यह वर्णन प्राचीन परिपाटी के अनुसार है, इस वर्णन में अश्लीलता कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती। इसलिए कवि की अपनी कल्पना-शक्ति का भी इसमें सामंजस्य है। तुलसी-पूर्व कवि नायक-नायिका के भावों का अधिक शृंगारिक वर्णन करते थे। लेकिन तुलसी का प्रकृति वर्णन अधिक मर्यादित है।

तुलसी मर्यादावाद के समर्थक थे। उन्होंने कहीं भी संयम का अतिक्रमण नहीं किया। तुलसी ने प्रकृति के उद्दीपन वर्णन में अपने भावों की गरिमा को स्पष्ट रूप से

व्यक्त किया है। कहीं-कहीं यह वर्णन अवश्य ही परम्परा से गृहीत है।

पावस में मेघों का गर्जन काव्य परम्परा में शृंगारिक भावों का उद्दीपक हुआ करता है। 'घन घमंड'—संयोग शृंगार का सुखद उद्दीपन वियोग में अत्यन्त दुःखद हो जाता है। कालिदास लिखते हैं कि मेघों को देखकर सुखी लोगों का मन भी डोल जाता है। तब उस वियुक्त का तो कहना ही क्या जो दूर देश में पड़ा हुआ है, अपनी प्रिया के आलिंगनार्थ दिन-रात तड़प रहा हो।

राम सोचते हैं कि संयोग में कामदेव ने पुष्पवाटिका में मेरे समक्ष विश्व-विषयार्थ दुंदुभि दी थी। वियोग में दूसरी बार विरह-विकल जानकर यह वसन्त ऋतु के साथ आया था। उन स्थानों पर कामदेव का वश नहीं चला तो तीसरी बार मुझे प्रियाहीन देखकर पावस में आक्रमण किया है।

यह कुछ और नहीं कामदेव के नगाड़े के शब्द ही हैं। संयोग में इनका गर्जन सुहावना लगता है। तब मयूर-नृत्य प्रिय लगता है। लेकिन प्रियावियुक्त होने से मेरा मन मोर डरता है। इसलिए डरता है कि अभी तो बादलों का गर्जन हो रहा है और आगे जब बादल बरसेंगे तो और दुःखदायी होगा क्योंकि विरह वेदना और बढ़ जाएगी तथा सारा शरीर दग्ध हो जाएगा।

वाल्मीकीय रामायण में राम लक्ष्मण से कहते हैं कि शोक से पीड़ित और सीता से वियुक्त होने के कारण मुझे वर्षा के चार महीने चार सौ वर्षों के समान जान पड़ते हैं। यही वर्षा ऋतु तुलसी के मानस में भी राम को अधिक दुःखी कर देती है। वियोग में नायक-नायिका का व्याकुल होना और संयोग में प्राकृतिक अवयवों का सुखदायी प्रतीत होना जो कि वियोग में विपरीत प्रतीत होते हैं, सब वर्णन परम्परा से गृहीत हैं। लेकिन नायक-नायिका के भावों का उद्दाम वर्णन तुलसी काव्य में नहीं है। इसीलिए प्रकृति का आचरण भी संयमित है। प्रकृति नायक-नायिका को व्याकुल या उत्साहित तो करती है, लेकिन उनके भावों को मर्यादा का प्रतिक्रमण नहीं करने देती। प्राकृतिक वातावरण में शान्ति है, जो कि संयोग में नायक-नायिका के शृंगारिक भावों को सात्विकता और मर्यादा प्रदान करती है। वियोग में प्राकृतिक वातावरण विपरीत प्रतीत होते हुए भी नायक-नायिका के भावों का अश्लील वर्णन नहीं करता। सर्वत्र संयम का भाव दृष्टिगोचर होता है। हाथी हथिनियों के साथ हैं, यह युगल नायक के रति भाव को नहीं बढ़ाता, अपितु यह युगल नायक को विरह में शिक्षा देता प्रतीत होता है कि स्त्री को कभी अकेले नहीं छोड़ना चाहिए। इस प्रकार संयोग हो या वियोग प्रकृति नायक के समान ही संयमित और मर्यादित आचरण करती है।

'गीतावली' में सीता के श्वासों को इतना गर्म दिखाया है कि त्रिविध समीर भी उसके सम्पर्क से गर्म हो जाता है। अशोक वाटिका के सभी पशु-पक्षी गर्म श्वासों के कारण वाटिका छोड़कर चले गए हैं। नायिका के विरह का यह वर्णन भी प्राचीन

साहित्य में उपलब्ध है। नायिका के विरह की जलन असहनीय है। 'मानस', 'गीतावली', 'कृष्ण गीतावली', 'बरवै रामायण' सभी में चन्द्रमा से सूर्य को शीतल वर्णित किया है क्योंकि चन्द्रमा विरह के ताप को और उद्दीप्त कर देता है तथा सूर्य की जलन अनुभव नहीं होती, क्योंकि शरीर स्वयं ही विरह के ताप में दग्ध होता है। सभी रचनाओं में सूर्य और चन्द्र का वर्णन एक सा है। 'गीतावली' में 'आँखों की अश्रु धारा 'विरहानल' किंचित् शान्त रहती है, कृष्ण गीतावली में चन्द्रमा के उदय होने पर गोपियों के अंग-अंग से ज्वाला निकलने लगती है। सूर्य की गर्मी से मिलकर कष्ट नहीं देती। इस प्रकार विरह में चन्द्रमा वैरी हो जाता है और सूर्य मित्र। 'बरवै रामायण' में चन्द्रमा की शीतलता जब जानकी की विरह-श्वास के सम्पर्क भें आती है तो उष्ण हो जाती है। इस प्रकार वियोग शृंगार में प्रकृति का वर्णन हर काव्य-रचना में लगभग एक-सा है।

राम और सीता दोनों एक-दूसरे से समभाव से प्रेम करते हैं। इसे व्यक्त करने के लिए कवि ने चकोर और चन्द्रमा के प्रेम भाव का वर्णन किया है। सीता राम को इस प्रकार देखती है जैसे शरद् ऋतु के चन्द्रमा को चकोरी देखती है और राम-सीता के चन्द्रमुख को इस प्रकार देखते हैं जैसे कोई चकोर चन्द्रमा को देखता है। इस प्रकार प्रकृति में प्रचलित एक नियम द्वारा कवि ने नायक-नायिका का एक-दूसरे के प्रति प्रेमभाव स्पष्ट किया है। दोनों एक-दूसरे के प्रति प्रेम एक-सा है।

राम का सीता के सौन्दर्य का वर्णन करना संयोग शृंगार के अन्तर्गत आता है। इसमें प्रकृति ने कवि की पूर्ण सहायता की है। कोई भी प्राकृतिक अवयव सीता के अंगों की तुलना कैसे कर सकता है? दाड़िम, कुन्दकली, हरिण, कमल, बिजली आदि सीता के सामने क्या हैं?

तुलसी ने संयोग शृंगार का वियोग शृंगार की अपेक्षा कम वर्णन किया है। वियोग में भी शृंगारिकता की अपेक्षा शिक्षा का ही बाहुल्य है। सीता का मृग देखने के बहाने राम-दर्शन करना अथवा लता की ओट से राम को उत्सुकता से देखना, इस चित्रण में प्रेम तो व्यक्त होता है, लेकिन प्राकृतिक आवरणों से कुलीन कन्या की लज्जा और मर्यादा भी व्यक्त हो जाती है। इसी प्रकार राम का सीता को चन्द्रमा से भी सुन्दर कहना संयमित रूप से रूप-वर्णन के अन्तर्गत आता है। चन्द्रमा तो दिन में क्षीण हो जाता है, लेकिन सीता का मुखचन्द्र सदा देदीप्यमान रहता है, चन्द्रमा सकलंक है, लेकिन सीतामुख निष्कलंक है। यहाँ भी कवि ने नायिका के केवल मुख सौन्दर्य का वर्णन किया है, अन्य शारीरिक अंगों के सौन्दर्य का वर्णन करके उसे अश्लील नहीं बनाया है।

केवल 'मानस' में एक बार बहुत ही संयमित रूप से प्राकृतिक उपकरणों के माध्यम से सीता के शारीरिक सौन्दर्य का चित्रण कवि ने किया है, जब मृगनयनी सीता को पुकारते हुए राम खंजन, कपोत, हंस, मछली, भौरे, गज, सिंह का स्मरण करते हैं,

उनकी प्रिया इन्हीं विशेषताओं से युक्त है।

'कृष्ण गीतावली' में गोपियाँ अपने प्रेम के उद्दीप्त भाव को व्यक्त तो करती हैं, लेकिन वह एकनिष्ठ प्रेमिकाएँ हैं। इसलिए कवि एकनिष्ठ प्रेमी मछली, चातक, मृग, सर्प, कमल, चकोर का उदाहरण देते हैं। प्रेम का वर्णन तुलसी-काव्य में है और प्रकृति उस प्रेम को उद्दीप्त और व्यक्त करने का सशक्त माध्यम है। एक निश्चित सीमा के भीतर ही उसका वर्णन किया गया है। कुछ वर्णन परम्परा से गृहीत हैं और कुछ स्वनिर्मित भावों के प्रतिरूप हैं। इससे कवि के विषय में भी ज्ञात होता है कि प्रेम के विषय में तुलसी के भाव कितने कोमल और संयमित थे।

तुलसी को परम्परा से जो उचित लगा, उसे ग्रहण कर लिया और जो उचित नहीं लगा, उसे छोड़कर स्वयं अपना मार्ग निश्चित किया। इस प्रकार प्रकृति के उद्दीपन रूप को एक विशेष प्रकार से काव्य में प्रस्तुत किया है।

सन्दर्भ

1. रामचरितमानस, 1/227/2, 3
2. वही, 1/229 दो.
3. वही, 1/230/2 ख
4. वही, 1/232/3
5. वही, 1/237/1 दो.
6. बरवै रामायण, 33
7. वही, 37
8. कृष्ण गीतावली, 31/2, 3
9. रामचरितमानस, 1/231/ दो.
10. वही, 1/232/1
11. वही, 1/232/2
12. वही, 1/233/1
13. वही, 1/233/4
14. बरवै रामायण, 32
15. कृष्ण गीतावली, 29/1, 2
16. वही, 31/1/2
17. रामचरितमानस, 5/14/1
18. कृष्ण गीतावली, 56/5
19. रामचरितमानस, 1/234 दो.
20. वही, 3/30/5, 6
21. वही, 3/30/7
22. वही, 3/37/3
23. वही, 3/37/4
24. गीतावली, 5/9/2
25. वही
26. कृष्ण गीतावली, 29/1
27. रामचरितमानस, 3/37 दो.
28. वही, 3/38/1
29. वही, 4/13/1, 2
30. वही, 4/14/1
31. वही, 5/14/1
32. कवितावली, 5/15/4
33. वही, 5/19/4
34. वही, 6/34/1
35. वही, 6/35/2
36. वही, 6/49/1
37. वही, 7/31/4
38. वही, 7/42/1
39. वही, 7/61/4
40. विनयपत्रिका, 49/4
41. वही, 124/2

4

तुलसी-काव्य में प्रकृति का उपदेशात्मक रूप

मनुष्य ने प्रकृति के क़ार्यकलाप को अनेक रूपों में आदर्श मानकर बल, ज्ञान और सान्त्वना प्राप्त की है। प्रकृति के नियम अपेक्षाकृत कितने शुभ और स्थिर हैं, यह मानव सदा अनुभव करता रहा है। अपने जीवन के नीति नियम आदि की अस्थिरता से उनकी तुलना करके अनेक प्रकार से प्रेरणा और विचार ग्रहण करता रहा है। सर्वसहा पृथ्वी की क्षमा और सहनशक्ति आदर्श है। पर्वत चारित्रिक दृढ़ता के, पवन अनवरत सेवावृत्ति का और सरिता एवं वृक्ष परोपकार मुक्तदान तथा समदृष्टि के आदर्श प्रस्तुत करते हैं।

प्रकृति को उपदेश और नीति के माध्यम के रूप में हम भागवत में देखते हैं। उस पुराण का प्रभाव भक्तिकाल के सभी कवियों पर पाया जाता है। भागवत में (दशम स्कन्ध में) वर्षा और शरद् का वर्णन इस प्रकार है—

गिरयो वर्षाधारामिर्हन्यमाना न विव्यधुः।
अभिभूयमाना व्यसनेपथा थोक्षज चेतनः।[1]
मार्गा बभूबुः सन्दिगधाल्तृषेरछन्ना ह्यसंस्कृताः।
नाभ्यास्यमाना ऋतयो द्विजै कालहत्ता इव।[2]

जिनका चित्त भगवान् में लगा हुआ है, वे संकटों के आ पड़ने पर जैसे व्यथित नहीं होते, वैसे ही पर्वत-समूह वर्षा की धाराओं की चोट खाकर विचलित नहीं हुआ। जिस प्रकार अभ्यास छोड़ देने पर ब्राह्मण की पढ़ी हुई श्रुतियाँ विस्मृत होने लगती हैं, उसी प्रकार यदि सफाई नहीं होती तो मार्ग पथ घास से ढक जाने के क़ारण संदिग्ध हो जाता है, पहचान में नहीं आता।

हिन्दी कविता में उपदेशात्मक प्रकृति-चित्रण के प्रतिनिधि कवि तुलसी हैं। उन्होंने संस्कृत कविता की प्रेरणा से इस प्रकार के सुन्दर और विशद वर्णन किए हैं। तुलसी पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव स्पष्टतया लक्षित होता है। मानस का किष्किन्धाकाण्ड तो उपदेशात्मक प्रकृतिचित्रण के लिए विख्यात है—

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा।
प्रकट सो तनु तव आगें सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा।
उपजा ग्यान चरन तब लागी। लीन्हेसि परम भगति बर माँगी।[3]

भौतिक शरीर प्राकृतिक पाँच तत्त्वों का बना हुआ है, पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु। इन पंचतत्त्वों से बने शरीर का मोह व्यर्थ है क्योंकि यह नाशवान है। पंचतत्त्वों से बना शरीर पंचतत्त्वों में ही मिल जाएगा। इसका वियोग व्यर्थ है। जो वस्तु हमारी नहीं है, उसके खोने में क्या दुःख? इस प्रकार प्रकृति के माध्यम से मानव को प्रबुद्ध किया गया है।

पशु-पक्षी

राम-कथा ससि किरन समाना। संत चकोर करहिं जेहि पाना।[4]

इस चौपाई में तुलसी ने चन्द्रमा और चकोर के माध्यम से भक्ति को श्रेष्ठ सिद्ध किया है। जैसे चकोर चन्द्रमा की किरणों का ही सेवन करता है, उसी प्रकार भक्तजनों के लिए भक्ति के अतिरिक्त सब व्यर्थ है। चकोर का चन्द्रमा के प्रति एकनिष्ठ प्रेम होता है, वैसा ही एकनिष्ठ और निःस्वार्थ प्रेम ईश्वर से करना चाहिए।

इस प्रकार 'विनयपत्रिका' में भी कवि ईश्वर-भक्ति का उपदेश देता है। कुछ पशु-पक्षी सद्वृत्ति के प्रतीक हैं और कुछ दुष्प्रवृत्ति के। उदाहरण देखिए—

तुलसीदास हरिनाम सुधा तजि शठ हठि पियत विषयविष माँगी।
सूकर श्वान शृगाल सरिस जन जन्मत जगत जननि-दुःख लागी।[5]

रामनाम से विमुख मनुष्य, शूकर, कुत्ता और गीदड़ के समान, संसार में अपनी माता को दुःख देने के लिए ही जन्मते हैं। गीदड़, कुत्ता और सूअर पशुओं को अशुभ माना जाता है। जब भी किसी अपशकुन या दुर्जन का वर्णन करना हो तो इनके माध्यम से कवि अपनी बात कहता है।

इसी प्रकार 'गीतावली' में भी दुष्ट प्रवृत्ति के प्रतीक पशुओं के माध्यम से कवि ने कहा है कि ईश्वर से विमुख रहने वाले मनुष्य जड़ पशुओं के समान हैं—

भजनहीन नरदेह वृथा खर स्यान फेरु की नाई।[6]

राम भजन से रहित मनुष्य गंध, कुत्ते और गीदड़ के समान वृथा ही जीवित है। जैसे इन पशुओं का जीवन निरर्थक है, उसी प्र ार भक्ति के बिना मनुष्य का जीवन वृथा है।

बुरी प्रवृत्ति से युक्त व्यक्ति भी यदि ईश्वर-भजन प्रारम्भ कर दे तो उसका आचरण सुधर सकता है—

कोउ उलटो, कोउ सूधो जपि भए राजहंस बायस-तने।[7]

रामनाम का ऐसा माहात्म्य है कि काकवत आचरण करने वाले भी राजहंसवत् शुद्ध हो जाते हैं। कौवा काला होता है, उसकी बोली कर्कश है और वह अभक्ष्य वस्तुओं का भक्षण करता है, जबकि राजहंस गौर वर्ण सुन्दर है और मानसरोवर में निवास करता है। इस प्रकार इन पक्षियों के समक्ष मनुष्य को रखकर उन्हीं के अनुसार

कवि ने बुरा या भला आचरण का वर्णन किया है।

इसी प्रकार मनुष्य को नीति और ज्ञान का उपदेश देने के लिए कवि बार-बार इन पशु-पक्षियों के आचरण एवं क्रियाकलापों द्वारा मनुष्य को सावधान करता है और उसे जीवन को सार्थक बनाने का उपदेश देता है—

चरन चोंच लोचन रंगो, चलौ मराली चाल।
छीर नीर बिबरन समय, बक उघरत तेहि काल ॥[8]

बगुला चाहे अपने चरण, चोंच और आँख को हंस की तरह रंग ले और हंस की सी चाल भी चलने लगे परन्तु जिस समय दूध और जल को अलग करने का अवसर आता है, उस समय उसकी पोल खुल जाती है। इसी प्रकार दुष्ट मनुष्य ऊपर से अच्छा आचरण, सभ्यता का आवरण और मीठी बोली को अपना ले परन्तु दुष्टता नहीं छोड़ते और किसी की भलाई या उपकार के समय अपनी पुरानी आदत नहीं छोड़ पाते। उनकी दुष्टता प्रकट हो जाती है। बगुले की तरह, दुष्ट व्यक्ति भी अधिक देर तक सभ्य होने का अभिनय नहीं कर पाता। ऐसे व्यक्तियों से सावधान रहना चाहिए—

ग्यान अनभले को सबहि, भले भलेहू काउ।
सींग, सूंड़, रद, लूम, नख करत जीव जड़ घाउ ।[9]

बुराई करने का ज्ञान सभा को है, परन्तु भलाई का ज्ञान तो कभी-कभी किसी-किसी को ही होता है। मूर्ख जानवर, गैंडा, हाथी, सिंह, चंवरी गाय, बन्दर आदि अपने सींग, सूँड, दाँत, पूँछ और नख इत्यादि से दूसरों को चोट पहुँचाते हैं। पशु-पक्षियों में प्रेम और घृणा दोनों प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं किन्तु उनकी घृणा या क्रोध अधिक मुखरित होता है। कोई भी अनजान कुत्ता पहले भौंकता है, बाद में परिचय होने पर पैर चाटता है। प्रेम की अपेक्षा क्रोध को व्यक्ति और पशु-पक्षी जल्दी ग्रहण करते हैं। मनुष्य को सद्वृत्तियों का विकास करना चाहिए—

सुनिअ सुधा, देखिअहिं गरल, सब करतूति कराल।
जहं जहं काक उलूक बक, मानस सकृत मराल ।[10]

अमृत तो केवल सुनने में ही आता है परन्तु विष जहाँ-तहाँ प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। कौए, उल्लू और बगुले तो सर्वत्र दिखाई देते हैं, लेकिन हंस केवल मानसरोवर में ही मिलता है। संसार में अच्छाई की अपेक्षा बुराई अधिक है। कोई भी सुन्दर पशु-पक्षी आसानी से सर्वत्र उपलब्ध नहीं होता। जबकि कौए बगुले दिखाई दे जाते हैं। संसार को इसीलिए दुःखमय माना गया है, यहाँ बुराई अधिक है और मानव स्वभाव भी ऐसा ही है कि अच्छाई की अपेक्षा दुष्कर्म उसे रुचिकर लगते हैं। इस दोहे में कवि ने पक्षियों के माध्यम से बुराई की व्याख्या की है और उसका छोटापन प्रदर्शित किया है। बुराई की अपेक्षा सच्चाई के महत्व को प्रतिपादित किया है।

इस संसार में कोई छोटा-बड़ा नहीं है। सब अपने काम में दक्ष होते हैं। बड़ा

व्यक्ति छोटे का काम नहीं कर सकता और छोटा बड़े का काम नहीं कर सकता। दोनों में से कोई निम्न या श्रेष्ठ नहीं है–

जो जेहि कला कुशल ताकहं सोई सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सम्मुख जल प्रवाह सुरसरी बहे गज मारी।
ज्यों शर्करा मिले सिकता महं बलते न कोउ बिलगावे।[11]

जो जिस कला में चतुर है, उसको वही सीधा और सुखकारी है। जैसे गंगा की जलधारा में मछली तो चली जाती है और हाथी बह जाता है; जैसे खांड रेत में मिल जाती है, उसे कोई बल से अलग नहीं कर सकता, लेकिन बड़े भारी रस को जानने वाली चींटी बिना परिश्रम के ही उसे पा लेती है। इस प्रकार कोई छोटा-बड़ा नहीं है। इसलिए किसी को भी अपने बल का गर्व नहीं करना चाहिए, क्योंकि सबकी अपनी-अपनी सीमाएँ हैं, सब व्यक्ति सब कार्य नहीं कर सकते, उन्हें कभी-न-कभी किसी-न-किसी की सहायता लेनी ही पड़ती है।

कवि स्वयं को शिक्षा देने के लिए भी पशु-पक्षियों से शिक्षा ग्रहण करता है और उनके द्वारा अपने आचरण को व्यक्त करता है। इसी प्रकार मोह का एक उदाहरण कवि ने सुन्दर रूप में दिया है, लेकिन भक्ति द्वारा निवारण का मार्ग भी सुझाया है–

तहं तहं लोल लेस लालचवख निजहित चित भौंरको चहौं।
जहं तहं तरणि तकत उलूक ज्यों भटकि तरु-कोटर गहौं।[12]

जैसे उल्लू सूरज की ओर देखते ही भटककर बुरे वृक्ष की कोटर में घुस जाता है, उसी भाँति कवि सज्जनों की उपेक्षा करके जीविका के लोभ से दुष्ट धनवानों के पास जाता है, उन्हें बुरा देखकर भी उनकी शरण में पहुँचता है। तुलसी ने बाह्य चमक-दमक को निरर्थक बताया है। संसार में आए हैं तो बाह्य आकर्षण अपनी ओर आकर्षित भी करेंगे। प्रत्येक व्यक्ति बुराई के पास जाता है, क्योंकि बुराई के पास जाए बिना सच-झूठ का पता नहीं चलता, परन्तु विवेकी उसमें लिप्त नहीं होता और वहाँ अवगुण को देखकर वापस आ जाता है–

कहा भयो जो मन मिलि कलिकालहिं कियो भौंतुवा भोंएझो हौं।
तुलसिदास सीतल नित यहि बल, बड़े ठेकाने ठौरको हौं ॥[13]

तुलसीदास कहते हैं कि मन संसार के विषयों में लगता है, लेकिन वह उसमें डूबना नहीं चाहिए, जब संसार में आए हैं तो कलियुग का कुछ-न-कुछ प्रभाव तो पड़ता ही है। बुराई से उस प्रकार बचाव करना चाहिए, जैसे मुरुट नाम का कीड़ा करता है। वह पानी के ऊपर रहता है, लेकिन उसमें डूबता नहीं। उसी प्रकार का आचरण मनुष्य को भी करना चाहिए।

मनुष्य जब तक जीवित है, तब तक वह कभी भी पूर्ण रूप से अवगुणों से रहित

नहीं हो सकता। बहुत समझाने के बाद भी मन में वासनाएँ और मोह के भाव आ ही जाते हैं—

ज्यों कुरंग निज अंग रुचिर मद अतिमतिहीन मर्म नहिं पायो।
खोजत गिरि तरु, लता, भूमि, बिल परम सुगन्ध कहाँ तें आयो।
ज्यों सर विमल बारि परिपूरन, ऊपर कछु सिवार तृन छायो।
जारत हियो ताहि तजि हौं सठ, चाहत यहि विधि तृषा बुझायो।[14]

महाबुद्धिहीन होने के कारण हरिण कस्तूरी को पहाड़, वृक्ष, धरती और सब स्थानों पर ढूँढ़ता फिरता है कि यह सुगन्धि कहाँ से आ रही है। जैसे तालाब का निर्मल जल घास के कारण दिखाई नहीं देता, उसी प्रकार मनुष्य के भीतर ही सब कुछ है, सच्चा सुख मनुष्य के स्वयं के पास है, उसे बाहर नहीं खोजना चाहिए, बाहर तो छल है जैसे मृग का बाहर कस्तूरी ढूँढ़ना और निर्मल पानी से भरपूर तालाब का विकार से युक्त दीखना। प्रकृति से प्राप्त इन उदाहरणों द्वारा कवि मनुष्य के ज्ञान की वृद्धि करना चाहता है। सन्त जन ही संसार में श्रेष्ठ हैं। उन्हें अच्छे-बुरे की पहचान होती है और वे निर्मल चरित्र वाले होते हैं। उनके चरित्र को गाय के दृष्टान्त द्वारा कवि ने सुन्दर रूप से वर्णित किया है—

स्याम सुरभि पय बिसद अति गुनद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य सिय राम जस गावहिं सुनहिं सुजान॥[15]

श्यामा गाय काली होती है परन्तु उसका दूध उज्ज्वल और गुणदायक होता है। इसी प्रकार सन्त जन राम-यश को ग्राम्य भाषा में होने पर भी सुनते हैं। व्यक्ति में गुण होने चाहिए, बाह्य सौन्दर्य निरर्थक है, गुणों द्वारा ही मनुष्य सम्मान प्राप्त करता है। इसी कथन को पुष्ट करने के लिए कवि श्यामा गाय का उदाहरण देता है और अपनी बात सरलता से कह पाने और समझा पाने में समर्थ होता है—

पिअहिं सुमन रस अलि, बिटप काटि कोल फल खात।
तुलसी तरुजीवी जुगल सुमति कुमति की बात॥[16]

भ्रमर और भील दोनों वृक्षों के सहारे जीते हैं। भ्रमर फूलों का रस पीते हैं। कोल वृक्ष काटकर उसका फल खाते हैं। दोनों अपनी क्षुधा पूर्ति करने वाले साधन का उपयोग करते हैं, भ्रमर उसे नवजीवन दे देते हैं, भील उसे नष्ट कर देते हैं। अच्छे आचरण को अपनाना चाहिए, जिससे किसी का बुरा न हो, बल्कि भ्रमर के समान इतनी सहजता से अपनी क्षुधापूर्ति करनी चाहिए कि पुष्प तक को ज्ञात न हो। भ्रमर के उदाहरण द्वारा दूसरों को कष्ट न देने का उपदेश दिया गया है।

जोंक सूधि मन कुटिल गति खल बिपरीत बिचारु।
अनहित सोनित सोष सो सो हित सोषनहारु॥[17]

जोंक की चाल टेढ़ी होती है परन्तु वह मन से सीधी होती है क्योंकि हानिकारक

रक्त चूसती है। परन्तु दुष्ट इसके विपरीत होते हैं उनकी बात सीधी और मन कपटी होता है। कई व्यक्ति मन से दुष्ट होते हैं परन्तु आकृति से बहुत भले होते हैं। लेकिन कई कठोर मुद्रा वाले होते हैं और हृदय से बहुत कोमल होते हैं। कई मीठा बोलकर वार कर जाते हैं, कुछ भलाई के लिए सत्य भाषण करते हैं परन्तु बुरे बन जाते हैं। इस प्रकार आचरण से ही अच्छे-बुरे की पहचान करनी चाहिए, बाह्य मुखमुद्रा देखकर नहीं, जैसे जोंक चलती टेढ़ी है, लेकिन काम सीधा करती है।

इसी प्रकार एक और उदाहरण द्वारा कवि अपनी बात कहता है—

सारदूल को स्वाँग करि कूकर की करतूति।
तुलसी तापर चाहिए कीरति बिजय बिभूति।[18]

जो लोग सिंह का सा स्वाँग भरकर युद्धों के से काम करते हैं और इस पर भी कीर्ति और ऐश्वर्य चाहते हैं, वे बुद्धिहीन हैं। यदि कोई अपने आपको बहुत महान कहे और फिर भी छोटे-छोटे स्वार्थ साधन में लगा रहे तो उसे आदर कभी भी प्राप्त नहीं हो सकता। बाह्य आवरण डाल देने पर भी मनुष्य बदल जाय, यह आवश्यक नहीं है। अपने आचरण से वह बता देता है कि उसकी असलियत क्या है। जैसे सिंह का स्वाँग भरने वाला कुत्ता करता है।

राज़मराल के बालक पेलि के, पालत लालत खूसर को।
सुचि सुन्दर सरिस केलि सुजरि के बीज बटोरत ऊसर को।[19]

कलियुग में लोग राजहंसों के शासकों को छोड़कर ज्ञानियों को छोड़कर उल्लुओं, अज्ञानियों का लालन-पालन करते हैं। लोग धान के सुन्दर दानों को एकत्रित कर भली प्रकार जला देते हैं और ऊसर भूमि में दानों को बटोरते हैं। लोगों को भले-बुरे का ज्ञान नहीं है। उन्होंने बुराई को इतना आत्मसात कर लिया है कि वे उसे बचाने के लिए अच्छाई का हनन कर डालते हैं। उन्हें राजहंसों से अधिक उल्लू पसन्द हैं। यहाँ राजहंस सद्वृत्ति और उल्लू दुष्प्रवृत्ति के प्रतीक हैं। इन पशु-पक्षियों के माध्यम से कवि अपनी बात प्रमाण सहित हृदयग्राही ढंग से कह पाता है।

हर बार कवि ने प्रकृति को उदाहरण बनाकर मनुष्य को विभिन्न उपदेश दिए हैं—

हम हमार आचार बड़, भूरि भार धरि सीस।
हठि सठ परबस परत जिमि कीर कोस कृमि कीस॥[20]

अभिमान का भारी बोझ सिर पर रखकर मूर्ख लोग तोते, रेशम के कीड़े और बन्दर की तरह दूसरों के बल के अधीन हो जाते हैं। तोता चारे के लालच में, रेशम का कीड़ा अपनी निपुणता के लिए और बन्दर नकल करके अपने में फूला नहीं समाता। ये तीनों अधीन कर लिये जाते हैं। अहंकार मनुष्य के पतन का कारण होता है। इसलिए तोते, रेशम के कीड़े और बन्दर की तरह अभिमान नहीं करना चाहिए,

नहीं तो उन जैसी दुर्गति होती है।

मनुष्य को अभिनय या बाहरी परिवेश से प्रभावित नहीं होना चाहिए, क्योंकि जो कुछ आवरण में छिपा करता है, वह बाहरी चमक-दमक से ज्ञात नहीं हो सकता—

हृदय कपट बर वेष धरि बचन कहहि गढ़ि छोलि।
अब के लोग मयूर ज्यों क्यों मिलिए मन खोलि।[21]

लोग मोर के समान सुन्दर वेष धारण कर बना-बनाकर अच्छी बातें करते हैं परन्तु उनके हृदय में कपट भरा रहता हैं। उनका हृदय इतना कठोर होता है कि विष को भी पचा जाते हैं। जैसे मोर बाहर से देखने में सुन्दर और चमकीला होता है और वह विषयुक्त सर्प का भक्षण करता है। उसी प्रकार धनी लोगों की सम्पन्नता के पीछे नीचता छिपी रहती है। वे हृदय से मोर के समान कठोर होते हैं।

एक पक्षी या कीड़े की विभिन्न क्रियाएँ होती हैं। उनके एक-एक क्रियाकलाप से कवि शिक्षा ग्रहण करता है। एक बार रेशम के कीड़े के उदाहरण से अभिमान की निन्दा करता है, दूसरी बार वही रेशम का कीड़ा गुणी होने के कारण सबका आदरणीय होता है क्योंकि गुणों का सर्वत्र आदर होता है—

पाट कीट तैं होइ, तेहि तें पाटंबर रुचिर।
कृमि पालइ सबु कोइ, परम अपावन प्रान सम॥[22]

रेशम का सुन्दर कपड़ा कीड़े के कारण बनता है। इसलिए अत्यन्त अपवित्र कीड़ों को भी लोग प्राणों से बढ़कर पालते हैं। सर्वत्र गुण का आदर होता है और होना भी चाहिए। कीड़ों को कोई देखता भी नहीं है। वे पैरों से रौंद दिए जाते हैं। लेकिन रेशम का कीड़ा गुणी होने के कारण प्रेम से पाला जाता है।

वीर लोगों को छोटे लोगों की निन्दा से कोई अन्तर नहीं पड़ता क्योंकि उनकी शक्ति ही निर्णायक होती है। छोटे लोग तो अपनी दुर्बलता को ढकने के लिए छोटी बातें कहते हैं, लेकिन सक्षम को इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता—

कै निदरहूँ कै आदरहूँ सिंघहि स्वान सिआर।
हरष विषाद न केसरिहि कुंजर गंजनिहार॥[23]

सक्षम को किसी का भय और किसी प्रकार की चिन्ता नहीं होती। जैसे कुत्ते, सियार, हाथी को पछाड़ने वाले सिंह का निरादर करें तो सिंह की वीरता में कोई अन्तर नहीं आता क्योंकि उसकी वीरता इनके कहने से घट नहीं जाएगी। इसलिए ऐसे लोगों की परवाह नहीं करनी चाहिए।

दुर्बलों के प्रति भी कवि को पूर्ण सहानुभूति है। दुर्बलता अलग है और चालाकी अलग है। अगर कोई दुर्बल है तो चालकी से उसे वीर नहीं बनना चाहिए, दुर्बल होना स्वयं में अपराध नहीं है—

सहबासी काचो गिलहिं पुरजन पाक प्रवीन।
कालछेप केहि मिलि करहिं तुलसी खग मृग मीन ॥[24]

बेचारे पक्षी, हिरन और मछली किसके साथ मिलकर जीवन बिताएँ। एक ही स्थान में रहने वाले एक ही आकाश में उड़ने वाले बाज दूसरे पक्षियों को खा लेते हैं। एक ही वन में रहने वाला सिंह अन्य पशुओं का भक्षण कर लेता है। एक ही जल में रहने वाली बड़ी मछलियों या ग्राह अन्य जलीय प्राणियाँ को निगल जाते हैं। इस प्रकार कोई किसी पर दया नहीं करता। शक्तिशाली व्यक्ति या जीव-जन्तु दुर्बलों का विनाश कर देते हैं। लेकिन इसमें दुर्बलों का दोष नहीं है। उन्हें विधाता ने ही इस प्रकार बनाया है। यहाँ पशु-पक्षियों के वर्णन द्वारा निर्बलों से सहानुभूति प्रदर्शित की गई है।

तुलसी ने वाणी की मधुरता को बहुत महत्त्व दिया है। मीठे वचनों से बिगड़ता हुआ कार्य भी बन जाता है और कुछ वचनों द्वारा बनता हुआ कार्य भी बिगड़ जाता है—

मधुर बचन कटु बोलिबो, बिनु श्रम भाग अभाग।
कुहू कुहू कलकंठ रव का का करत काग ॥[25]

मधुर बोलना और कड़ुवा बोलना बिना किसी श्रम के भाग्य-अभाग्य को बनाना है। कोयल कुहू की ध्वनि करती है, सबको उसकी वाणी मीठी लगती है। सब उस मधुर ध्वनि को सुनना चाहते हैं। कौवा काँव-काँव करता है तो लोग उसे पत्थर मारकर उड़ा देते हैं। इसलिए कोयल जैसी मीठी वाणी बोलनी चाहिए जिससे सबको सुख मिले और स्वयं का भी निरादर न हो। कौए की भाँति कर्कश बोल नहीं बोलने चाहिए। कवि बार-बार मनुष्य को पशु-पक्षियों के आचरण द्वारा प्रबुद्ध करता है। मानव कल्याण को प्रचारित करने के लिए कवि पशु-पक्षियों के उदाहरण बार-बार देता है और उसके द्वारा सरलता से मानव को अच्छे-बुरे का ज्ञान कराता है।

एक वस्तु का भली प्रकार से प्रयोग उसे उपयोगी और उसका गलत प्रयोग उसे निरर्थक बना देता है—

उरबी परि कलहीन होइ, ऊपर कलाप्रधान।
तुलसी देखु कलाप गति, साधन घन पहिचान ॥[26]

उचित साधन द्वारा ही वस्तु का उपयोग करना चाहिए। मोर की पाँख जब नीचे पड़ी होती हैं तो वह कलाहीन हो जाती है। जब ऊपर होती है तो कलाप्रधान हो जाती है। इसमें मेघ ही प्रधान साधन है। मेघ देखते ही मोर अपने पाँख ऊपर कर लेता है और वे पंख सुन्दर दिखाई देते हैं अन्यथा निरर्थक होकर सौन्दर्यहीन से पड़े रहते हैं। इसमें साधन मेघ की ही श्रेष्टता है जो कलाहीन पड़ी हुई मोर की पाँख को कला-प्रधान बना देता है। इसी प्रकार हाथ-पैरों का बुद्धि-साधन द्वारा उचित उपयोग करना चाहिए।

आजकल एकता पर बहुत बल दिया जा रहा है। तुलसी ने बहुत पहले ही इसके विषय में प्रकृति के माध्यम से उपदेश दिया था—

गो खग, खे खग बारि खग तीनों माहिं बिसेक।
तुलसी पीवै, फिर चलै, रहैं फिरें, संग एक ॥[27]

पृथ्वी, आकाश और जल में रहने वाले तीनों प्रकार के पक्षियों में यह विशेषता है कि वे सब अपना दल बनाकर एक ही साथ पानी पीते, चलते फिरते हैं, रहते हैं। इनसे मनुष्यों को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। एकता के सामने कोई अन्य आक्रमण नहीं करता, बाहरी खतरों का सामना किया जा सकता है। सुख-दुःख में सब साथ रहें तो अच्छा है। एकता सब प्रकार से लाभदायक है। इसलिए इन पक्षियों की एकता से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

इस संसार में कोई व्यक्ति छोटा-बड़ा या कोई स्थान पवित्र-अपवित्र नहीं है। कुल या स्थान से ही कोई बड़ा नहीं माना जा सकता, हर व्यक्ति अलग होता है, किसी का भी पूर्ण प्रभाव उस पर नहीं होता—

अति ऊँचे मूघरनि पर, भुजगण के अस्थान।
तुलसी अति नीचे सुखद, ऊख अन्न अरु पान ॥[28]

ऊँचे पहाड़ों पर सर्पों के रहने के स्थान होते हैं और नीची जगह पर सुखदायक ऊख, अन्न और जल होता है। भजनरहित ऊँचे कुल में अहंकार, भय, सुख होते हैं। किसी निश्चित कुल को अच्छा या बुरा नहीं कहा जा सकता। सर्प के उदाहरण द्वारा ऊँचे और नीचे का भेद मिटाने का प्रयास किया गया है।

इसीलिए कवि बार-बार कहता है कि सदाचरण अपनाओ और कपट छोड़ दो। अच्छे आचरण-युक्त व्यक्ति, किसी भी कुल-जाति का क्यों न हो, सर्वत्र आदर पाता है। सदाचारी दूसरों का भला करता है, उन्हें सुख पहुँचाता है। इससे संसार का और अपना दोनों का भला होता है—

करि हंस को वेष बड़ो सबसों तजि दे बव-बायस की करनी।[29]

अपना वेष हंस के समान बनाना चाहिए। सदैव सद्वृत्तियों का आलम्बन करना चाहिए और बगुले की करतूत, दिखावा, छल, कपट एवं कोए की अविश्वासी वृत्तियाँ छोड़ देना चाहिए। बगुले और कौवे जैसी कपटी वृत्तियों से कल्याण सम्भव नहीं है। हंस जैसा सदाचरण अपनाना चाहिए।

प्रेम को कवि ने बहुत उच्च स्थान दिया है। जो पशु-पक्षी अपने प्रेम के प्रति निष्ठावान हैं उन्हें बहुत आदरणीय स्थान दिया गया है। उनके जैसा एकनिष्ठ प्रेमी बनने का उपदेश है—

नेम तौ पपीहाहीके, प्रेम प्यारो मीनहीके,
तुलसी कही है नीके हृदय आनि।[30]

नियम तो पपीहे का ही श्रेष्ठ है और प्यार-प्रेम तो मछली का ही अच्छा है। पपीहा प्रियविहीन होकर अपनी बोली बोलते-बोलते-मृत्यु का वरण कर लेता है। मछली पानी से पृथक् होते ही प्राणों का त्याग कर देती है। उसी प्रकार मनुष्य को इस पक्षी और मछली से एकनिष्ठ प्रेम की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए और उन जैसा बनने का प्रयत्न करना चाहिए। प्रभु की भक्ति के बिना ऐश्वर्य असम्भव है। भक्ति ही सभी सुखों का साधन है। इस तथ्य को कवि पशु-पक्षियों की निर्बलता और वीरता द्वारा प्रदर्शित करते हैं—

बैनतेय बलि जिमि चह कागू। जिमि ससु चहै नाग अरि भागू।
जिमि चह कुसल अकारन कोही। सब सम्पदा चहै सिवद्रोही ॥[31]

जिस प्रकार गरुड़ का बल कौवा चाहे, सिंह का भाग्य खरगोश चाहे, अकारण क्रोध करने वाला कुशल चाहे और शिव-विरोधी सम्पत्ति चाहे तो उनकी कामना असम्भव कल्पना है। गरुड़ पक्षियों में और सिंह पशुओं में सर्वशक्तिमान हैं। उन्हें अन्य कोई पक्षी या पशु नहीं जीत सकता, फिर भी यह कल्पना की जाय कि सिंह का भाग्य खरगोश ने ले लिया, जो कि असम्भव है उसी प्रकार भक्ति-विहीन नर सुखी रहे, यह असम्भव है।

अंगद-रावण संवाद के प्रसंग के समय अंगद रावण का उपहास करते हैं और कहते हैं कि तुम्हें मारना अपनी स्वयं की अवज्ञा करना है। जैसे—

प्रीति बिरोध समान सन करिअ नीति असि आहि।
जौं मृगपति बध मेडुकन्हि, भल कि कहइ कोउ ताहि ॥[32]

प्रीति और बैर बराबर वालों से करना चाहिए, ऐसी ही नीति है। सिंह यदि मेंढक को मारे तो उसे क्या कोई भला कहता है। सिंह यदि अपने समान शक्तिशाली हाथी का मस्तक विदीर्ण करे तो प्रशंसा का पात्र है। अत्यन्त निर्बल पर वार करने वाला वीर उपहास का पात्र होता है, जैसे कि मेंढक को मारने वाला सिंह।

इस पर रावण अपनी वीरता का वर्णन करता है और अंगद इसके उत्तर में उसे पतंगे का उदाहरण देकर समझाता है। इन्द्रजाल रचने वाले को वीर नहीं कहा जाता, यद्यपि वह अपने हाथ से अपने अंग काट डालता है—

जरहिं पतंग मोह-बस भार बहहिं खर बृंद।
ते नहिं सूर कहावहिं, समुझि देखु मतिमन्द ॥[33]

पतंगे नासमझी में आग में जल जाते हैं। गदहों के झुण्ड बोझ लादकर चलते हैं। वे वीर नहीं कहलाते। बिना जाने-बूझे अनैतिक कार्य चाहे जितने भी परिश्रम से किया जाय, वीरता नहीं कहलाता। जैसे गधे को तो बहुत सहनशील और वीर मानना चाहिए क्योंकि वह सारा दिन कार्य करता है, लेकिन वह मूर्खता का पर्याय है। इसी प्रकार किसी पहाड़ को उठाना, अपने सिर काटकर अर्पित करना आदि में चमत्कार तो लगता है,

लेकिन उसे हम वीरता नहीं कह सकते। सोच-समझकर परिश्रम से किया गया कार्य ही सार्थक है। अन्यथा वह कार्यभार वहन करती हुई गर्दभी के श्रम के समान है।

भ्रातृ-प्रेम को पुष्ट करने के लिए भी कवि पशु-पक्षियों का ही आश्रय लेते हैं। लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर राम कहते हैं–

जथा पंख बिनु खग अति दीना। मनि बिनु फनि, करिबर कर हीना।
अस मम जिवन बन्धु बिनु तोही। जौं जड़ दैव जिआवे मोही ॥[34]

जैसे पंख बिना पक्षी उड़ नहीं सकता उसका जीवन निरर्थक हो जाता है, मणि बिना सर्प अत्यन्त व्याकुल हो जाता है, बिना सूँड के हाथी अपना कोई कार्य नहीं कर सकता, पशु-पक्षियों के लिए जैसे अपने कुछ अंग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हैं, उनके बिना जीवन असम्भव है, उसी प्रकार लक्ष्मण के बिना राम का जीवन भी असम्भव है। इसी प्रकार का भ्रातृ-प्रेम होना चाहिए। भ्रातृ-प्रेम की तीव्रता को व्यक्त करने के लिए कवि ने विभिन्न पशु-पक्षियों का उदाहरण लिया है।

जिस प्रकार चकोर चन्द्रमा से प्रीति करता है, वैसी ही भक्ति राम से करनी चाहिए। 'विनयपत्रिका' में राम-विमुख मनुष्यों को गीदड़, कुत्ते और सूअर के समान निकृष्ट कोटि का कहा गया है। यही बात 'गीतावली' में भी वर्णित है कि भजन-विमुख मनुष्य जड़-पशुओं के समान है। वहाँ उसकी तुलना गधे, कुत्ते और गीदड़ से की है। प्रभु-भक्ति से बुरा भी अच्छा हो जाता है, जैसे रामनाम के कारण कौए के समान तुच्छ मनुष्य भी हंस के समान पवित्र हो जाते हैं। 'गीतावली' में हंस के नीर-क्षीर-विवेक के उदाहरण द्वारा कपटी लोगों से सावधान रहने को कहा गया है।

बुराई सहज रूप से सर्वत्र मिल जाती है, कुरूप पशु-पक्षी तो सर्वत्र उपलब्ध हैं, परन्तु अच्छाई के प्रतीक सुन्दर पशु-पक्षी कहीं-कहीं दिखाई देते हैं।

इस संसार में कोई छोटा-बड़ा नहीं है। इतना विशाल हाथी गंगा में बह जाता है और छोटी-सी मछली उस धारा में नहीं डूबती। 'विनयपत्रिका' में कवि ने कस्तूरी ढूँढ़ने के हरिण के प्रसंग द्वारा मानव को बाहरी चमक-दमक से सावधान रहने को कहा है। 'दोहावली' में सदाचरण पर बहुत बल दिया है, भ्रमर की तरह फूलों का रस पीना चाहिए, जिससे पुष्प को बिलकुल हानि न हो। सर्वत्र गुणों का ही आदर होता है जैसे रेशम का कीड़ा अत्यन्त अधम होने पर भी प्यार से पाला जाता है। 'दोहावली' में बार-बार पशु-पक्षियों, वनस्पतियों आदि के माध्यम से बाहरी चमक-दमक से सावधान रहने का सन्देश दिया गया है। मोर बाहर से देखने में अत्यन्त सुन्दर होता है, लेकिन विषयुक्त सर्प उसका भोजन है। सबको मधुर वचन बोलने चाहिए, जैसे कोयल मीठे वचन बोलती है तो सब उसकी वाणी सुनना चाहते हैं, लेकिन कौए की आवाज सुनकर सब उसे मारकर भगा देते हैं। इस प्रकार पशु-पक्षियों की विभिन्न क्रियाओं द्वारा कवि ने मानव को दया, अहिंसा, एकता, प्रेम आदि का उपदेश दिया है।

सूर्य

सूर्य सदा से ही पृथ्वी का उपकारक रहा है। पृथ्वी पर जीवन सूर्य के कारण ही सम्भव है अन्यथा पृथ्वी बर्फ की तरह ठण्डी होती और कोई भी प्राणी यहाँ जीवित न रहता। सूर्य की किरणें ही जीवन का विकास और पोषण करती हैं। पृथ्वी पर जीवन पूर्ण रूप से सूर्य पर निर्भर है। समस्त जड़-चेतन प्राणी सूर्य के ऋणी हैं, वह उनका जीवन स्रोत है। सूर्य दूर से देखने पर छोटा लगता है परन्तु उसे छोटा नहीं समझना चाहिए, वह अपार शक्ति का स्रोत है। इसी प्रकार बाह्य स्वरूप छोटा या अल्प होने पर भी किसी व्यक्ति को बलहीन नहीं मानना चाहिए—

कहं कुंभज कहँ सिन्धु अपारा। सोषेउ सुजसु सकल संसारा।
रबि मंडल देखत लघु लागा। उदय तासु त्रिभुवन तम भागा॥[35]

कहाँ घड़े से उत्पन्न मुनि अगस्त्य और कहाँ अपार समुद्र? परन्तु अगस्त्य मुनि ने सारा समुद्र अपने भीतर समाहित कर लिया था। जैसे देखने में छोटा लगने वाला सूर्य तीनों लोकों का अन्धकार दूर कर देता है। किसी भी व्यक्ति को छोटा या बलहीन नहीं समझना चाहिए।

सन्त सदा दूसरों को सुख देते हैं। उनके द्वारा सबका लाभ ही होता है। वे बिना स्वार्थ के संसार का हित करते हैं—

सन्त उदय सन्तत सुखकारी। बिस्व सुखद जिमि इन्दु तमारी।
परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा। परनिन्दा सम अघ न गरीसा॥[36]

सन्तों का अभ्युदय सदा सुखकर होता है। उनके द्वारा सब सुख-प्राप्ति ही करते हैं, जैसे सूर्य-चन्द्र के उदय से सारा संसार सुखी होता है। यदि पृथ्वी पर सूर्य और चन्द्रमा उदित नहीं होते तो यहाँ जीवन की कल्पना भी असम्भव थी। प्रकृति का उपकरण सूर्य कवि के विचारों का जीवनदाता है, उसका प्रेरणा- स्रोत है।

सन्तों की एक और विशेषता का वर्णन कवि ने सूर्य के माध्यम से सुन्दर ढंग से किया है—

बरषत करषत आपु जल हरषत अरघनि भानु।
तुलसी चाहत साधु सुर सब सनेह सनमानु॥[37]

सूर्य स्वयं पृथ्वी पर जल बरसाता है और सोखता है, परन्तु लोगों के दिए हुए थोड़े-से अर्घ्य से प्रसन्न होता है। यहाँ कवि ने प्रकृति के उदाहरण द्वारा उपदेश दिया है कि सज्जनों को थोड़े-से ही परिश्रम द्वारा प्रसन्न किया जा सकता है क्योंकि उनका हृदय विशाल होता है और वे केवल श्रद्धाभाव से ही प्रसन्न हो जाते हैं। जिस प्रकार जो सूर्य सारे संसार को जल देता है, उसे उसी का दिया हुआ थोड़ा-सा जल यदि श्रद्धा से अर्पण कर दिया जाय तो वह प्रसन्न हो जाता है।

सीधे व्यक्ति संसार में कष्ट सहते हैं। दुर्जनों को कुछ कहते हुए भी समाज

डरता है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि सरल और सीधा होना बुरा है, सरल व्यक्ति को जो कष्ट होता है वह थोड़े समय का होता है। परन्तु विधाता दुर्जन को जो दण्ड देते हैं, वह अकथनीय होता है। सीधे व्यक्ति को दिया गया दुःख क्षणिक होता है–

सरल-बक गति पंच ग्रह चपरि न चितवत काहु।
तुलसी सूधे सूर-ससि समय विडम्बित राहु ॥[38]

टेढ़ी चाल चलने वाले मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि इन ग्रहों की ओर राहु आँख उठाकर भी नहीं देखता, किन्तु सीधी चाल चलने वाले सूर्य और चन्द्रमा को वही राहु समय पर त्रास देता है। यह प्रकृति का ही नियम है। सरल एवं भोले पर जल्दी वार होता है। शेर को छेड़ने का कोई साहस नहीं करता, मेमने और खरगोश को सभी मार देते हैं।

मित्रता कैसी होनी चाहिए, इसका उदाहरण भी सूर्य के माध्यम से कवि ने दिया है–

कुदिन हितू सो हित सुदिन हित अनहित किन होइ।
ससि छबि हर रबि सदन तउ मित्र कहत सब कोइ ॥[39]

सच्चा मित्र वही है जो दुःख में सहायता करे। सूर्य अपने घर में अमावस्या के दिन चन्द्रमा को शोभायमान नहीं कर सकता क्योंकि प्रकृति का यही नियम है। फिर भी सब उसे चन्द्रमा का मित्र कहते हैं क्योंकि सूर्य विपत्ति में सदा चन्द्रमा को प्रकाश देता है। चन्द्रमा सूर्य के प्रकाश से ही प्रकाशित होता है, सूर्य सोलह कलाओं से पूर्ण चन्द्रमा को प्रकाश देता है क्योंकि चन्द्रमा सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित है, लेकिन अमावस्या के दिन उसे प्रकाशित नहीं करता क्योंकि तब चन्द्रमा को सूर्य के प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती। मित्र को आवश्यकता के समय अपने सखा की सहायता करनी चाहिए; यदि सखा विपत्ति में नहीं है तो वह सहायता करे या न करे, कोई अन्तर नहीं पड़ता। सूर्य और चन्द्रमा का ऐसा ही सम्बन्ध है।

जो शक्तिशाली होता है या जिसमें योग्यता होती है, उसकी समता अयोग्य व्यक्ति नहीं कर सकते, हर व्यक्ति या वस्तु की अपनी विशेषता होती है, कोई किसी का स्थान नहीं ले सकता, सबका स्थान और कार्य अलग-अलग है–

राकापति षोडस उअहिं तारागन समुदाइ।
सकल गिरिन्ह दव लाइअ बिनु रबि राति न जाइ ॥[40]

चाहे चन्द्रमा समस्त तारागण साथ लेकर सोलह कलाओं से पूर्ण होकर उदय हो जाय और सभी पहाड़ों में आग लगा दी जाय तो भी सूर्य के उदय हुए बिना रात्रि (का अन्धकार) नहीं आ सकती। सूर्य की जो महत्ता है उसका जो कार्य है, उसका ही है, कोई किसी का कार्य नहीं कर सकता। यहाँ कवि ने सूर्य के माध्यम से उपदेश दिया है कि दूसरों की महत्ता को स्वीकार कर लेना चाहिए और उनसे समानता करने का

प्रयत्न नहीं करना चाहिए, जैसे चन्द्रमा जितना भी चमके सूर्य की प्रतिद्वन्द्विता नहीं कर सकता।

राम के कुलगुरु सूर्य हैं। सूर्य निःस्वार्थ मात्र से मानव-कल्याण करता है। सूर्य की गर्मी की प्रक्रिया से ही पृथ्वी को बल मिलता है। सज्जन सूर्य के समान होते हैं जो किसी से कुछ नहीं चाहते और निःस्वार्थ भाव से लोगों का भला करते हैं।

'दोहावली' में कहा गया है कि दुर्जन से सभी डरते हैं, जैसे राहू भी सूर्य को ही ग्रहण लगाता है, लेकिन टेढ़े ग्रहों को कुछ नहीं कहता। सूर्य चन्द्रमा का मित्र है, यथासमय उसकी सहायता करता है। वैसे ही मनुष्य को यथासमय विपत्ति में पड़े मित्र की सहायता करनी चाहिए।

'दोहावली' में पहले कवि कह चुका है कि जो जिसका कार्य है, वही उसे कर सकता है, हाथी मछली का कार्य नहीं कर सकता, उसी प्रकार देखने में छोटा लगने वाला सूर्य ही अन्धकार मिटा सकता है। मनुष्य कृत्रिम रूप से कितने भी प्रयत्न कर ले, सूर्य जितना प्रकाश नहीं उत्पन्न कर सकता, इसलिए सदा अपनी शक्ति और सीमाओं का ध्यान रखना चाहिए, अन्यथा गर्वित होना उचित नहीं है।

चन्द्रमा

अवसर के मूल्य को समझाने के लिए कवि प्रकृति से प्रेरणा लेकर उपदेश देते हैं—

अवसर कौड़ी जो चुके बहुरि दिएँ का लाख।
दुइज न चन्दा देखिए उदौ कहा भरि पाख ॥[1]

आवश्यकता के समय यदि मनुष्य कौड़ी देने में भी चूक जाय तो फिर अवसर बिना लाख रुपया देने में भी क्या लाभ। द्वितीया का चन्द्रमा न देखा तो फिर पक्ष पर चन्द्रमा के दर्शन का क्या लाभ? द्वितीया के चन्द्रमा के दर्शन से लाभ होता है। इसीलिए द्वितीया के चन्द्रमा के दर्शनों का महत्त्व होता है। एक बार कृष्ण को किसी ने चतुर्थी का चन्द्रमा दिखा दिया तो उन पर स्यमन्तक मणि को चुराने का अपराध लग गया। इस प्रकार अन्य पक्षों के चन्द्रमा के दर्शनों का इतना महत्त्व नहीं जितना द्वितीया के चन्द्रमा के दर्शनों का होता है। चन्द्रमा से कवि ने नीति और ज्ञान की शिक्षा कम ली है, लेकिन उसके सौन्दर्य से कवि पूर्ण रूप से प्रभावित है। 'मानस' में कवि ने कहा है कि चकोर जैसे चन्द्रमा से प्रीति करता है, वैसी ईश्वर के प्रति मानव को प्रीति करनी चाहिए।

महत्त्व अवसर का होता है। बिना अवसर की गई अच्छी बात भी बुरी बन जाती है। इसलिए जब जिसे जिस वस्तु की आवश्यकता है, उसे वही देनी चाहिए 'जहाँ काम आवै सुई कहा करे तरवारि'—जब किसी को एक पैसे की आवश्यकता है

तो उसी समय उसे देना चाहिए, बाद में देने से महत्त्व कम हो जाता है, जैसे द्वितीया का चन्दा न देखा हो तो पक्ष भर उसे देखने से लाभ नहीं होता।

पंचतत्त्व

तुलसीदास प्रकृति की सौन्दर्य विभूति के प्रति निरपेक्ष हैं, उन्हें तो आध्यात्मिक आनन्द का ही अनुभव होता है। प्रकृति के अणु-अणु में उन्हें नीति और उपदेश का आभास मिलता है। उनके लिए प्रकृति एक ऐसा क्षेत्र है, जहाँ आदर्श ओर नीति की वाटिकाएँ लहलहा रही हैं—

रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी ॥
पंक न रेनु सोह असि धरनी। नीति निपुन नृप कै जस करनी ॥
जल संकोच बिकल भई मीना। अबुध कुटुम्बी जिमि धनहीना ॥[12]

इसमें कवि को सरोवर ममता-विहीन ज्ञानी के समान प्रतीत होते हैं। पंक और रेणु से रहित धरती नीति-निपुण राजा के शुभ कृत्यों की परिचायिका लगती है और जल के कम हो जाने से व्यग्र हुई मछली धनाभाव से व्याकुल भूखे मनुष्यों के समान ज्ञात होती है। समस्त प्रकृति उनकी उपदेशिका है।

प्रकृति के उदाहरण द्वारा कवि जो उपदेश देना चाहता है, वह स्पष्ट रूप से आँखों के सामने मूर्त हो उठता है। बार-बार प्रकृति से दृष्टान्त लेकर वह भक्ति का उपदेश देता है—

करम-धरम श्रम-फल रघुवर बिनु
राखको सो होम है, ऊसर कैसो बरिसो ।[13]

राम के बिना धर्म-कर्म व्यर्थ है। वह राख का सा होम है। बिना अग्नि के राख का होम व्यर्थ है। ऊसर धरती में बीज बोओ, उस पर कितना ही मेघ बरसे, लेकिन उमसें बीज नहीं जपता। इस पथ में कवि ने प्रकृति के माध्यम से उपदेश दिया है कि बाह्य आडम्बर व्यर्थ है, मन की पवित्रता और आवरण की शुद्धता ही श्रेष्ठ है। इसके लिए कवि ने सुन्दर उदाहरण दिया है। मेघ के धरती पर बरसने से ही बीज पौधा नहीं बन जाता, अपितु धरती का उपजाऊ होना भी आवश्यक है। इसी प्रकार ईश्वर-प्राप्ति के लिए मन में राम के प्रति श्रद्धा अनिवार्य है।

'कृष्णगीतावली' की गोपियाँ तो प्रेम और भक्ति की साक्षात् प्रतिमाएँ हैं। उन्हें भक्ति और प्रेम के अतिरिक्त कुछ भी अच्छा नहीं लगता—

जद्यपि तुम हित लागि कहत,
सुनि श्रवन बचन नहिं हृदय समाहीं।
मिलहिं न पावक महं तुषार कन,
जौ सोजत सत कलप खिराहीं ॥[14]

चाहे अनेक वर्ष खोजने में लग जाएँ, लेकिन अग्नि में तुषार के कण नहीं मिलते। अग्नि अपना स्वभाव नहीं बदल सकती, अग्नि उष्ण होती है, उसमें कभी भी हिमकण सम्मिलित नहीं हो सकते। इसी प्रकार गोपियाँ कृष्ण से विमुख नहीं हो सकतीं। गोपियों की एकनिष्ठ-भक्ति को कवि ने अग्नि के माध्यम से समझाया है।

अहंकार को अग्नि के समान जलाने वाला बताया है, लेकिन सन्तों के बताए हुए रास्ते पर चलने से अग्नि के समान अहंकार से बचा जा सकता है—

अहंकार की अगिनि में, दहत सकल संसार।
तुलसी बीचे सन्त जन, केवल सांति आधार ॥[15]

अहंकार की अग्नि में समस्त संसार जल रहा है। अहंकार से बचाने के लिए और उसकी तीव्रता व्यक्त करने के लिए कवि ने उसे अग्नि के समान बताया है और अग्नि से सन्तजन ही बचा सकते हैं—

महा सांति जल परसि के, सांत पए जन जोई।
अहं अगिनि ते महिं दहे कोटि करे जो कोइ ॥[16]

जो जल रूप शान्ति को प्राप्त कर चुके हैं, उन्हें अहंकार की अग्नि जला नहीं सकती। सन्त जल के समान पवित्र और जीवनदायी होते हैं। जिस प्रकार जल अग्नि को शान्त कर देता है, उसी प्रकार गुण रूपी जल अहंकार रूपी अग्नि को शान्त कर देता है। यहाँ जल शान्ति और गुण का प्रतीक हैं और अग्नि अहंकार और दुर्गुण का प्रतीक है। तुलसी भाग्य को भी मानते थे—

होइ भले के अनभलो, होइ दानि के सूम।
होइ कपूत सपूत कैं, ज्यों पावक में धूम ॥[17]

पवित्र तेजोमय अग्नि से काला धुआँ निकलता है। वैसे ही भले के बुरा, दानी के कंजूस और सपूत के कपूत उत्पन्न हो जाता है। कुल से ही सब कुछ नहीं जाना जा सकता, जैसे अग्नि से धुआँ निकलता है (कुल पवित्र, परन्तु सन्तति मलिन)।

मनुष्य का सबसे बड़ा गुण सन्तोष है, जो उसे असीम सुख प्रदान करता है। जिस व्यक्ति के पास संसार की प्रायः प्रत्येक भौतिक वस्तु है, लेकिन सन्तोष-धन नहीं है, वह कष्टप्रद जीवन व्यतीत करता है, निर्धन के पास भी यदि सन्तोष-धन है तो उसका जीवन सार्थक है—

कोउ विश्राम कि पाव, तात सहज सन्तोष बिनु।
चलै कि जल बिनु नाव, कोटि जतन पचि पचि मरिअ ॥[18]

जल के बिना नाव नहीं चल सकती, नाव को चलाने के लिए जल आवश्यक है। उसी प्रकार जीवन में वास्तविक सुख के लिए सन्तोष होना आवश्यक है। जीवन

रूपी नाव सन्तोष रूपी जल के सहारे ही आगे बढ़ सकती है। प्रकृति सर्वथा कवि के कथनों को पुष्ट करती है और उसके कार्यकलापों द्वारा कवि मानव को शिक्षा देने का प्रयास करता है।

सत्संगति में ज्ञात ही नहीं होता कि कब दुर्गुण पीछे रह जाते हैं और सद्वृत्तियाँ सहज ही अपना अधिकार कर लेती हैं—

जथा अमल पावन पवन पाइ कुसंग सुसंग।
कहिअ कुबास सुबास तिमि, काल महीस प्रसंग ॥[19]

निर्मल और पवित्र वायु दुर्गन्धयुक्त और सुगन्धयुक्त वस्तुओं के संसर्ग से दुर्गन्धित और सुगन्धित हो जाती है। उसी प्रकार संगति का प्रभाव मनुष्य पर पड़ता है। गन्दी पोखर के पास वायु दुर्गन्धयुक्त और उपवन में सुगन्धित होती है। इस प्रकार प्रकृति के अवयवों द्वारा कवि का कथन सशक्त, ग्राह्य और सुन्दर बन जाता है। प्रकृति के सभी कार्य अनुकरणीय हैं और इसीलिए कवि उन प्राकृतिक मूल्यों और नियमों को अपने जीवन में उतारने का उपदेश देता है—

उत्तम मध्यम नीच गति पाहन सिकता पानि।
प्रीति परिच्छा तिहुन की बेर बितिक्रम जानि ॥[50]

नीच व्यक्ति की प्रीति स्थिर नहीं होती। जिस प्रकार पानी स्थिर नहीं होता, बहना उसकी प्रवृत्ति होती है, वह एक स्थान पर टिककर नहीं रह सकता, नीच भी उसी तरह स्थिर नहीं रहता। उत्तम पुरुष पत्थर की लकीर के समान अमिट प्रेम करता है। यहाँ पत्थर की लकीर की अमिटता और पानी की चंचलता द्वारा अच्छे-बुरे का भेद बताया है। स्वार्थ के लिए किया गया दान, दान नहीं वरन् व्यापार है—

तुलसी दान जो देत हैं, जल में हाथ उठाइ।
प्रतिग्राही जीवै नहीं दाता नरकै जाइ ॥[51]

मछली को फँसाने के लिए जो जल में दान देते हैं, उससे न मछली जीवित रहती है और न दानी को ही पुण्य प्राप्त होता है। स्वार्थ के लिए दिया गया दान पाप से भी बड़ा है, जैसे कि जल में मछली को फँसाने के लिए दिया गया दान।

अच्छे के घर कभी-कभी कुपुत्र हो जाता है, जैसे अग्नि के साथ कुआँ विद्यमान रहता है। पानी की यह विशेषता होती है कि वह स्थिर नहीं रहता, उसी प्रकार दुष्टों की प्रीति भी स्थिर नहीं होती।

बादल

सन्त कवि होने के कारण तुलसी ने उपदेशात्मक प्रकृति-चित्रण साधिकार एवं सोत्साह किए हैं। उनके व्यक्तित्व की विशिष्टता के कारण ऐसे वर्णन बहुत लोकप्रिय और प्रेरक सिद्ध हुए हैं। उन्हें प्रकृति का प्रत्येक तत्त्व उपदेश देता प्रतीत होता है। वह

श्याम मेघ घटाओं और विद्युच्छटा की रमणीयता से इतने प्रभावित नहीं हुए, जितने श्यामखण्ड की उदारता और विनम्रता तथा दामिनी की चंचलता से। प्रकृति कवि के लिए एक गम्भीर गुरु बन जाती है–

दामिनी दमक न रह घन माहीं। खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं॥
बरषहिं जलद भूमि निअराएँ। जथा नवहिं बुध विद्या पाएँ॥[52]

यहाँ भी मेघों की दान-प्रवृत्ति का वर्णन कवि ने किया है। मेघों जैसा ही दानशील, जीवनदायक मनुष्य को बनना चाहिए। उसे भी दूसरों की सहायता करनी चाहिए। बादल दूसरों को जीवनदायक बल प्रदान करते हैं और स्वयं जल-विहीन हो जाते हैं, फिर भी उनकी दानप्रवृत्ति में अन्तर नहीं आता और वे दुबारा से दान देने के लिए जल इकट्ठा करने लगते हैं। बादलों के साथ बिजली भी रहती है। बिजली क्षण भर चमकती है, फिर लुप्त हो जाती है। वह अत्यन्त चंचल होती है। बिजली की तरह ही पुष्ट व्यक्ति का प्रेम क्षणिक होता है।

कवि ने प्रकृति को माध्यम बनाया है। केन्द्रस्थ भावना उपदेश की ही रही है। फिर भी उन्होंने सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय दिया है। मानस के उपदेश के आधार पर किया गया उनका प्रकृति-चित्रण सर्वत्र कल्पना व्यंजक नहीं है। अनेक स्थानों पर उसमें यथार्थ का स्पर्श है। उदाहरण के लिए उनका वर्षा ऋतु में मेघाच्छन्न आकाश का वर्णन बहुत ही सुन्दर है–

कबहुँ प्रबल बह मारुत, जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कपूत के उपजे, कुल सद्धर्म नसाहिं॥
कबहूँ दिवस महँ निबिड़ तम, कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि, पाइ कुसंग सुसंग॥[53]

वर्षा से वायु के चलने से मेघ इधर-उधर हो जाते हैं। कभी श्याम घटाओं से अन्धकार छा जाता है और कभी उनके बीच सूर्य प्रकट हो जाता है, जैसे कि अच्छी संगति से ज्ञान और बुरी संगति से अज्ञान उत्पन्न होता है। इस प्रकार बार-बार कवि अपने कथनों की पुष्टि के लिए प्रकृति का आश्रय लेता है।

मेघों की उपकारी प्रवृत्ति की एक और विशेषता है कि वे दान देते समय यह विचार नहीं करते कि कौन छोटा है और कौन बड़ा है, कौन योग्य है ओर कौन अयोग्य–

नीच निरावहिं निरस तरु, तुलसी सींचहिं ऊख।
पोषत पयद समान सब, विष पियूष के रूख॥[54]

बादल विष और अमृत दोनों प्रकार के वृक्षों का समान रूप से पोषण करता है। सज्जन व्यक्ति भला-बुरा नहीं देखता, उसका ध्येय तो उपकार करना होता है। जिस प्रकार बादल सब वृक्षों को समान रूप से सींचता है, उसी प्रकार दुर्जन-सज्जन सबका उपकार करना चाहिए।

बरषि बिस्व हरषित करत, हरत ताप अघ प्यास।
तुलसी दोष न जलद को, जो जल जरै जवास ॥[55]

बादल बरसकर समस्त विश्व को प्रसन्न करता है, उसका ताप हरता है। यदि उसके जल से जवासा जल जाए तो इसमें बादल का कोई दोष नहीं है। सद्ज्ञान को न ग्रहण करने वाला व्यक्ति दोषी है, न कि सद्ज्ञान देने वाला। जैसे बादल के जल से जवासा तो जल जाता है और बाकी वृक्ष हरे-भरे हो जाते हैं।

तुलसी जग जीवन अहित, कतहूँ कोउ हित जानि ॥
सोषक भानु, कृसानु, महि, पवन एक घन दानि ।[56]

जगत् में जीवों का अहित करने वाले बहुत हैं। हित करने वाला तो एकाध ही होता है। सूर्य, अग्नि, पृथ्वी, पवन, सभी जल को सुखाने वाले हैं, देने वाला एक बादल ही है। मनुष्य को बादल के समान परोपकारी होना चाहिए, दूसरों का अहित नहीं करना चाहिए। जैसे बादल स्वयं खाली हो जाता है और नदी, तालाब, सरोवर पानी से भर जाते हैं।

भरदर बरसत कोस सत बचैं जे बूँद बराइ।
तुलसी तेउ खल बचन सर हए गए न पराइ ॥[57]

सौ कोस तक बरसती हुई घनी वर्षा की बूँदों से भीगे बिना बच निकलना सम्भव है, लेकिन दुष्टों के वचन-बाणों से कोई नहीं बन सकता। वर्षा में खड़े होकर भीगना असम्भव है। शायद कोई सम्भव कर दिखाए, लेकिन कटु वचनों से हृदय में घाव न होना असम्भव है। इसलिए सदैव मीठा बोलना चाहिए।

मेघों जैसा दानशील होना चाहिए। मेघ पानी देते समय यह विचार नहीं करते कि यह छोटा है या बड़ा है। सबको समान रूप से जल देते हैं। उसी प्रकार उपकार करते समय किसी तरह का स्वार्थ मन में नहीं लाना चाहिए। बिजली चंचलता की द्योतक है। कोई किसी का भला करना चाहता है, परन्तु कोई-कोई व्यक्ति उसे अपना अहित समझता है। यह उसका दुर्भाग्य है जैसे बादल के जल से जवास हरा-भरा नहीं होता वरन् नष्ट हो जाता है। कवि भक्तिविहीन मनुष्य को जलहीन बादल के समान अनुपयोगी मानते हैं। मनुष्य को प्रकृति के उपकरण बादल द्वारा प्रभु-भक्ति का उपदेश देते हैं। मनुष्य का जीवन भक्ति के बिना शून्य है—

जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिअय गुन चतुराई ॥
भगतिहीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअं जैसा ॥[58]

जल बरस जाने पर जिस प्रकार मेघ किसी कार्य के नहीं रहते, उनका सारा सार समाप्त हो जाता है और उनका कोई उपयोग नहीं रह जाता, उसी प्रकार भक्तिविहीन जीवन निरर्थक है। कितनी सुन्दरता और सरलता से कवि ने बादल के माध्यम से भक्ति के महत्त्व को समझाया है।

पारसमणि

सबका भला चाहने वाले का स्वयं ही कल्याण हो जाता है। उसके लिए उपकारी व्यक्ति को विशेष प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं है—

कबहूँ कि दुःख सब हित कर ताकें। तेहि कि दरिद्र पारिसमणि जाकें।
परद्रोही का होहि निसंका। कामी पुनि कि रहहि अकलंका।[59]

सबका हित करने वाले को कभी दुःख नहीं मिलता। जिसके पास पारसमणि है वह दरिद्र नहीं रह सकता, पारसमणि लोहे को भी स्वर्ण में परिवर्तित कर देती है। सबका हित करने वाला पारसमणि के समान है। वह दूसरों के आनन्द में ही आनन्दित होता है। दूसरों की भलाई के कारण उसे कभी दुःख नहीं सताता क्योंकि सुकर्मी का प्रभाव पारसमणि के समान स्वयं के दुःख भी दूर कर देता है। इसलिए सबका भला करना चाहिए।

पर्वत

पर्वत सदैव से सहनशीलता और दृढ़ता के प्रतीक रहे हैं। अपने गौरवशाली प्रकृति-चित्रण में तुलसी विश्वकवि सिद्ध होते हैं। तुलसी ने गिरिकन्दराओं के भौतिक सौन्दर्य की अपेक्षा पर्वतों की सहनशीलता का वर्णन अधिक किया है—

बूँद आघात सहहिं गिरि कैसे। खल के वचन सन्त सह जैसे ॥[60]

वर्षा की बूँदों का आघात पर्वत उस प्रकार सह लेते हैं, जिस प्रकार सन्तजन दुष्टों के वचन सहते हैं। पर्वतों से सन्तजनों की तुलना करने से सन्तों की सहिष्णुता स्पष्ट हो जाती है।

मनुष्य वास्तव में सब जानता है कि वह क्या कर रहा है, परन्तु वह जानबूझकर अनजान बन जाता है, उसे सब बुराइयों का भली-भाँति पता होता है, लेकिन वह उनकी ओर ध्यान नहीं देता। इसी प्रकार वह अपने दोष धूल के कण के समान छोटे मानता है—

जानत हूँ निज पाप जलधि जिय जल-सीकर सम सुनत लरों।
रज सम पर अवगुण सुमेरु करि गुण गिरिसम रजते निदरों ॥[61]

मनुष्य दूसरों के भूल के कण के बराबर अवगुण को तो 'सुमेरु पर्वत' के समान और पर्वत के समान गुण को धूलि के समान समझता है। यहाँ पर्वत से विशालता और धूल से छोटेपन का बोध होता है। पर्वत के द्वारा गुण-अवगुण का व्याख्या सरल रूप में की है।

कवि कहता है कि राम-नाम ही मनुष्य का उद्धारक है—

राम-नाम रावरौ सयानो किधों बावरो
जो करत गिरि तें गरे तृन तें तमक को।[62]

राम के नाम में वह गुण है जो मनुष्य को पर्वत के समान पूजनीय बना देता है। पर्वत शक्ति, दृढ़ता और विशालता के द्योतक हैं। यह विशालता बाहरी नहीं अपितु हृदय की है। कवि प्रकृति को पग-पग पर मनुष्य का सहायक बना देते हैं जो उन्हें जीवन के दर्शन कराती है, उसे जीना सिखाती है और उसका मार्गदर्शन करती है कि जीवन का मूल्य क्या है और उसे कैसे जीना चाहिए। जीने का वास्तविक अर्थ हमें प्रकृति द्वारा ज्ञात होता है। पर्वत, नदी, सूर्य, चन्द्रमा, पशु-पक्षी सभी मनुष्य के शिक्षक हैं। जड़ पदार्थों के नियम मानव नियमों की अपेक्षा अधिक स्थिर और तत्त्व होते हैं।

पर्वत शक्तिशाली और दृढ़ प्रतिज्ञ होने का सन्देश देते हैं। सज्जन कटु वचनों से भी विचलित नहीं होते, जैसे कि पर्वत बहुत शालीनता से पानी की बूँदों को ग्रहण करते हैं और टूटकर बिखरते नहीं हैं। उन जैसा ही सहिष्णु मानव को बनना चाहिए।

वनस्पति जगत्

वर्षाकाल में हरी घास से ढकी हुई पृथ्वी, नवीन पल्लव और वृक्ष तथा पत्रविहीन आक और जवास के वृक्षों को तुलसी उपदेश का माध्यम बनाते हैं। प्रकृति के शोभन स्वरूप का उनकी दृष्टि में अधिक महत्त्व नहीं है। वरन् कवि प्रकृति के प्रत्येक व्यापार में उपदेश और ज्ञान की खोज करता है—

अर्क जवास पात बिन भयऊ। जस सुराज खल उद्यम गयऊ ॥
खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी। करइ क्रोध जिमि धरमहि दूरी ॥[63]

मंदार और जवास बिना पत्ते के हो गए, जैसे स्वराज्य में दुष्ट का व्यापार स्वयं समाप्त हो जाता है। खोजने पर भी कहीं धूल नहीं मिलती, जैसे कौन धर्म को दूर कर देता है। वर्षा ने धूलि बिलकुल समाप्त कर दी है। वर्षा में जवास का पौधा पत्रविहीन हो जाता है। बादलों के प्रसंग में 'दोहावली' में कवि ने इसका उदाहरण दिया है कि बादल सबको समान जल देते हैं और वृक्ष हरे भरे हो जाते हैं और जवास जल से 'जल' जाता है यह उसका दुर्भाग्य है यहाँ 'मानस' में उसका पत्रविहीन होना ही दुष्टों का नष्ट होता है। इस प्रकार एक ही पौधे की विभिन्न क्रियाओं द्वारा अलग-अलग उपदेश दिए गए हैं।

हरित भुमि तृन संकुल समुझि परहिं नहिं पंथ।
जिमि पाखण्ड बाद तें गुप्त होहिं सदग्रन्थ ॥[63]

पृथ्वी घास से परिपूर्ण होकर हरी हो गई है जिससे रास्ते समझ नहीं पड़ते, जैसे पाखण्ड मत के प्रचार से सद्ग्रन्थ लुप्त हो जाते हैं। सद्ग्रन्थों का उचित उपयोग उन्हें कल्याणकारी एवं अनुचित उपयोग उनको अकल्याणकारी बना देता है। फिर वे पाखण्ड-युक्त हो जाते हैं। वे होते तो मानव-कल्याण के लिए हैं परन्तु पाखण्ड का पर्दा पड़ने से उनका बताया मार्ग दिखाई नहीं देता, जिस प्रकार घास से ढका हुआ मार्ग।

इस प्रकार मानस में बहुत ही सुन्दर रूप से कवि अपनी वात का समर्थन प्रकृति द्वारा करता है।

महावृष्टि चलि फूटि किआरीं। जिमि सुतन्त्र भए बिगरहिं नारीं ॥[65]

भारी वर्षा से क्यारियाँ फूट चली हैं, जैसे स्वतन्त्र होने से स्त्रियाँ बिगड़ जाती हैं। कवि स्त्रियों के प्रति बहुत ही कोमल और सुरक्षात्मक भाव रखता है। वह बहुत अधिक स्वतन्त्रता देने के पक्ष में नहीं है, जैसे भारी वर्षा का पानी छोटी क्यारी में नहीं समा सकता और वह फूटकर बह निकलती है, उसी प्रकार बिना सुरक्षा के नारी पथभ्रष्ट हो जाती है।

राम-नाम के महत्त्व को प्रतिपादित करने के लिए कवि अनिष्टकारी पौधों के दुष्कर्म को हीन और लाभकारी पौधों की विशेषताएँ गुणकारी बताता है–

नाम जाको कामतरु देत फल चारि,
ताहि 'तुलसी' विहाइ के बबूर रेंड गोड़िये।[66]

राम-नाम कल्पवृक्ष के समान है, इसके बिना कौन बबूल एवं रेंड वृक्षों के कड़वे काँटेदार फलों का सेवन करना चाहेगा। रसीले एवं मीठे फल सबको अच्छे लगते हैं, कड़वे फल कोई नहीं खाना चाहता। इसी प्रकार अन्य बातों को छोड़कर प्रभु-भक्ति में लीन रहना चाहिए।

सुजन सुतरु बन ऊख सम, खल टंकिका रुखान।
परहित अनहित लागि सब सांसति सहज समान ॥[67]

सज्जन पुरुष कपास और ऊख के पौधे के समान और दुर्जन टाँकी और रुखानी के समान होते हैं। मनुष्य को चोरी करने के लिए भी और किसी निर्माण कार्य के लिए परिश्रम करना पड़ता है। एक से मानव को दुःख होता है और एक से मानव-जाति का विकास होता है। जब कपास या ऊख को छीलते हैं तो भी परिश्रम करना पड़ता है, लेकिन वह परिश्रम लाभकारी है पर टोंकना से सबको घाव हो जाता है। वह स्वयं टूटकर अन्दर पीड़ा सहता हुआ मनुष्य को भी पीड़ित करता है। इसलिए कपास और ऊख के समान अच्छे कार्यों में शक्ति लगानी चाहिए।

फूलइ फरइ न बेंत, जदपि सुधा बरषहिं जलद।
मूरुख हृदय न चेत, जौं गुरु मिलहिं बिरंचि सम ॥[68]

बादल जल बरसाते हैं, लेकिन बेंत फलता-फूलता नहीं, इसी प्रकार ज्ञानी गुरु के मिलने से भी मूर्ख के हृदय में ज्ञान नहीं होता। मूर्ख को दिया गया ज्ञान व्यर्थ है, जैसे कि बादल के पानी से बेंत फूलता नहीं अपितु नष्ट हो जाता है। मूर्खता को ठीक प्रकार व्यक्त करने के लिए कवि ने बेंत का उदाहरण दिया है। उसी प्रकार दोहावली और विनयपत्रिका में जवास का उदाहरण है, यह भी पानी बरसने से नष्ट हो जाता है।

नीच निचाई नहिं तजइ, सज्जनहू के संग।
तुलसी चन्दन बिटप बसि, बिनु विष भए न भुअंग ॥[69]

चन्दन के वृक्षों में निवास करके भी साँप विषरहित नहीं हुए। जहाँ बुराई बहुत गहरी अन्दर बैठी हो, वहाँ लाख प्रयत्न पर भी वह नहीं जाती, जैसे चन्दन के वृक्ष में निवास करके सर्प विष को नहीं छोड़ पाता, उसकी गन्ध ग्रहण नहीं कर पाता और विषपूरित ही रहता है।

नीच निरादहीं सुखद, आदर सुखद बिसाल।
कदरी बदरी बिटप गति, पेखहु पनस रसाल ॥[70]

नीच निरादर करने से और बड़े लोग आदर करने से सुखदायी होते हैं इस बात को समझाने के लिए कवि केले, बेर और कटहल एवं आम के पेड़ों की स्थिति बताते हैं। केला, बेर, काटे जाने पर अधिक फल देते हैं परन्तु कटहल और आम सींचने पर और सेवा करने पर फल देते हैं। आम और कटहल के वृक्ष के समान गौरवशाली होना चाहिए। इस प्रकार पेड़-पौधे जो कि जड़ पदार्थ हैं, जिनमें सोचने-समझने की शक्ति नहीं है, वे भी मानव के शिक्षक हैं। उनसे भी मानव को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए और सद्आचरण अपनाना चाहिए।

बबूल और अहोरे के पेड़ को निकृष्ट जाति का माना जाता है। ये बुरी प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं। बुराई को प्रदर्शित करने के लिए कवि इनका दृष्टान्त अपनी रचनाओं में देता है—

बबुर बहोरे को जनाय जाग लायत,
रुधिरे को सोइ सुरतरु काटियतु है।[71]

बबूल के पेड़ों को लगाने के लिए लोग सुरतरु कल्पवृक्ष को काट डालते हैं। उनकी कुटिल बुद्धि पर कवि को दया आती है। वास्तव में कवि बबूल और बहेड़ के पेड़ों द्वारा यह व्यक्त करना चाहता है कि आजकल लोग बुराई को जल्दी ग्रहण करते हैं और उसे अपनाने के लिए अच्छाई तक का विनाश कर देते हैं।

अपनी सामर्थ्य के अनुसार दान देना चाहिए और उसके लिए गर्वित नहीं होना चाहिए, जैसे बड़ का वृक्ष करता है—

तुलसी भल वरतरु बढ़त, निज मूलहि अनुकूल।
सबहि भाँति कब तहं सुखद, दलनि फलनि बिनु फूल ॥[72]

बड़ का वृक्ष उत्तम है जो जड़ के अनुसार बढ़ता है और बिना फूले अपने पत्तों और फलों द्वारा सबको सुख देता है। दान देकर गर्वित नहीं होना चाहिए।

कभी-कभी सज्जन भी क्रोधित हो जाते हैं। इसलिए बहुत अधिक उन्हें भी मानसिक या शारीरिक कष्ट नहीं देना चाहिए। इस बात को समझाने के लिए कवि ने प्रकृति से एक सुदर उदाहरण लिया है—

सुनु प्रभु बहुत अवग्या किएँ। उपज क्रोध ग्यानिन्ह के हिएँ ॥
अति संघरषन जौं कर कोई। अनल प्रगट चन्दन ते होई ॥[73]

काकभुशुण्डि जब अपने शाप की कथा सुनाते हैं, तो कहते हैं कि बहुत अपमान करने पर ज्ञानी के मन में क्रोध आ जाता है। यदि कोई चन्दन की लकड़ी को बहुत रगड़े तो उससे भी अग्नि प्रकट हो जाती है। इसलिए कभी किसी को तंग नहीं करना चाहिए। जो चन्दन शीतल कहलाता है, अग्नि की जलन को दूर करता है, वह भी कभी-कभी अग्नि रूप हो जाता है।

'मानस' में कवि ने प्रकृति के माध्यम से दर्शन की बात भी सुचारु रूप से समझा दी है। वर्षा ऋतु में मार्ग घास-फूस से ढक जाता है तो बाहर से देखने पर प्रतीत होता है कि वहाँ कुछ नहीं, केवल घास का ढेर है, परन्तु उसके नीचे आच्छन्न मार्ग होता है। इसी प्रकार जीव प्रायः माया को सत्य मान लेता है और भक्ति-मार्ग से विमुख हो जाता है, उसको ब्रह्म का अनुभव नहीं होता।

'कवितावली' ओर 'दोहावली' दोनों रचनाओं में बबूल, रेंड़ और बेंत के वृक्षों का वर्णन मनुष्य की अधम वृत्तियों को प्रदर्शित करने के लिए किया गया है। किसी को भी बबूल और रेंड़ के वृक्षों के फल अच्छे नहीं लगते। इस प्रकार अच्छाई सबको अच्छी लगती है और बुराई बुरी होती है। वर्षा से बेंत का वृक्ष नष्ट हो जाता है और इसी प्रकार जवास का वृक्ष भी वर्षा में बिलकुल समाप्त हो जाता है। यह इन वृक्षों का दुर्भाग्य है कि ये अच्छाई को अच्छाई के रूप में ग्रहण न करके बुरे रूप में ग्रहण करते हैं।

इसी प्रकार कवि चन्दन के वृक्ष का उदाहरण देता है। कभी-कभी बुराई इतनी भीतर चली जाती है कि सत्संगति का भी कोई प्रभाव नहीं होता जैसे चन्दन के वृक्ष पर रहने वाला सर्प अपना विष नहीं छोड़ता, वह विषयुक्त ही रहता है। चन्दन का वृक्ष सबको शीतल करता है, परन्तु उसमें अग्नि भी विद्यमान रहती है, इसलिए सज्जनों को अधिक तंग नहीं करना चाहिए। केले के पेड़ के भीतर गूदा होता है, कोई सार नहीं होता। वह काटने पर बढ़ता है। वैसे ही नीच निरादर करने से प्रसन्न होते हैं।

कवि प्रकृति के प्रत्येक क्रियाकलाप से शिक्षा ग्रहण करता है। पशु-पक्षियों की क्रियाओं द्वारा कवि नैतिक विचारों की पुष्टि करता है।

नदी

तुलसीदास ने सन्तों का नाम बहुत आदर से लिया है। वर्षा में नदियों का जल ऐसे निर्मल हो जाता है जैसे कि सन्तों के हृदय से अन्धकार दूर हो जाता है—

फूले कास सकल महि छाई। जनु बरषा कृत प्रगट बुढ़ाई ॥
सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा ॥[74]

वर्षा ऋतु के बीतने पर सफेद पुष्प चारों ओर दीखने लगे हैं जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि वर्षा ऋतु की वृद्धावस्था आ गई है। सन्तों का हृदय अत्यन्त निर्मल होता है। उनकी निर्मलता को प्रदर्शित करने के लिए कवि ने नदियों के जल का उपमान दिया है जल से स्वच्छ और पारदर्शी कुछ नहीं होता और शरद का जल अत्यन्त निर्मल होता है।

छुद्र नदी भरी चलीं तोराई। जस थोरेहुँ धन खल इतराई ॥
भूमि परत भा ढाबर पानी। जनु जीवहि माया लपटानी ॥[75]

तुलसी का उपदेशात्मक प्रकृति-चित्रण ऐसा है कि प्राकृतिक घटनाएँ मूर्त हो जाती हैं और सामने चित्र सा खिंच जाता है, जिससे बात समझने में बहुत सुविधा होती है। छोटी-छोटी नदियाँ किनारों को तुड़ाती हुई चलीं जैसे थोड़े धन से दुष्ट इतरा आते हैं। छोटी-छोटी नदियों का सीमा तोड़ना और दुष्टों का मानवता की सीमा लाँघना एक ही है।

रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी ॥
जल संकोच विकल भहूँ मीना। अबुध कुटुम्बी जिमि धनहीना ॥[76]

समस्त प्रकृति उनकी उपदेशिका है। कवि को सरोवर ममता-विहीन ज्ञानी प्रतीत होते हैं। जल के कम हो जाने से व्यग्र हुई मछली धनाभाव से व्याकुल भूखे मनुष्यों के समान ज्ञात होती है। प्रकृति के प्रत्येक तत्त्व से कवि अच्छाई ग्रहण करने का प्रयत्न करता है। प्राकृतिक नियम सर्वथा शुद्ध, पवित्र और ग्राह्य होते हैं। तुलसी ने बार-बार प्रकृति का आश्रय लेकर राम-भक्ति का सन्देश दिया है, उसकी महत्ता प्रतिपादित किया है। तुलसी भक्ति के गुणों का वर्णन करते हैं–

आरति बिनय दीनता मोरी। लघुता ललित सुबारि न थोरी ॥
अद्भुत सलिल सुनत गुनकारी। आस पिआस मनोमल हारी ॥[77]

वे कहते हैं कि भक्ति का जल बहुत अनोखा है जो सुनने से ही गुण प्रदान करता है और आशा रूपी प्यास को और मन के मैल को दूर कर देता है।

जड़ पदार्थों पर संगति का इतना प्रभाव पड़ता है तो मानव जो कि संवेदनशील है, उस पर कितना प्रभाव पड़ेगा–

राम-कृपा तुलसी सुलभ, गंग सुसंग समान।
जो जल परै जो जन मिलै, कीजै आपु समान ॥[78]

गंगा और सत्संगति दोनों समान हैं। गंगा में कैसा भी जल पड़े और सत्संगति में कैसा भी दुर्जन जाय, उसको ये दोनों ही अपने समान पवित्र बना देती हैं। जल में जल इस प्रकार मिल जाता है कि दो प्रकार के जलों को अलग करना कठिन होता है। जल की प्रकृति दूसरे जल को अपने में आत्मसात कर लेने की होती है। इसलिए जब गंगाजल में अन्य जल प्रविष्ट हो जाते हैं तो वह पवित्र जल का रूप धारण कर लेते

हैं। इसी प्रकार सत्संगति में ज्ञात ही नहीं होता कि कब दुर्गुण पीछे रह जाते हैं और सद्वृत्तियाँ अपना अधिकार कर लेती हैं।

ईस सीस बिलसत बिमल, तुलसी तरल तरंग।
स्वान सरावग के कहें, लघुता लहै न गंग ॥[79]

दुष्टों के वचनों का कोई मूल्य नहीं होता और सज्जनों की महानता अमूल्य होती है, जैसे कुत्ते और सरावगी यदि गंगा की निन्दा करें तो गंगा की पवित्रता नष्ट नहीं होती। उसकी पवित्रता शाश्वत है। महानता कर्म से होती है, उसे प्रामाणित नहीं करना पड़ता जैसे गंगा को किसी की स्तुति की आवश्यकता नहीं है।

तुलसी ने काल को बहुत अधिक महत्त्व दिया है। एक कार्य को अवसर पर किया जाय तो लाभकारी सिद्ध होता है और वही कार्य यदि असमय में किया जाय तो हानिकारक हो जाता है। समय बहुत बलवान है, उचित समय की प्रतीक्षा करनी चाहिए—

तुलसी तीरहु के चलें, समय पाइबी थाह।
थाइ न जाइ थहानइबी, सर सरिता अवगाह ॥[80]

नदी के किनारे-किनारे चलने से ही समय पर उनकी थाह मिल जाती है। अगाध तालाब या नदियों की थाह लेने के लिए दौड़कर उनके अन्दर घुस नहीं जाना चाहिए। समय की प्रतीक्षा करके उचित अवसर पर किया गया कार्य ही फलदायक होता है।

समुद्र

सन्तों की तुलना शान्ति के अथाह सागर से की गई है—

तुलसी सुखद सांति को सागर। सन्तन गायो करन उजागर ॥
तामे तन मन रहे समोई। अहं अगिनि नहिं दाहें कोई ॥[81]

सन्त सुखदायक, शान्ति के समुद्र ओर ज्ञान का प्रकाश करने वाले होते हैं। समुद्र अनन्त और अपार होता है। इसी प्रकार सन्तों में भी अतुलनीय शान्ति होती है। सन्तों की विशेषता को प्रदर्शित करने के लिए कवि असीम समुद्र से उनकी तुलना करता है।

सन्त एकदम जाने जाते हैं और दुष्ट की परीक्षा कुछ दिन पास रहकर करनी पड़ती है—

बिरुचि परखिये सुजन जन, राखि परखिये मन्द।
बड़वानल सोषत उदधि, हरष बढ़ावत चन्द ॥[82]

बड़वानल समुद्र में बहुत दिन रहने के बाद भी समुद्र के जल को सोखता है। चन्द्रमा से समुद्र में ज्वार भाटा जाता है। बड़वानल समुद्र में पाई जाती है। वह पानी के बीच रहती है, परन्तु उसका पता नहीं चल पाता। पानी में इतने दिन रहने के बाद

भी अपनी प्रकृति नहीं छोड़ती और अपने आश्रयदाता की ही हानि करती है। चन्द्रमा समुद्र से इतनी दूर है, उससे कुछ प्राप्त नहीं करता, फिर भी अपने दर्शन से ही समुद्र के हर्ष में वृद्धि करता है।

कमल

कमल तुलसी को विशेष प्रिय है। कवि उसके सौन्दर्य और कोमलता से ही प्रभावित नहीं है अपितु उससे शिक्षा भी ग्रहण करता है—

आपन छोड़ो साथ जब, ता दिन हितू न कोइ।
तुलसी अम्बुज अम्बु बिनु, तरनि तासु रिपु होइ ॥[83]

बुरे समय में अपने भी साथ छोड़ देते हैं, इस बात को समझाने के लिए कमल का दृष्टान्त देते हैं। कमल सूर्य को देखते ही खिल जाता है, लेकिन जब जल सूख जाता है तब वही मित्र सूर्य कमल को जला डालता है, उसकी हानि कर देता है।

सुमिरे त्रिविध धाम हरत पूरत काम सबल सुकृत सरसिज को सर है।[84]

कवि कमल के बाह्य सौन्दर्य से प्रभावित नहीं वरन् उसमें वह आध्यात्मिक सौन्दर्य भी प्राप्त कर लेता है। जिस प्रकार तालाब की शोभा कमलों से होती है, उसी प्रकार जीवन का सौन्दर्य भक्ति है। बार-बार कवि प्रकृति से दृष्टान्त लेकर भक्ति का उपदेश देता है।

मनुष्य को ईश्वर से एकनिष्ठ प्रेम करना चाहिए—

ऐसे तो सोचहिं न्याय निठुर-नायक-रत,
सलभ, खग, कुरंग, कमल, मीन।[85]

प्रेम की एकनिष्ठता को प्रदर्शित करने के लिए कवि शलभ, कमल, मछली, हिरण और कमल का दृष्टान्त देता है। इनका प्रेम एकनिष्ठ होता है, उसी नियम को मनुष्य को भी अपनाना चाहिए।

कवि कमल का जैसा दृष्टान्त 'मानस' में देता है, वैसा ही दोहावली में भी विद्यमान है। बार-बार कहने से बात हृदय के भीतर स्थापित हो जाती है और मानव उसे ग्रहण कर लेता है।

आपन छोड़ो साथ जब ता दिन हितू न कोइ।
तुलसी अम्बुज अम्बु बिनु तरनि तासु रिपु होइ ॥[86]

सूर्य कमल का मित्र है। जब जल कमल का साथ छोड़ देता है तो सूर्य भी कमल का वैरी बनकर उसे जला डालता है। जल ही कमल का जीवन है और सूर्य उसकी प्रसन्नता है। यही दशा मनुष्य की भी होती है।

तुलसी मानवीय सद्गुणों के समर्थक थे। इनका चित्रण उन्होंने प्रकृति के माध्यम से किया है। सत्य, अहिंसा, परोपकार, सेवा आदि गुण ही मानव को ऊँचा

उठाते हैं। इन गुणों की प्रकृति के माध्यम से चर्चा करके उन्होंने उनके महत्त्व को प्रतिपादित किया है।

उनके अनुसार राम ही सर्वोच्च हैं। राम के महत्त्व को प्रतिपादित करने के लिए वे मछली, कमल, हरिण, चातक के प्रेम का उदाहरण देते हैं। ये जिस प्रकार अपने प्रिय से वियुक्त नहीं रह सकते, उसी प्रकार ईश्वर-प्रेम में लिप्त रहना चाहिए और एकनिष्ठ प्रेम करना चाहिए। मनुष्य को प्राकृतिक तत्त्वों के माध्यम से अपनी बात समझाते हैं। गुणों का वे आदर करते हैं जैसे गौ काली होने पर भी उज्ज्वल दूध देता है। बाह्य रूप को कवि ने अधिक महत्त्व नहीं दिया है। सज्जन अपना भला नहीं चाहते, औरों का भला चाहते हैं। जैसे सूर्य थोड़े से अर्घ्य से प्रसन्न होता है, जबकि जगत् को जल देने में उसका प्रमुख योगदान है। इस प्रकार सात्विक गुणों को उन्होंने प्रकृति के माध्यम से काव्य में स्थापित किया है।

संगति के प्रभाव को उन्होंने अतीव प्रबल माना है। दुर्गन्ध-युक्त और सुगन्ध-युक्त वस्तुओं के संसर्ग से आयु भी वैसी ही हो जाती है। कवि की कल्पना-शक्ति और कथन का माध्यम इतना सशक्त है कि उनके तर्कों को पाठक मानने पर विवश हो जाता है। दुष्टों की उन्होंने निन्दा की है। कौए, बगुले, बहेर, बबूल आदि बुरी प्रवृत्तियों के द्योतक हैं। बड़ का वृक्ष उपकार करता है, दिखावा नहीं करता। अहंकार को अग्नि के समान जलाने वाला माना गया है। इसलिए इससे बचने का उपदेश दिया गया है। संसार में कोई छोटा-बड़ा नहीं है। हाथी पानी में बह जाता है और मछली को कुछ नहीं होता। इस प्रकार सब किसी-न-किसी कार्य में निपुण होते हैं, किसी को भी छोटा नहीं मानना चाहिए।

'विनयपत्रिका' में कवि ने दर्शन को अधिक महत्त्व दिया है। 'गीतावली' में प्रकृति के उपदेशात्मक रूप पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। कवि ने वहाँ प्रेम और पूर्ण समर्पण को एकनिष्ठ प्रेमी मछली, हिरण आदि के माध्यम से व्यक्त किया है।

'दोहावली' तो नीति और ज्ञान की पुस्तिका है। मानव-जीवन के जितने भी नैतिक मूल्य हो सकते हैं, उनका विवरण इस पुस्तिका में कवि ने किया है। इन वर्णनों में प्रकृति ही प्रमुख पात्र है। मेघों की दानप्रवृत्ति, समुद्र की विशालता, कपास और ऊख का मानव-कल्याण करना, गंगा का अन्य जल को भी पवित्र करना, इन सबके द्वारा कवि ने मनुष्य को आचरण के सम्बन्ध में उपदेश दिए हैं।

तुलसीदास के उपदेश एवं तत्त्वदर्शन से युक्त प्रकृति-चित्रण का श्रेय व्यापक रूप से श्रीमद्भागवत को जाता है। उनका उपदेशात्मक प्रकृति चित्रण साहित्यिक तो है ही, जगत्-प्रवाह को सुदिशा की ओर मोड़ने वाला भी है। तत्त्वों से अभिनिविष्ट प्रकृति-चित्रण में 'मानस' के किष्किन्धाकाण्ड में, गोदावरी के उपकूल पर राम अपने अनुज से ज्ञान, वैराग्य, माया एवं भक्ति की चर्चा करते हैं। पम्पा सरोवर के निकट

आकर कवि ने सरिता-सरोवर के स्वतन्त्र रूप-रंग का एवं उसकी परिपार्श्वता में मधुर स्वप्नलोक की भाँति विराजमान प्रकृति के जीवन-विलास का अवलोकन नहीं के बराबर किया है। उस वर्णन को उपदेश-बहुल बनाया है। तथ्योन्मुखी प्रकृति चित्रण की झलक सुन्दर रूप में दिखाई देती है। शुभ्र स्फटिक शिला पर बैठे हुए राम के मुख से नीति और उपदेश को प्रकृति को प्रकृति के माध्यम से कवि ने व्यक्त किया है।

पवित्र आध्यात्मिक भावों को जगा सकने के साथ ही अपने ज्ञानमय स्वरूप के माध्यम से मानव को उचित मार्ग का निर्देश कर सकने में हमारी धात्री प्रकृति का कितना अधिक योगदान हो सकता है, इसकी ओर भक्तिकाल के कवियों का ध्यान गया है। स्पष्ट तथा व्यापक रूप में तो इस चेष्टा में हिन्दी साहित्य के स्वर्ण युग की एक झलक ही दिखाई देती है। प्रकृति के मानव-मार्गदर्शक रूप का चित्रण करके गोस्वामी तुलसीदास पाठक को वैदिक युग की अनुभूति के साथ जोड़ देते हैं, साथ ही उसके मन को कुप्रवृत्तियों से हटाकर सन्मार्ग की और प्रवृत्त भी करते हैं। प्रकृति के उपदेशात्मक रूप-चित्रण में गोस्वामी अनन्य एवं असाधारण हैं।

सन्दर्भ

1. भागवत, दशम स्कन्ध, अध्याय 20, श्लोक 15
2. वही, श्लोक 16
3. रामचरितमानस, 4/11 छन्द
4. वही, 1/47/4
5. विनयपत्रिका, 140/3
6. गीतावली, 2/74/4
7. वही, 5/40/3
8. दोहावली, 333
9. वही, 345
10. वही, 347
11. विनयपत्रिका, 149/4
12. वही, 222/2
13. वही, 229/3
14. वही, 244/2, 3
15. दोहावली, 196
16. वही, 343
17. वही, 400
18. वही, 412
19. कवितावली, 7/103/1
20. दोहावली, 243
21. वही, 332
22. दोहावली, 370
23. वही, 381
24. वही, 404
25. वही, 436
26. वही, 535
27. वही, 538
28. वैराग्य संदीपनी, 39
29. कवितावली, 5/73/1
30. गीतावली, 5/7/4
31. रामचरितमानस, 1/267/1
32. वही, 6/23/3
33. वही, 6/29/1
34. वही, 6/61/5
35. वही, 1/256/4
36. वही, 7/121/11
37. दोहावली, 455
38. वही, 397

39. वही, 322
40. वही, 386
41. वही, 344
42. रामचरितमानस, 4/16/3, 4
43. विनयपत्रिका, 264/3
44. कृष्ण गीतावली, 58/2
45. वैराग्य संदीपनी, 53
46. वही, 54
47. दोहावली, 368
48. वही, 275
49. वही, 505
50. वही, 352
51. वही, 533
52. रामचरितमानस, 4/14/1, 2
53. वही, 4/15/1, 2
54. दोहावली, 377
55. वही, 378
56. वही, 346
57. वही, 402
58. रामचरितमानस, 2/34/4
59. वही, 1/111/1
60. वही, 4/14/2
61. विनयपत्रिका, 149/4
62. कवितावली, 7/73/1
63. रामचरितमानस, 4/15/1
64. वही, 4/15/1
65. वही, 4/14
66. कवितावली, 25/2
67. दोहावली, 342
68. वही, 484
69. वही, 337
70. वही, 352
71. कवितावली, 99/1
72. दोहावली, 529
73. रामचरितमानस, 7/111/8
74. रामचरितमानस, 4/16/1, 3
75. वही, 4/14/3
76. वही, 4/16/3, 4
77. वही, 1/43/1
78. दोहावली, 363
79. वही, 383
80. वही, 449
81. वैराग्य संदीपनी, 52
82. दोहावली, 374
83. दोहावली, 534
84. गीतावली, 5/8/1
85. विनयपत्रिका, 255/1
86. दोहावली, 534

5

तुलसी-काव्य में प्रकृति का आलंकारिक रूप

तुलसी ने अपने ग्रन्थों में प्रकृति का आलंकारिक रूप में वर्णन किया है। प्रकृति उन्हें सहज प्रेरणा देती है, सप्रयास वर्णन उन्होंने कहीं नहीं किया। तुलसी का अलंकृत प्रकृति-चित्रण भाव-संपृक्त ही नहीं, भावानुशासित भी है। सौन्दर्य के प्रति आकर्षण मनुष्य के स्वभाव में हैं। इसीलिए भाव-सौन्दर्य के साथ-साथ तुलसी का अलंकृत प्रकृति-चित्रण भी अद्वितीय है। उनके वर्णन में प्रायः भाव आन्तरिक सौन्दर्य और अलंकार बाह्य सौन्दर्य को चित्रित करते हैं।

पशु-पक्षी वर्णन

श्लेष अलंकार काव्य के बाह्य पक्ष को अलंकृत करने के साथ-साथ वर्णित भाव को प्रभावशाली बनाने में भी कुछ अंशों में सहायक होता है। यह चमत्कारप्राण अलंकार है। तुलसी ने इसका प्रयोग अत्यन्त सीमित रूप में किया है। इसीलिए कहीं-कहीं इसका प्रयोग तुलसी ने प्रसंगवश किया है। तुलसी-साहित्य में श्लेष का प्रयोग अनायास ही हो गया है। मोर पक्षी के सन्दर्भ में सुन्दर श्लेष अलंकार का नियोजन देखिए—

तनु बिचित्र, कायर बचन, अहि अहार, मन घोर।
तुलसी हरि भए पच्छधर, ताते कह सब मोर॥[1]

इस दोहे में 'पच्छधर' और 'मोर' शब्द श्लिष्ट है। 'पच्छधर' शब्द के दो अर्थ हैं—पक्ष करने वाला तथा पंख धारण करने वाला। इसी प्रकार मोर शब्द के भी दो अर्थ हैं, 'मोर पक्षी' और 'मेरा' हरि। सुन्दर शरीर वाले, कायर-कोमल वाणी वाले तथा सर्प का आहार करने वाले पक्षी को सब 'मोर' कहते हैं। यहाँ मोर पक्षी का आश्रय लेकर श्लेष अलंकार का सुन्दर चित्रण है। यह चमत्कार एक पक्षी के नाम के कारण ही सम्भव हो सका है।

उपमा का सौन्दर्य प्रकृति से अनुप्राणित और चित्ताकर्षक है। तुलसीदास की सारी रचनाएँ एक से एक अनूठी उपमाओं से ठसाठस भरी हैं। उपमा न केवल एक व्यापक अलंकार है, किन्तु वर्ण्य विषय की हृदयंगम करा देने का एक उत्तम साधन भी है, उसी तरह जैसे वीचि-विलास जल का प्रत्यक्ष दर्शन करा देता है। तुलसी-साहित्य

में उपमा राम के यश रूपी सलिल में व्याप्त वीचि-विलास के समान है।

तुलसी साहित्य में रूप, दृश्य, गुण, स्वभाव, कार्यव्यापार, घटना, प्रकृति-चित्रण, भावनाओं के चित्रण तथा सौन्दर्यानुभूति आदि में उपमा की योजना सर्वत्र की गई है। उनकी योजना पर उपमाओं को दृष्टि में रखते हुए यदि विचार किया जाय तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि अधिकांश में सौन्दर्य या दृश्य-चित्रण को प्रकृति के माध्यम से चित्रित करने के लिए इनका व्यवहार हुआ है।

सादृश्यमूलक अलंकारों में सर्वप्रथम उपमा का स्थान है। इसके अनन्तर रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकार का भी तुलसी ने प्रकृति के माध्यम से प्रयोग किया है।

उनके काव्य में योजित अलंकारों में रूपक का स्थान सर्वोपरि माना जाता है। रूपक तुलसी की अलंकार-योजना का प्राण है। भाव, गुण, क्रिया, प्रकृति, स्वरूप एवं स्वभाव सभी प्रकार के वर्णनों में तुलसी ने रूपक को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। वर्णन को सजीव एवं प्रभावशाली बनाने के लिए उन्होंने सांगरूपक का आश्रय लिया है।

वर्णन में कल्पना का अंश सर्वाधिक होता है। 'उत्प्रेक्षा' में भी कल्पना का सर्वाधिक योग है, जो प्रस्तुत के अनुरूप सम्भावना या कल्पना करने में सहायक होता है। तुलसी में उत्प्रेक्षाओं की बहुलता उनकी विदग्धता का प्राण है। 'उत्प्रेक्षा' के सान्निध्य में कवि की प्राकृतिक भावुकता एवं सहृदयता का परिचय प्राप्त होता है। इन तीनों अलंकारों का प्रकृति के माध्यम से कवि ने अपने काव्य में सर्वाधिक प्रयोग किया है। रूप या दृश्य चित्रण में उपमा की योजना से तुलसी को अत्यधिक सफलता मिली है। भागते हुए रीछों के 'भागने की क्रिया' उपमा द्वारा साकार की है—

भागे भालु बलीमुख जूथा। बृकु विलोकि जिमि मेष बरुथा ॥
चले भागि कपि-भालु भवानी। विकल पुकारत आरत बानी ॥[2]

वानर और भालुओं के भेड़ों के समान भागने की उपमा द्वारा उनके मतिभ्रम का साकार चित्र बन गया है। कुम्भकर्ण के डर से वानर, भेड़ों के समान जिधर एक गया, उधर ही सारे जाने लगे। भय का अधिक भयानक रूप दिखाने के लिए प्रकृति से सटीक उपमा तुलसी ने ली है। प्रकृति में पशुओं और पेड़-पौधों के आचरण से मनुष्य स्वभाव की ये तुलना करते हैं और उसके अनुसार उपमा द्वारा अपनी बात कहते हैं। इसी प्रकार हाथियों के झुण्ड कवि को वर्षा ऋतु के मेघ के समान लगते हैं—

चले मत्त गज जूथ घनेरे। प्राबिट जलद मरुत जनु प्रेरे ॥
बरन बरन बिरदैत निकाया। समर सूर जानहिं बहु माया ॥[3]

मतवाले हाथी ऐसे लग रहे थे मानो वर्षा ऋतु के बादलों का समूह हो। यहाँ उत्प्रेक्षा द्वारा कवि ने हाथियों की विशालता और बहुलता को साकार किया है। आकाश असीम अनन्त है, उसमें विचरण करने वाले बादल भी गणना से परे हैं। इसी

प्रकार राक्षसों की सेना के हाथी भी अनन्त थे।

अरुन नयन भृकुटी कुटिल चितवत नृपन्ह सकोप।
मनहुँ मत्त गजगन निरखि सिंघकिसोरहि चोप ॥[4]

परशुराम क्रोध से राजाओं को ऐसे देखने लगे मानो मतवाले हाथियों के झुण्ड को देखकर सिंह के बच्चे को जोश आ जाता है। यहाँ पर उत्प्रेक्षा द्वारा परशुराम का क्रोध और उसकी सहजता दोनों ही प्रकट हो गए हैं।

रावण सिर सरोज बनचारी। चलि रघुबीर सिलीमुख धारी ॥[5]

इस अर्द्धाली में 'सिलीमुख' शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है, बाण और भ्रमर। जैसे भ्रमर (सिलीमुख) कमल वन में जाकर कमलों के भीतर प्रविष्ट हो जाता है, उसी प्रकार राम के बाण 'सिलीमुख' रावण के सिर में प्रविष्ट हो जाते हैं। 'सिलीमुख' शब्द श्लिष्ट है, जिसका एक अर्थ है बाण और एक प्रकृति में स्वच्छन्द विचरण करने वाला भ्रमर। भ्रमर जिस सरलता से कमल वन में प्रवेश कर जाता है, उतनी ही सहजता से राम के बाण रावण के सिर में प्रवेश करते हैं। कार्य को सुगम और प्रभावशाली बनाने के लिए कवि ने कमलवन में अनायास प्रवेश करने वाले भ्रमर के माध्यम से युद्ध का सुन्दर चित्रण किया है। इस कथन में चमत्कार एवं सौन्दर्य भ्रमर और कमलवन के कारण उत्पन्न हुआ है।

तुलसी साहित्य में स्थल-स्थल पर उपमा की मनोरम छटा देखने को मिलती है। उनके साहित्य में कोई छन्द भले ही उपमा के बिना मिल जाय, परन्तु शायद ही कोई पृष्ठ ऐसा मिले जहाँ किसी-न-किसी सुन्दर उपमा का प्रयोग न हुआ हो। उपमाएँ साधारण नहीं, अमूल्य रत्नराशि हैं। इनमें प्रकृति का भरपूर उपयोग कवि ने किया है। प्रकृति वास्तव में तुलसी के अलंकारों की प्राण है। इसके बिना तुलसी के उपमा अलंकार की कल्पना नहीं की जा सकती। पग-पग पर अपने कथन को पुष्ट और सहज बनाने के लिए कवि ने प्रकृति का आश्रय लिया है। तुलसी की सभी उपमाएँ स्वाभाविक हैं। उनमें सादृश्यगत और साधर्म्यगत औचित्य का पूरा निर्वाह है। तुलसी की उपमाओं में रमणीयता, बोधगम्यता और प्रभविष्णुता का समावेश है।

'दोहावली' में भेड़ के उदाहरण द्वारा मानव को प्रबुद्ध करने का प्रयत्न कवि ने किया है–

तुलसी भेड़ी की धँसनि जड़ जनता सनमान।[6]

मूर्ख जनता भेड़ धसान के समान सम्मान करती है। जहाँ एक व्यक्ति बड़ाई करता है, उसी की सब बड़ाई करते हैं। यह नहीं देखते कि वह इस योग्य भी है कि नहीं। उसी प्रकार जिधर एक भेड़ चली जाती है, उसी ओर सब भेड़ें चलने लगती हैं। कुमार्ग या बाधा का विचार नहीं करतीं। भेड़ों की सामान्य प्रवृत्ति को उपमा द्वारा बताकर मानव को सचेत किया गया है।

भावनाओं के चित्रण में उपमा की योजना तुलसी के काव्य में प्रकृति की सहायता से अत्यन्त मार्मिक रूप में हुई है। भावानुभूति को हृदयंगम बनाने में उनकी उपमाएँ पूर्ण समर्थ हैं। भावों की सूक्ष्म अनुभूति तो तुलसी ने प्रकृति से ग्रहण की है। वर्णित भाव से सादृश्य रखती हुई उपमा योजना करने में तुलसी दक्ष थे। "जैसी असरदार उपमाएँ लिखने में गोस्वामी जी समर्थ हुए हैं, वैसी अन्यान्य साहित्य के ग्रन्थों में भी दुर्लभ हैं। उनके ग्रन्थों की कुँजी उपमा ही है।"[7]

अपनी उपमाओं के चित्रण में तुलसी प्राकृतिक उपकरणों का भरपूर प्रयोग करते थे। इस प्रकार के चित्रण में उनकी सफलता का श्रेय बहुत कुछ प्रकृतिजन्य उपमा योजना को है। असन्तों के स्वभाव का चित्रण गाय के माध्यम से बहुत ही सुन्दर रूप में किया गया है—

सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ। भूलेहुँ संगति करिअ न काऊ।
तिन्ह कर संग सदा दुखदाई। जिनि कपिलहि घालइ हरहाई ॥[8]

तुलसी का उद्देश्य केवल अलंकार-चित्रण ही नहीं था, अपितु प्रकृति के माध्यम से लोक-कल्याण की भावना का विस्तार भी करना था। जिनका संग दुःखदायी होता है उनकी संगति भूलकर भी नहीं करनी चाहिए, जैसे बुरी जाति की गाय सीधी गाय को भी अपने संग से नष्ट कर डालती है। इस प्रसंग में एक पशु की उपमा द्वारा सन्तों और असन्तों में भेद को प्रदर्शित किया गया है।

भरत सरिस प्रिय को जग माहीं। इहइ सगुन फलु दूसर नाहीं।
रामहि बन्धु सोच दिन राती। अंडन्हि कमठ हृदउ जेही भाँती ॥[9]

राम को अपने भाई भरत का दिन-रात ऐसा सोच रहता है जैसा कछुए का मन अपने अण्डों में रहता है। राम का भरत के प्रति स्नेह प्रदर्शित करने के लिए कछुए और उसके अण्डों की उपमा दी गई है। कछुआ भोजन के लिए कहीं दूर चला भी जाय, परन्तु उसका ध्यान अपने अण्डों में ही रहता है, उसे सदैव उनकी चिन्ता रहती है। राम की चिन्ता के आवेग को प्रभावशाली एवं स्पष्ट बनाने के लिए कछुए के उदाहरण का प्रयोग किया गया है।

तुलसी ने सौन्दर्य के उपमान के रूप में प्रकृति का बहुत उपयोग किया है। इनके द्वारा प्रयुक्त प्राकृतिक उपमान परम्परानुगत ही हैं। किन्तु इनका प्रयोग इस कुशलता से किया गया है कि वे कवि के स्वयं के से प्रतीत होते हैं। इनके अलंकार कहीं तो प्रकृति के माध्यम से भावों के उत्कर्ष में सहायक होते हैं और कहीं प्रस्तुत के रूप, गुण और क्रिया के प्रभाव में तीव्रता उत्पन्न करते हैं। कवि-समय-प्रसिद्धि, प्रकृति, व्यवहार, पौराणिक मान्यताएँ, विभिन्न शास्त्र तथा मौलिक प्राकृतिक कल्पना सभी क्षेत्रों से गृहीत उपमाओं के कारण उनकी उपमाएँ भाव-व्यंजक हो गई हैं। तुलसी ने कवि-परम्परा से गृहीत उपमानों का अधिक प्रयोग किया है—

प्रभु तन चितइ प्रेम तन ठाना। कृपानिधान राम सबु जाना ॥
सियहि बिलोकि तकेउ धनु कैसे। चितव गरुरु लघु ब्यालहि जैसे ॥[10]

गरुड़ द्वारा साँप के बच्चे को देखने में गरुड़ की सामर्थ्य और साँप के बच्चे की असमर्थता का भाव राम के द्वारा धनुष को देखने के भाव से कितना सादृश्य रखता है। कवि ने परम्परा से प्रसिद्ध इस उपमा को प्रकृति के माध्यम से नये रूप में प्रतिपादित करके इसमें भावाभिव्यंजना की नूतन शक्ति भर दी है।

प्रेम की मार्मिकता को तीव्र बनाने के लिए कवि ने 'विनयपत्रिका' में चातक की सुन्दर उपमा दी है—

जन कहाइ नाम लेत हौं, किये पन चातक ज्यों, प्रेम-पान की।[11]

कवि के राम के प्रति एकनिष्ठ प्रेम को चातक पूर्णतः व्यक्त करता है। चातक केवल स्वाति नक्षत्र की पहली बूँद को ही ग्रहण करता है, अन्यथा प्यासा मर जाता है। प्रेम की तीव्रता और व्याकुलता को व्यंजित करने के लिए तुलसी ने चातक की उपमा दी है, जिसमें भावों का सूक्ष्म रूप दृश्टिगोचर होता है—

तेहि मुख पर-अपवाद भेक ज्यों रटि-रटि जनम नसावौं।[12]

दूसरों की निन्दा कर मेंढक के समान टर्र-टर्र करते हुए अपना जन्म नहीं बिगाड़ना चाहिए। मेंढक टर्र-टर्र करता है। उसकी वाणी में मिठास नहीं होती। कर्कश आवाज से कानों को कष्ट होता है और इतना कोलाहल करने पर भी वह किसी का कोई भला नहीं करता, न किसी को शत्रु के प्रति सावधान करता है, न उसकी वाणी कर्णप्रिय है।

तहं तहं तरनि तकत उलूक ज्यों भटकि कुतरु-कोटर गहौं।[13]

उल्लू अन्धेरे में देख सकता है, प्रकाश में वह अन्धा हो जाता है। उसी प्रकार धनी मनुष्य ज्ञान की बातें सुनकर भी अपने धन की चिन्ता में धन के पास पहुँच जाता है। उल्लू के लिए प्रकाश व्यर्थ है, वैसे ही धनी के लिए ज्ञान व्यर्थ है। पशु-पक्षियों के आचरण के माध्यम से कवि ने अलंकारों द्वारा अपनी बात स्पष्ट की है—

कीर के कागर ज्यों नृपचीर, विभूषण उप्पम अंगनि पाई।
औधि तजी भगवास के रुत ज्यों पंथ के साथी ज्यों लोग लोगाई ॥[14]

जैसे तोता बसन्त ऋतु में पुराने पंखों को त्यागकर आनन्दित होता है, वैसे ही राम ने राजवस्त्र और अलंकारों को त्यागकर सन्तोष प्राप्त किया, रास्ते में निवास-स्थान के वृक्ष को त्यागने में कुछ खेद नहीं होता, वैसे ही उन्होंने अयोध्या को सहर्ष त्याग दिया। प्रकृति का यह नियम है कि पुराने पत्ते, पंख, फूल, फल झड़ जाते हैं, फिर नयें आते हैं। इसमें किसी को किसी प्रकार का शोक नहीं होता। उसी प्रकार राम को भी त्याग करने में किसी प्रकार का शोक नहीं है। राम के त्याग के माहात्म्य को प्रकृति के नियम द्वारा सजीव बनाया गया है।

संकट सोच सबै तुलसी लिये नाम फटैं मकरी के से जाले।[15]

राम-नाम लेने से समस्त दुःख शोक मकड़ी के जाले के समान फट जाते हैं। मकड़ी के जाले में एक तन्तु तोड़ दो तो समस्त जाला ही नष्ट हो जाता है। इस प्रकार प्रकृति के एक नियम द्वारा उपमा अलंकार की सहायता से कवि अपनी बात स्पष्ट करता है।

इसी प्रकार सर्प का प्रयोग रूपक अलंकार में भी कवि ने बहुत सुन्दर रूप में किया है—

काम-भुजंग डसत जब जाही। विषय-नींव कटु लगत ताही ॥[16]

जिसे कामरूपी सर्प डसता है, उसे विषयरूपी नीम कड़वा नहीं लगता। नीम खाने में कड़वा लगता है, परन्तु सर्प के काटने पर वह कड़वा नहीं लगता। विष के प्रभाव से उसका कड़वापन प्रतीत नहीं होता। वास्तविकता तो यह है कि वह कड़वा होता है, परन्तु जिसे साँप ने काटा हो, उसे वह कड़वा नहीं लगता। इसी प्रकार विषय-वासना में लिप्त मनुष्य सांसारिकता में लिप्त हो जाता है। यह रूपक अलंकार का सुन्दर प्रयोग है।

सौन्दर्य-चित्रण में भी कवि ने अलंकारों का प्रयोग किया है—

प्रभुहि चितइ पुनि चितव महि, राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग, जनु विधु मंडल डोल ॥[17]

यहाँ प्रथम सीता का प्रभु को देखना फिर पृथ्वी की ओर देखना ऐसा प्रतीत होता है, जैसे दो मछलियाँ चन्द्रमण्डल में खेल रही हों। यहाँ उत्प्रेक्षा द्वारा चन्द्रमण्डल में खेलती हुई दो मछलियों के दृश्य द्वारा प्रस्तुत दृश्य की मनोहरता में वृद्धि हुई है। प्रकृति के अवयव चन्द्रमा और मछलियाँ द्वारा प्रस्तुत और अप्रस्तुत के बीच सादृश्य की भावना अत्यन्त माधुर्यपूर्ण और स्वाभाविक है—

सम्मु सरद राकेस, नखत-गन सुर-गन।
जनु चकोर चहूँ ओर विराजहिं पुर-जन ॥[18]

ऐसा लगता है मानो शिव शारदी पूर्णिमा के चन्द्रमा हैं, देवता लोग नक्षत्रों के समान हैं। उन्हें देखने के लिए चारों ओर पुरवासी लोग चकोर समुदाय की भाँति सुशोभित हैं। यहाँ शिव की चन्द्रमा और पुरवासियों पर चकोर की उत्प्रेक्षा की गई है। चकोर की उत्प्रेक्षा द्वारा पुरवासियों का शिव के प्रति प्रेम परिलक्षित होता है।

राम के सौन्दर्य को प्रदर्शित करने के लिए भी परम्परागत उपमानों का प्रयोग किया गया है—

केहरि कंध, काम-करि करवर विपुल वाछु, बल भारी।[19]

राम के कन्धे सिंह के समान, भुजाएँ कामदेव के हाथी की सूँड के समान सुन्दर एवं बलशाली हैं। यहाँ राम के सौन्दर्य और वीर्य को प्रदर्शित करने के लिए सिंह का

तेज और हाथी की सूँड की लम्बाई का प्रयोग किया गया है।

राम के घोड़ों के वर्ण और सौन्दर्य की पुष्टता दिखाने के लिए कवि ने एक पक्षी का आश्रय लिया है। पशु के गुणों को प्रदर्शित करने के लिए पक्षी की अप्रस्तुत रूप में सहायता ली है–

तुलसी प्रभु के बिरह बधिक हठि राजहंस से जोरे।[20]

जिस प्रकार राजहंस के जोड़े सुन्दर, साफ और दर्शनीय होते हैं, उसी प्रकार राम के घोड़े सुन्दर पुष्ट और दर्शनीय हैं। उपमा अलंकार की योजना से एक की विशेषता द्वारा दूसरे का गुणगान सम्भव हो सका है।

प्रेम परखि रघुबीर सरासन भंजेउ।
जनु मृगराज किसोर महागज भंजेउ॥[21]

राम ने धनुष को इस प्रकार देखा और तोड़ा जिस प्रकार कोई सिंह का बच्चा बड़े भारी हाथी को मार दे। यहाँ सिंह के बच्चे द्वारा विशाल हाथी को मारने के दृष्टान्त से धनुभंग का चित्रण है।

रामचन्द्र के भजन बिनु, जो पद चह निर्वान
ग्यानवंत अपि सो नर पसु बिनु पूँछ विषान।[22]

जो राम-भजन के बिना मोक्ष प्राप्त करना चाहता है वह ज्ञानी होकर भी बिना सींग और पूँछ का पशु है। यहाँ 'ज्ञानवंत नर' तथा 'पशु बिनु पूँछ-विषान' से अभेद सम्बन्ध है। जो असम्भव है। इसीलिए परिकलपना द्वारा एकता दिखाई है। यहाँ निदर्शना अलंकार है। इसी प्रकार अन्यत्र कवि कहते हैं कि जड़ पशु भी ईश्वर-विरोधी मनुष्य से अच्छे हैं–

तिन्ह तें खर, सूकर, स्वान भले जड़ता बस न कहें कछु बे।
तुलसी जेहि राम सो नेह नहीं सो सही पसु पूँछ विषानन द्वे।[23]

रामविरोधी व्यक्ति तो पशु ही हैं, उनसे तो गधे और सूअर भी अच्छे हैं, क्योंकि जड़ होने से वे कुछ नहीं कहते। राम-विरोधी मनुष्यों को जड़ पशुओं से भी हीन मानकर पशु को उन मनुष्यों से श्रेष्ठ बताकर अभेद सम्बन्ध बताया है। इसलिए यहाँ भी निदर्शना अलंकार है–

मनि बिनु फनि जलहीन मीन तनु त्यागइ।
सोकि दोष गुन गनइ जो जेहिं अनुरागइ॥[24]

मणि के बिना सर्प और जल के बिना मछली शरीर त्याग देती है। ऐसे ही जो जिसके साथ प्रेम करता है, उसके दोष-गुणों को नहीं विचारता। दोष देखना और प्रेम करना दोनों ही विपरीत स्थिति के द्योतक हैं। परन्तु प्रेम में इतनी शक्ति होती है कि वह सब कुछ भुला देता है। यही बात सर्प और मछली में भी है, दोनों क्रमशः मणि और जल के बिना प्राण त्याग देते हैं, लेकिन यह सोचकर मणि और जल के लिए

उनका प्रेम कम नहीं होता। प्रकृति के नियम द्वारा कवि ने अपने विचार सुन्दर रूप से व्यक्त किए हैं।

खंजन, सुक, कपोत, मृग, मीना। मधुप निकर कोकिला प्रवीना॥
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू॥[25]

यहाँ सीता के अभाव में खंजन, सुक, कपीत, मृग, मीन आदि की शोभा के ब्याज से सीता के रूप की स्मृति आती है। अतः प्रकृति के वर्णन द्वारा विनोक्ति अलंकार का चमत्कार है। विभिन्न पशु-पक्षियों के वर्णन से जानकी के सौन्दर्य की अनुभूति कवि ने सुन्दर रूप से करायी है।

की मैनाक कि खगपति होई। मम बल जान सहित पति सोई॥[26]

यहाँ जटायु में मैनाक अथवा खगपति का जो सन्देह है, वह आकार दीर्घता तथा वेग की तीव्रता भी सूचित करता है। इन पक्षियों का सादृश्य होने के कारण सन्देह उत्पन्न हुआ है।

अवलोकि अलौकिक रूप मृगी मृग चौंकी चकै चितवै चित दै।
न डगै न भगै जिय जानि सिलिमुख पंच घरै रतिनायक है॥[27]

मृग और मृगी के सन्देह का सुन्दर वर्णन है। राम को बाणयुक्त देखकर उन्हें सन्देह हो जाता है कि ये कामदेव है, इसलिए मृग-मृगी चौंककर चकित होते हैं। वे राम को देखकर न भागते हैं, न डरते हैं। मृग-मृगी का सम्मोहन वास्तविक जान पड़ता है।

कौन पीर जो निरदहि जेहि लागि रटत विहंग?
मीन जल बिनु तलज्जित तनु सलिल सहज असंग?
मीरा कछु न मनिहिं जाके विरह-विकल भुजंग।
व्याघ-बिसिष विलोक नहिं कलगान-लुबुध कुरंग॥[28]

जिस मेघ के निमित्त पपीहा रटता है, उसे उस पक्षी के प्रति कौन-सी पीड़ा रहती है। मछली जल के बिना तड़प-तड़पकर शरीर छोड़ देती है, पर जल मछली से विरक्त रहता है। मणि में अपने प्रेमी सर्प के प्रति कोई पीड़ा नहीं होती। व्याघ के सुन्दर गान में लुब्ध मृग व्याघ के वाण को नहीं देखता। इन एकनिष्ठ प्रेमियों का वर्णन कवि ने अपनी रचना में किया है और सर्वत्र एकनिष्ठ प्रेम की प्रशंसा की है। मानस, गीतावली, विनयपत्रिका, कृष्ण गीतावली—इन सब में मृग, मछली, सर्प, कमल, हिरण के प्रेम की प्रशंसा कवि ने की है।

सर्प कवि की प्रशंसा का पात्र है। इसका 'मानस' एवं 'विनयपत्रिका' में वर्णन उपलब्ध है—

तुलसिदास भव-व्याल-ग्रसित तव सरन उरग-रिपु-गामी।[29]

यहाँ 'उरग रिपु-गामी' विशेष्य पद है। इसका प्रयोग विशेष अभिप्राय से हुआ

है। संसार रूपी सर्प से बचाने के लिए अपने गरुड़ को भेज दो, जो भव-व्याल को खाकर कवि को मुक्त कर देगा। साँप ही गरुड़ का भोजन होता है। यहाँ साभिप्राय विशेष्य का प्रयोग तुलसी की उत्कृष्ट प्राकृतिक कल्पना शक्ति का परिचायक है।

बिधि-बस सुजन कुसंगति परही। फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं ॥[30]

सज्जन कभी अपना स्वभाव नहीं छोड़ता। जैसे विषयुक्त सर्प के संसर्ग में मणि। यहाँ अतद्गुण की योजना सज्जनों के चरित्र की दृढ़ता पर प्रकाश डालने में सहयोगी हुई है। विषयुक्त सर्प के संसर्ग में आने पर भी मणि उसी प्रकार चमकता ही रहता है, सर्प के अवगुण को ग्रहण नहीं करता। इसी बात को और स्पष्ट करने के लिए कवि एक और सर्प का उदाहरण देता है—

मिलै जो सरलहि सरल है कुटिल न सहज बिहाइ।
सो सहेतु ज्यों बक्र गति व्याल न बिलहि समाइ ॥[31]

'मानस' का भाव 'दोहावली' में भी विद्यमान है। यदि कुटिल मनुष्य सरलता से मिलता है तो उसमें कुछ हेतु अवश्य होता है, जैसे साँप टेढ़ी चाल से बिल में नहीं घुस सकता। उसे सीधा होकर बिल में जाना पड़ता है लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं कि उसने कुटिलता छोड़ दी है, वह अपने अवगुण नहीं छोड़ता।

मंत्र परम लघु जासु बल, विधि, हरि हर, सुर सर्ब।
महामत्त गजराज कहुँ, बस कर अंकुस खर्ब ॥[32]

छोटे मन्त्र से ब्रह्मा, विष्णु, महेश को वश में किया जा सकता है तथा छोटे-से अंकुश से मस्त गजराज को भी वश में किया जा सकता है। अपूर्ण कारण से कार्य की उत्पत्ति के कारण विभावना अलंकार है। हाथी को बाँधने के लिए लोहे की मजबूत शृंखला की आवश्यकता होती है, लेकिन यही हाथी एक छोटे-से लोहे के टुकड़े से बस में आ जाता है।

तुलसी ने पशु प्रवृत्ति का चित्रण भी अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया है। यद्यपि इसका अवसर उन्हें अपेक्षाकृत कम ही मिला है। स्वामी के वियोग में घोड़ों की व्याकुलताजन्य चेष्टाओं का सूक्ष्म चित्रण दर्शनीय है—

चरफराहिं मग चलहिं न घोरे। बन-मृग मनहुँ आनि रथ जोरे ॥
अढ़ुकि परहिं फिरि हेरहि पीछें। राम वियोगि बिकल दुख तीछें ॥[33]

घोड़े अत्यन्त स्वामीभक्त होते हैं, उनका हिनहिनाना, घास न खाना, उनका तड़पना आदि का सुन्दर चित्रण है। चित्रण में स्वाभाविकता है, इसलिए इसे इसी अलंकार के अन्तर्गत माना जा सकता है।

किसी समान वस्तु को देखकर उसका उपमान से अन्तर जान नहीं पड़ता, परन्तु वह भेद जब किसी विशेष कारण द्वारा ज्ञात हो तो वहाँ उन्मीलित अलंकार होता है।

चरन चोंच लोचन रंगो, चलौ मराली चाल।
छीन नीर बिबरन समय, बक उघरत तेहि काल ॥[34]

हंसों की पंक्ति में बगुलों का भेद पता नहीं चलता। किन्तु क्षीर नीर पृथक् करने के कारण भेद स्पष्ट हो जाता है। यहाँ हंसों की एक विशेषता को कवि ने प्रदर्शित किया है। वैसे भी हंस सदा सद्वृत्ति और न्याय के प्रतीक माने जाते हैं। यद्यपि पशु-पक्षियों का स्वतन्त्र चित्रण तुलसी काव्य में कम है, फिर भी शारीरिक सौन्दर्य प्रदर्शन, मानव को प्रबुद्ध करने, दार्शनिक विश्लेषण आदि को समझाने के लिए कवि ने विभिन्न अलंकारों के कारण पशु-पक्षियों का वर्णन किया है। भेड़ की प्रवृत्ति द्वारा अविवेकी मनुष्य को अच्छे-बुरे का ज्ञान दिया है। उपमा द्वारा कवि कहता है कि जिस ओर सब चल रहे हों, उस ओर बिना सोचे-समझे नहीं चलना चाहिए।

गाय, हंस आदि को सद्वृत्ति का परिचायक बताते हैं। हंस सुन्दर होने के साथ विवेकी भी होता है। गाय मनुष्य का पोषण करती है।

सर्प का उल्लेख तुलसी की प्रत्येक रचना में है। 'मानस' में वह भ्रान्ति उत्पन्न करता है, 'विनयपत्रिका' में संसार रूपी सर्प से कवि मानव को सावधान करता है, 'दोहावली' में कवि कहता है कि जिस प्रकार मणि सर्प के अवगुण ग्रहण नहीं करता, वैसे ही मानव को तटस्थ रहना चाहिए। 'गीतावली' में एवं अन्य रचनाओं में कवि ने सर्प की मणि के प्रति प्रेम भाव की प्रशंसा की है। सर्प का उल्लेख सद् और असद् दोनों प्रवृत्तियों को प्रदर्शित करने में किया है।

उल्लू और मेंढक को कवि ने अपने काव्य में उच्च स्थान नहीं दिया। कवि के अनुसार रामनामहीन व्यक्ति की बातें मेंढक की बोली के समान व्यर्थ हैं। उल्लू अँधेरे में देख सकता है और प्रकाश में भटक जाता है। इसी प्रकार मूर्ख व्यक्ति ज्ञानी की बात नहीं समझ सकता। सिंह और हाथी पुष्टता और वीरता को प्रकट करते हैं। राम सिंह के समान वीर हैं और उनकी बाँहें हाथी की सूँड के समान लम्बी हैं।

इसके अतिरिक्त चातक, मछली, हरिण, कमलादि एकनिष्ठ प्रेम के प्रतीक के रूप में सभी रचनाओं में वर्णित किए गए हैं।

कमल व अन्य पुष्प

झलका झलकत पायन्ह कैसे। पंकज कोस ओस कन जैसे ॥
भरत पयादेहि आए आजू। भयउ दुखित सुनि सकल समाजू ॥[35]

किसी के पैरों में पड़े छाले देखकर सौन्दर्य की भावना नहीं जागृत होती प्रत्युत हृदय में बड़ा कष्ट होता है और उसके प्रति सहानुभूति-सी होने लगती है। किन्तु यहाँ यह बात नहीं है। कमलपात्र में स्थित ओसबिन्दु और भरत के कमलवत् चरणों में पड़े हुए छालों में गम्भीर सादृश्य है। साथ ही उपमा द्वारा उपमेय में सुन्दरता और

सुकुमारता की व्यंजना भी हुई है। इसी प्रकार की मौलिक कल्पनाओं से तुलसी-साहित्य भरा पड़ा है। यहाँ उपमेय भरत, चरण में पड़े हुए झलका उपमान, कमल पर पड़े हुए ओसकण, झलकत साधारण धर्म कैसे वाचक शब्द उपमा के चारों अंग हैं। अतः यहाँ पूर्णोपमा है। उनके चरण कमल के समान कोमल और गुलाबी हैं, छाले उस पर पड़े ओसकण। इस प्रकार प्रकृति के अंग से उपमा देने से ही इस वर्णन में सुकुमारता का प्रवेश हो सका है। तुलसीदास ने उपमान के रूप में कमल का अत्यधिक प्रयोग किया है। नेत्र, कमल, मुख कमल, हृदय कमल, चरण कमल आदि से तुलसी-काव्य भरा हुआ है। वर्ण-साम्य, गुणसाम्य, तथा प्रभावसाम्य प्रकट करने के लिए भी नीलकमल, अरुण-कमल आदि का उपमान रूप में प्रयोग है।

नीलकंज-जलदपुंज-मरकत-मनि सरिस स्याम।[36]

राम नीलकमल, मेघसमूह तथा मरकतमणि के समान श्यामवर्ण हैं। राम के श्यामवर्ण की सुन्दरता को प्रदर्शित करने के लिए कवि ने क्रमशः नीला कमल, मेघसमूह और मरकतमणि से तुलना की है। इन प्राकृतिक वस्तुओं द्वारा उनका वर्ण-वर्णन अधिक स्पष्ट हो गया है। यहाँ 'मालोपमा' है क्योंकि तीन प्राकृतिक वस्तुओं से एक साथ तुलना भी की गई है।

तुलसी मनरंजन, रंजित-अंजन नैन, सुखंजन जातक से।
सजनी ससि में सम सील उभै नव नील सरोरुह से विकसे ॥[37]

प्रस्तुत सौन्दर्य के स्पष्टीकरण करने के लिए कैसी सुन्दर अप्रस्तुत-योजना है। शशि और मुख, नेत्र और नील सरोरुह दोनों में रूप सादृश्य के साथ ही साथ 'प्रभविष्णुता' भी है। इस प्रकार प्रकृति के उपकरणों द्वारा तुलसी ने सौन्दर्य-चित्रण किया है, जिसमें कमल को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। अपने काव्य में सर्वत्र ही उन्होंने बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से काम लिया है। निम्नलिखित स्थल पर कुल पर कमल का आरोप कितना भाव-प्रवण बन गया है–

तव कुल कमल बिपिन दुखदाई। सीता सीत निसा सम आई ॥[38]

प्रस्तुत रूपक की योजना से वर्णित भाव की अनुभूति विशेष रूप से चमत्कारक हो गई है। यहाँ कुल पर कमल और सीता पर सीतनिसा का आरोप है। परम्परित रूपक में एक आरोप दूसरे आरोप का कारण होता है। तुलसी-साहित्य में परम्परित रूपक का प्रयोग अधिकता से मिलता है।

यह कमल वाले से मुरझा भी जाता है–

लोग नलिन भए मलिन अवध-सर, बिरह-बिषम-हिम पाई।[39]

राम के विरह रूप विषम हिम को पाकर अयोध्यारूपी सरोवर के पुरजन रूपी कमल मुरझा गए। कमल सरोवर में विकसित होता है। यद्यपि उसका विकास पानी में होता है, परन्तु शीत युक्त पाले से वह मुरझा जाता है। उसी प्रकार अयोध्यावासी

रामवनवास के कारण मृतप्राय से हो गए। यह नियम केवल कमल के साथ ही नहीं वरन् प्रकृति का यह सामान्य नियम है कि पाले से अधिकांश पेड़-पौधे मुरझा जाते हैं। उसी को रूपक अलंकार द्वारा कवि ने व्यक्त किया है।

मंजुल मंगल मोहदय, मूरति मारुत पूत।
सकल सिद्धि कर कमल तल, सुमिरत रघुबर-दूत ॥[10]

यहाँ 'कर' में 'कमल' का आरोप किया है। इसमें वर्णित भाव की अभिव्यक्ति में उत्कर्ष हुआ है और काव्य में चमत्कार का समावेश हुआ है। इस तरह की योजना तुलसी जैसा भक्त कवि ही कर सकता है। अपने आराध्य राम तथा उनसे सम्बन्धित अन्य श्रद्धेय पात्रों के अंगों का वर्णन करते हुए 'कमल' के उपमान की योजना उन्होंने श्रद्धावश अपने काव्य में की है। 'कमल' उनका सबसे प्रिय प्राकृतिक उपमान है।

तुलसी ने उत्प्रेक्षा द्वारा कमल का बिम्ब इतनी कुशलता से योजित किया है कि देखते ही बनता है—

नीदउँ बदन सोह सुठि लोना। मनहुँ साँझ सरसीरुह सोना ॥[11]

यहाँ अप्रस्तुत 'साँझ सरसीरुह' एवं प्रस्तुत 'नींदउ वदन' में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव झलकता है। कवि को रूप-चित्रण में प्रकृति की सहायता से उत्प्रेक्षा अलंकार द्वारा अभूतपूर्व सफलता मिली है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने संध्या काल के मुँदते हुए कमलों को निकट जाकर देखा है और उनकी संध्याकालीन सुषमा का जी भरकर मान किया है।

सुनत जुगल कर माल उठाई। प्रेम बिबिस पहिराइ न जाई ॥
सोहत जनु जुग जलज सनाला। ससिहि सभीत देत जयमाला ॥[12]

यहाँ सीता द्वारा राम के गले में जयमाल डाले जाने का वर्णन करते हुए कवि असिद्ध हेतु का आधार लेता है। कमल द्वारा चन्द्रमा को जयमाल देना प्रसिद्ध आधार है। यह उत्प्रेक्षा सीता एवं राम के सौन्दर्य एवं सुकुमारता का चित्र प्रस्तुत करती है। प्रथम मिलन के समय पत्नी के संकोच और भय के भाव को प्रदर्शित करने में कवि ने प्राकृतिक उपमानों का प्रयोग किया है। राम चन्द्रमा के समान सौन्दर्यशाली है। सीता की सुकुमारता और लज्जा को प्रदर्शित करने के लिए कमल-नाल जैसी कोमल और झुकी हुई बाँहों का वर्णन कवि ने किया है।

'कमल' के अतिरिक्त अन्य पुष्पों का भी कवि ने अपने काव्य में चित्रण किया है—

अंग अंग दलित ललित फूले किंसुक से
हने भट लाखन लखन जातुधान के।[13]

लक्ष्मण द्वारा मारे गए रावण के लाखों वीरों का अंग-अंग घायल हो गया।

जिससे ये फूले हुए सुन्दर पलाश के समान मालूम होते हैं। पलाश के फूल का रंग लाल होता है और एक ही डाली पर कई फूल खिलते हैं। वीरों के शरीर से निकला रुधिर बहुत सारे पलाश के फूलों के समान लगता है। वीभत्स चित्रण को प्राकृतिक सौन्दर्य युक्त कर ग्राह्य बना दिया है।

संसार की असारता बताने के लिए कवि गूलर के फूल की उपमा देते हैं—

तुलसी अधिक कहै न रहै रस मूलरिको-सी फल फोरे।[44]

अधिक कहने से बात का रस नहीं रह जायगा, जैसे गूलर का फूल फोड़ने पर उसमें कीड़े ही दिखाई देते हैं। बात ज्यादा नहीं खोलनी चाहिए, क्योंकि बहुत बोलने से उसमें रस नहीं रहता, अधिक बात के खोखलेपन का दर्शाने के लिए गूलर के फूल का सटीक उदाहरण कवि ने दिया है। अपने कथन को पुष्ट करने के लिए कवि पग-पग पर प्रकृति की सहायता लेता है।

इसी प्रकार कुमुद पुष्प का भी कवि ने अपने काव्य में सुन्दर उपमान के रूप में प्रयोग किया है—

नारि कुमुदिनीं अवध-सर रघुपति विरह दिनेस।
अस्त भएँ, विगसत भईं, निरखि राम-राकेस ॥[45]

यहाँ पर राम पर राकेश का, नारी पर कुमुदनी का, अयोध्या पर सर का आरोप है। यहाँ परम्परित रूपक है। राम के अयोध्या वापस लौटने पर स्वाभाविक रूप से प्रसन्न स्त्रियों का चित्रण प्रकृति की सहायता से कवि ने सुन्दर रूप से किया है। स्त्रियाँ खिले हुए कुमुदनी के पुष्पों की तरह प्रसन्न हैं।

तरुण अरुन अंभोज चरन मृदु, नख-दुति हृदय-तिमिर-हारी।
कुलिस-केतु-जब जलज रेख सर, अंकुश मन-गजवसकारी ॥[46]

राम के चरण नये खिले कमल के समान लाल कोमल हैं। नया खिला कमल अत्यन्त कोमल होता है, कमल पुष्प स्वयं ही कोमल होता है और सद्यःविकसित की तो बात ही क्या है। चरण शरीर के कठोर अंगों में से एक हैं। वह भी कोमलता की पराकाष्ठा पार कर गया है। तो कोमल अंगों का क्या होगा। इसलिए यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार है। कमल की उपमा कवि ने अपनी प्रत्येक रचना में मुख, नैन, हाथ, पैर और वर्ण के लिए दी है।

तुलसी वंक विलोकनि, मृदु मुसकानि।
कस प्रभु नयन कमल अस कहाँ बखानि ॥[47]

राम की तिरछी चितवन और हास्य को कमल के समान कैसे कहा जाय, क्योंकि कमल से अधिक सुन्दर उनका हास्य और नेत्र हैं। यहाँ राम के नेत्रों को कमल की अपेक्षा उत्कर्ष प्राप्त हुआ है। अतः व्यतिरेक अलंकार है। कमल के सौन्दर्य को हीन बताकर कवि ने राम के नेत्रों का सौन्दर्य और बढ़ दिया है।

सजनि! हैं कोउ राजकुमार।
पंथ चलत मृदु पद-कमलनि, दोउ सील-रूप-आगार।[48]

यहाँ चलने में असमर्थ 'कमल' उपमेय पद से अभिन्न होकर चलने में समर्थ है। अतः परिणाम अलंकार है। कमल स्वयं नहीं चल सकता, लेकिन जब 'चरण कमल' कहा जाता है तो वह गति को प्राप्त कर लेता है। यहाँ भी कवि का उद्देश्य राम के पैरों की कोमलता को प्रदर्शित करना है।

कर-पंकज सिर परसि अभय कियो, जन पर हेतु दिखायो।[49]

पंकज सिर का स्पर्श करने में असमर्थ है। 'कर' से अभिन्न रूप होने से अभय करने में समर्थ है। हाथ, पैर, मुख, नेत्र की उपमा कवि कमल से ही देते हैं।

सुनि मृदु बचन मनोहर पिय के। लोचन ललिन भरे जल सिय के॥[50]

यहाँ 'लोचन नलिन भरे' वाक्यांश से नेत्रों में अश्रु आ जाने के बहाने से कारण रूप दुःख प्रकट होता है। कार्य से कारण का बोध रूप अप्रस्तुतप्रशंसा है। सीता की कमल-सी आँखों में आँसू आ गए। यहाँ सीता के दुःख को कोमलता से प्रकट करने के लिए उसके नेत्रों को कमल-रूप बताया गया है।

कैस मुकुल सति मरकत मनिमन होत।
हाथ लेत पुनि मुकता करत उदोत॥[51]

मुक्ता केशों के संसर्ग में आने के कारण तो उनका गुण ग्रहण करके मरकत मणि के समान लगने लगते हैं किन्तु सीता के कर कमलों में आकर पुनः मुक्ता से दीखते हैं। यहाँ कमलों के कारण भेद-प्रतीति हुई है, इसलिए उन्मीलित अलंकार है।

अधिकतर पुष्पों का प्रयोग कवि ने सौन्दर्य-प्रदर्शन के लिए ही किया है परन्तु कभी-कभी नीति और ज्ञान की बात कहने के लिए कवि गूलर के फूल या केले के फूल का दृष्टान्त देते हैं—

काटेहिं पइ कदरी फरइ, कोटि जतन कोउ सींच।
विनय न मान खगेस सुनु, डाटेहिं पइ नव नीच॥[52]

केले का फूल काटने पर फलता है। यहाँ केले के फूल के दृष्टान्त द्वारा कवि इस भाव की अभिव्यक्ति करने में पूर्ण समर्थ हुआ है कि नीच प्रार्थना से नहीं, प्रत्युत डाँटने से नम्र होते हैं।

बाम बिधि मेरो, सुखु सिरिस सुमन-सम,
ताको छल छुरी कोह कुलिस लै टेई है॥[53]

वाम विधाता ने कोमल सुमन सदृश सुकुमार सुख नष्ट कर दिए। यहाँ दो अनुरूप पदार्थों का वर्णन होने से विषम अलंकार है।

चम्पक हरवा अंग मिलि अधिक सुहाइ
जानि परे सिय हियरे जब कुम्हलाइ।[54]

चम्पक पुष्पों का हार सीता के अंगों के वर्ण के साथ बिल्कुल मिल गया, लेकिन जब चम्पक पुष्पों की माला कुम्हला गई तब उसके गले में विद्यमान होने का ज्ञान हुआ, अतः यहाँ उन्मीलित अलंकार है। पुष्प कुछ समय पश्चात् मुरझा जाते हैं, लेकिन सीता का सौन्दर्य सदैव प्रकाशित रहता है। पुष्पों की इस नियति द्वारा कवि ने सीता के सौन्दर्य को और मुखरित किया है।

सीता के सौन्दर्य को प्रकट करने के लिए ही कवि एक और पुष्प का उपयोग करता है—

सिय तुव अंग रंग मिलि अधिक उदोत।
हार वेलि पहिरायो चम्पक होत॥[55]

सीता के अंग में संसर्ग से बेला का हार अपने स्वाभाविक गुण को त्यागकर चम्पा का हार बन जाता है। यहाँ तद्गुण की योजना सीता के सौन्दर्याधिक्य की अभिव्यक्ति में पर्याप्त योग दे रही है।

पुष्पों की कोमलता, उनकी सुन्दरता और उनके मुरझाने आदि सभी का कवि ने अपने काव्य में प्रयोग किया है। विशेषतः राम और सीता के अंगों के लिए बार-बार कवि ने कमल का प्रयोग किया है। सीता के सौन्दर्य-वार्धक्य के लिए चम्पा और बेला के पुष्पों का भी उल्लेख कवि ने किया है। कहीं-कहीं गूलर और केले के पुष्प का वर्णन है जो जीवन के सत्य को समझकर मानव को प्रबुद्ध करने में सहायता करता है।

सूर्य

सूर्य सदैव से ही शक्ति और प्रकाश का स्रोत रहा है। सूर्य के बिना पृथ्वी पर जीवन की कल्पना असम्भव है। सूर्य द्वारा कवि दार्शनिक व्याख्या भी सुन्दर रूप से करने में समर्थ हुआ है।

अति जनन्यगति इन्द्री जीता। जानो हरि बिनु कतहु न चीता॥
मृगतृष्णा सन जगजिय जानी। तुलसी ताहि संत परिचानी॥[56]

सूर्य की किरणों में जल का आभास पाकर मृग उसके पीछे दौड़ता है और अन्त में अपने प्राण त्याग देता है। उसी प्रकार सांसारिक कार्यों में लिप्त मनुष्य अपना जीवन व्यर्थ गँवा देता है। सूर्य की किरणें जल के समान लगती हैं। किरणों से पानी का भ्रम होता है। इस दार्शनिक सत्य को सूर्य की सहायता से कवि ने समझाया है। उपमा अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया है। सूर्य के तेज, प्रभाव, प्रकाश आदि का उपमान रूप में स्थान-स्थान पर वर्णन किया गया है। तुलसी ने राम को सूर्य के समान तेजस्वी, प्रभाकर के समान प्रभावशाली एवं संशय शोक रूपी अज्ञान को नष्ट करने वाले सूर्य के समान प्रकाशमान माना है—

उदित उदयगिरि मंच पर रघुवर बालपतंग।
बिकसे सन्त-सरोज सब, हरष लोचन भृंग ॥[57]

मंच रूप उदयाचल पर राम रूप बाल सूर्य उदित हुआ, उस समय सन्त रूपी कमल खिल गए। अन्य नरपति उस समय राम रूपी सूर्य को देखकर कुमुद और उल्लू की भाँति दुःखी हुए। इस रूपक में कवि ने धनुष तोड़ने के लिए मंच पर खड़े हुए रामचन्द्र के साथ प्रातःकाल का सांगोपांग निरूपण किया है। पाठक के हृदय मंच पर खड़े हुए राम और प्रातःकाल उदित होते हुए सूर्य दोनों के चित्र अंकित हो जाते हैं।

पन-परिताप, चाप-चिन्ता-निसि, सोच-समोच-तिमिर नहिं थोरी।
रबिकुल-रबि अवलोकि सभा-सर हितचित-बारिज-बन बिकसोरी ॥[58]

जनक का सोच और संकोच रूप अन्धकार कुछ कम नहीं था, किन्तु सूर्य कुल के सूर्य राम को देखते ही राजसभारूप सरोवर में चित्र रूप कमलों का वन विकसित हो गया। यह प्रचलित है कि कमल सूर्य को देखकर ही प्रफुल्लित होता है, कमल को विकसित करने वाला सूर्य ही है। रूपक अलंकार द्वारा सूर्य की विशेषताओं को राम की विशेषता बताया गया है।

गए सोक-सर सूति मांद-सरिता-समुद्र गहिराए।
प्रभु प्रताप-रवि अहित-अमंगल अध-उलूक-तम ताए।
किए बिसोक हित कोक कोकनद लोक सुजस सुभ छाये।[59]

राम के प्रताप रूप सूर्य के सामने अहित, अमंगल और पाप रूप उल्लू तथा अन्धकार लीन हो गए। सुहृद रूप कोक एवं कोकनद शोकहीन हो गए। उल्लू सूर्य को देखते ही कोटर में छिप जाता है। रात्रि को कोक पक्षी अपनी प्रिया से बिछुड़ जाता है, लेकिन सूर्योदय होते ही उनका मिलन हो जाता है। सूर्योदय से राम की विशेषताओं का रूपक कवि ने बाँधा है जिससे रामप्रताप के वर्णन में 'प्रभविष्णुता' आ गई है।

अनुराग-तड़ाग में भानु उदै बिगसीं मनो मंजुल कंज-कली।[60]

राम रूपी सूर्य के उदय से प्रेम रूपी सरोवर में सखियों के नेत्र कमल कली के समान विकसित हो गए। राम को सदा तुलसी ने सूर्य रूप में व्यक्त किया है। वे सूर्य के समान तेजस्वी, प्रकाशमय एवं दानी हैं।

बालधी बढ़न लागी ठौर ठौर दीन्हीं आगि
विन्ध्यकी दवारि कैधों कोटिसत सूर हैं।[61]

हनुमान की पूँछ ने यहाँ-तहाँ आग लगा दी, जिससे लगता था कि वह विन्ध्य पर्वत की दावाग्नि हो अथवा करोड़ सूर्य उदित हो गए हों। अग्नि का स्वरूप इतना भयानक था कि सन्देह होता था कि जैसे करोड़ों सूर्य एक साथ चमक रहे हैं।

गुरुगृह गए पढ़न रघुराई। अलप काल विद्या सब आई॥
रवि मंडल देखत लघु लागा। उदय तासु त्रिभुवन तम भागा॥[62]

राम ने सब प्रकार की विधाएँ जल्दी ही सीख लीं जैसे सूर्य देखने में छोटा लगता है, लेकिन उसके उदय होते ही तीनों लोकों का अन्धकार दूर हो जाता है। यहाँ प्रकृति के नियम द्वारा सुन्दर विभावना अलंकार की योजना की गई है। सूर्य तेज, शक्ति, वीरता, प्रकाश का स्रोत माना गया है। राम के प्रसंग में विशेष रूप से सूर्य का प्रयोग वीरता एवं शक्ति के पुंज के रूप में कवि ने किया है।

चन्द्रमा

सज्जन कुमुद चकोर चित हित विसेषि बड़ लाहु।[63]

राम कभी सूर्य के समान तेजस्वी हैं और कभी चन्द्रमा के समान शीतल एवं शान्तिदायक हैं। चन्द्रमा रूपी राम को देखकर सज्जन रूपी कुमुद के फूल खिल गए। कुमुद का पुष्प चन्द्रमा की चाँदनी में ही विकसित होता है। चकोर पक्षी चन्द्रमा की किरणें ग्रहण करता है। उसे भी चाँदनी रात प्रिय होती है। इस प्रकार कवि-सत्य द्वारा प्रकृति के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए यपक अलंकार प्रस्तुत किया गया है।

लता भवन ते प्रकट भे, तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग विमल विधु, जलद पटल बिलगाइ॥[64]

प्रस्तुत उत्प्रेक्षा में मेघखण्ड के बीच से प्रकट होते हुए चन्द्रमा का मनोरम दृश्य लाया गया है। जो प्रस्तुत की मनोहरता बढ़ाने वाला है। चन्द्रमा के समान नेत्र शीतल करने का गुण भी राम और लक्ष्मण दोनों में है। चन्द्रमा के साथ ही तारे भी रात्रि में दिखाई देते हैं और उनका अपना अलग सौन्दर्य होता है।

स्रम-सीकर साँवरि देह लसे, मनो रासि महातम तारक में।[65]

राम का पसीने की बूँदों से साँवला शरीर ऐसे सुशोभित हो रहा है मानो तारों से युक्त महान् तमोराशि हो। अँधेरी रात में जगह-जगह छिटके तारे बहुत सुन्दर लगते हैं, इसका वर्णन करते हुए राम के सौन्दर्य को प्रदर्शित किया है। साँवले शरीर पर लगे पसीने पर तारों वाली रात का आरोप किया गया है।

सौन्दर्य वर्णन में भी चन्द्रमा का अपना महत्त्व है। वह आदिकाल से ही सौन्दर्य का प्रतीक माना गया है–

मनहूँ इन्दु खंजरीट दोह कछुक वरुनविधि रचे संवारि।
कुटिल अलब जनु मार फंद कर गहे सब गहै रह्यौ संभरि॥[66]

कृष्ण के नेत्र मानो चन्द्रमा पर लाल रंग के दो खंजन पक्षी बने हैं। खंजन पक्षी अत्यन्त चंचल होता है ओर वह भी चन्द्रमा में खेलता हुआ खंजन युगल। खंजन और चन्द्रमा की सुन्दरता द्वारा कृष्ण के नेत्रों की सुन्दरता को उत्प्रेक्षा अलंकार द्वारा व्यक्त

किया है।

राम सीय सिर सेंदुर देहीं। सोभा कहि न जाति बिधि केहीं ॥
अरुन पराग जलजु भरि नीके। ससिहि भूष अहि लोभ अमीकें ॥[67]

यहाँ राम की सर्प रूपी भुजा कमल रूपी हथेली में पराग रूपी सिन्दूर लेकर सीता के चन्द्र रूपी मुख को भूषित कर रही है। जलज के पराग से चन्द्रमा को सर्प द्वारा भूषित कराने की क्रिया में वहाँ अमृत पीने के परिणाम की कल्पना द्वारा पति-पत्नी के मधुर सम्बन्धों की बड़ी ही मनोरम व्यंजना कराई गई है। कवि ने प्राकृतिक अवयवों द्वारा रूपकातिशयोक्ति की जो योजना की है, उसमें पूर्ण सफल रहे हैं।

चन्द्रमा की विशेषता है कि वह घटता-बढ़ता रहता है। इसी को लेकर कवि ने भरत का यशोगान किया है—

नव बिधु बिमल तात जसु तोरा। रघुबर किंकर कुमुद चकोरा ॥
उदित सदा अथ इहि कबहूँ ना। घटिहि न जग नभ दिन दिन दूना ॥[68]

भरत का यश चन्द्रमा के समान है, चन्द्रमा घटना-बढ़ता है, परन्तु भरत का यश दिन-दिन बढ़ता है। व्यतिरेक की योजना द्वारा भरत के विमल यश को चन्द्रमा से भी श्रेष्ठ बताया है और इस प्रकार उनके यश को चन्द्रमा से भी अधिक उत्कर्ष प्राप्त हुआ है।

जिमि भानु बिनु दिनु, प्रान बिनु तनु, चन्द बिनु जिमि जामिनी।
तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिनु समुझि धौं जियँ भामिनी ॥[69]

भानु के बिना दिन, प्राण के बिना तन और चन्द्रमा के बिना रात्रि आदि प्राकृतिक उदाहरणों द्वारा राम के बिना अवध का अशोभित होना वर्णित है। अतः विनोक्ति अलंकार है। जिस प्रकार चन्द्रमा विहीन रात्रि का कोई सौन्दर्य या महत्त्व नहीं होता, उसी प्रकार राम विहीन नगर व्यर्थ है।

चन्द्रमा सौन्दर्य या विरह-व्यथा को व्यक्त करने का एक साधन मात्र ही नहीं है वरन् कवि उसकी विशेषताओं द्वारा मानव को प्रबुद्ध भी करना चाहता है। इसलिए कवि कहता है कि सब दुष्ट व्यक्ति से ही डरते हैं। वक्र चन्द्रमा को राहू भी नहीं ग्रसता, एक कथन का दूसरे द्वारा समर्थन है, इसलिए अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

जो भाव 'मानस' में राम के प्रति सीता के मन में हैं, वही 'कृष्ण गीतावली' में कृष्ण के लिए गोपियों के मन में हैं। विरह-व्यथा में प्राकृतिक अवयवों की विशेषताएँ विपरीत प्रतीत होती हैं—

ससि ते सीतल मोको लागे री तरनि।[70]

गोपी कहती है इस चन्द्रमा से तो सूर्य ही शीतल लगता है। सूर्य का शीतल लगना और चन्द्रमा का उष्ण लगना, विरोधी बातें हैं। लेकिन विरह के कारण यह

परिवर्तन हो गया है। विरोधाभास अलंकार का चमत्कार है।

जयत्यंजनी-गर्भ-अंभोधि-संभूत-विधु, विबुध-कुल-कैखानंदकारी।
केसरी-चारु-लोचन-चकोरक-सुखद, लोकगण शोक-सन्तापहारी ॥[71]

हनुमान अंजनी के गर्भ रूपी समुद्र से चन्द्र-रूप उत्पन्न होकर देवताओं के कुल रूपी कुमुदों को आनन्द देने वाले हैं। पिता (केसरी) के सुन्दर नेत्रों रूपी चकोरी को सुख देने वाले हैं। यहाँ हनुमान का उल्लेख चन्द्रमा के रूप में, कभी कुमुदों को प्रसन्न करने वाले रूप में, कभी पिता को प्रसन्न करने वाले के रूप है। उल्लेख अलंकार का यह सौन्दर्य है।

चन्द्रमा सौन्दर्य का, शीतलता का प्रतीक है। बहुधा सीता के मुख के लिए कवि ने चन्द्रमुख का प्रयोग किया है। चन्द्रमा चकोर पक्षी को प्रिय होता है। उनके प्रेम का वर्णन भी कवि एकनिष्ठ प्रेम को प्रतिपादित करने के लिए करता है। प्रायः सभी रचनाओं में सीता के मुख से चन्द्रमा की तुलना कवि ने की है। 'विनयपत्रिका' में हनुमान को भी चन्द्रमा कहा गया है। यही चन्द्रमा जो इतना शीतल और सुखद होता है, विरह में व्यथा का कारण बन जाता है। 'कृष्ण गीतावली', 'मानस', 'बरवै रामायण', सभी में चन्द्रमा को विरह में उष्ण और सूर्य को शीतल बताया गया है। तुलसी ने अलंकार वर्णन में चन्द्रमा का बहुशः वर्णन किया है।

स्रम-सीकर साँवरि देह लसैं, मनों रासि-महातम-तारक-में।[72]

पसीने की बूँदों से राम का साँवला शरीर ऐसे सुशोभित हो रहा है मानो तारों से युक्त महान् तपोराशि हो। अँधेरी रात में जगह-जगह छिटके तारे बहुत सुन्दर लगते हैं, इसका वर्णन करते हुए राम के सौन्दर्य को प्रदर्शित किया है। श्यामल शरीर के पसीने पर तारों वाली रात का आरोप किया गया है।

नदी

वर्णन को सजीव एवं प्रभावक बनाने के लिए, तुलसी प्रायः सांगरूपक का आश्रय लेते हैं—

पापपहार प्रगट भइ सोई। भरी क्रोध जल जाइ न जोई।
दोउ बर कूल कठिन हठ धारा। भँवर कूबरी बचन प्रचारा ॥
ढाहत भूपरूप तरु मूला। चली बिपति बारिधि अनुकूला ॥[73]

यहाँ पाप और पहाड़ तथा क्रोध और जल में अनुगामी धर्म है। इसी प्रकार वर और कूल, हठ और धारा, भँवर और कूबरी वचन-प्रचार, भूप और तरु तथा विपत्ति और वारिधि में भी वस्तु प्रतिवस्तु धर्म है। बरसाती नदी का स्मरण आते ही नेत्रों के सामने उसका सर्वनाशकारी चित्र खिंच जाता है। इस रूपक से कैकेयी के क्रोध के भावी परिणाम की भयंकरता भी गोचर होती है। जिस प्रकार बरसाती नदी उग्र होती

है और सब ओर विनाश ही करती चलती है, सब पशु-पक्षी, मानव उसमें बह जाते हैं। वह सर्वत्र दुःख का ही साम्राज्य फैला देती है, उसी प्रकार कैकेयी का क्रोध भी है।

क्रोध का रूपक तरंगिणी से होने से यह परम्परागत नहीं है। परम्परा के अनुसार अग्नि को क्रोध का उपमान माना जाता है। दोनों में साधर्म्य है। कैकेयी का क्रोध वीरों के क्रोध से भिन्न है। इसमें भयंकरता या वीरत्व न होकर कुटिलता है। साथ ही नारी-चरित्र की अगाधता एवं अविचारिता बाढ़ की नदी के साथ रूपक बाँधने से भली प्रकार व्यक्त हो जाती है।

सचिव सत्य, श्रद्धा प्रिय नारी। माधव सरिस मीतु हितकारी ॥
चारि पदारथ भरा भंडारू। पुन्य प्रदेस देस अति चारु ॥
छेत्रु अगम गढ़ु गाढ़ सुहावा। सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन्ह पावा ॥
चँवर जमुन अरु गंग तरंगा। देखि होहिं दुख दारिद भंगा ॥[74]

इस रूपक में तीर्थराज प्रयाग को एक आदर्श राजा के रूप में चित्रित किया गया है। आदर्श राजा का जैसा समाज, वैभव और लोकोपकारक कार्य होता है, वैसा ही तीर्थराज का बताया गया है। चित्रण इतना व्यवस्थित तथा मार्मिक है कि तीर्थराज का समूचा समाज चाक्षुष होने लगता है। 'दुःख दारिद' को भंग करने वाला तथा 'मन काम' को पूरा करने वाला उसका सम्पूर्ण स्वरूप निखर उठता है।

ऐसी मूढ़ता या मन की।
परिहरि राम-गति सुरसरिता, आस करत ओसकन की ॥[75]

यह मन ऐसा मूर्ख है कि राम-भक्ति रूपी गंगा को छोड़कर ओसकण रूपी अन्य वस्तु की आशा करता है। प्रथम तो ओसकण प्यास बुझाने में सक्षम ही नहीं है। गंगा जल की समता कोई और जल नहीं कर सकता। गंगा को पवित्र एवं मोक्षकारिणी माना गया है।

महामोह सरिता अपार महं सन्तत फिरत बह्यौ।
श्री हरिणचरणकमल नौका तजि फरि कैने गह्यो ॥[76]

तुलसी कहते हैं कि मैं महामोह रूपी अपार नदी में बहता फिरता हूँ। मोह को नदी के समान अथाह बताया है। कवि ने अपने को अत्यधिक संसारी बताया है जो अत्युक्तिपूर्ण है।

कर्म-नीच जिय जानि सानि चित चाहत कुटिल मलहि मल धोयो।
तृषावन्त सुरसरि विहाय शठ फिरि फिरि विमल आकाश निचोयो ॥[77]

प्यास होने पर भी गंगा को छोड़ना और आकाश निचोड़कर पानी की आशा करना, कल्पना द्वारा दोनों में साम्य उत्पन्न होने के कारण निदर्शना अलंकार है। कवि प्रकृति के आश्रय द्वारा अपनी बात कहता है। प्रकृति का कवि के ऊपर अधिक प्रभाव है। वह उससे प्रेरणा ग्रहण करता है।

प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं॥
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥[78]

यहाँ विनोक्ति के प्रयोग द्वारा 'बिना पानी के नदी' और 'बिना प्राण के देह' के कथन द्वारा 'पुरुष बिना नारी' की कल्पना न होने के वर्णन में भारतीय नारी का धर्म सजीव हो उठता है। जैसे नदी का पानी के बिना कोई अस्तित्व नहीं होता, वैसे ही पुरुष के बिना नारी-जीवन व्यर्थ है। प्रकृति के इस कार्य-कारण-सिद्धान्त द्वारा कवि ने अपनी बात कही है।

तुलसी तोरत तीर तरु, बक हित हंस बिडारि।
बिगत नलिन अलि मलिन जल, सुरसरिहू बढिआरि॥[79]

यहाँ अप्रस्तुत 'बाढ़ की गंगा' का ध्वंसकारी चित्र उपस्थित करके उसके द्वारा कवि प्रस्तुत का बोध कराना चाहता है कि बढ़ती होने पर सज्जन भी गर्वित हो जाते हैं। गंगा यद्यपि सबके पापों का नाश करती है और उसका जल जीवनदाता होता है, परन्तु बाढ़ के समय वह आसपास की मलिनता भी अपने भीतर ले लेती है और जीवन का विनाश भी करती है।

सब के हृदयँ मदन अभिलाषा। लता निहारि नवहि तरु साखा॥
नदी उमगि अम्बुधि कहुँ धाईं। संगम करहिं तलाब तलाईं॥[80]

लता पेड़ को देखकर झुक जाती है। नदियाँ समुद्र की ओर दौड़ती हैं। तालाब, तलाई का मिलन हो रहा है। यहाँ जड़ पदार्थों की कामासक्ति की दशा के वर्णन से चेतन प्रकृति का कामसक्त होना स्वतः सिद्ध है। अतः अर्थोपत्ति अलंकार है।

नदियों में कवि ने गंगा का उल्लेख सर्वाधिक किया है। गंगा के प्रति कवि ने सदा श्रद्धा और विनय प्रकट की है। 'मानस' और 'विनयपत्रिका' दोनों में गंगा को आदरणीय स्थान मिला है। गंगा-जल को छोड़कर अन्यत्र प्यास बुझाने की कामना मूर्खता है।

समुद्र

हृदय सिन्धु मति सीप समाना। स्वाति सारदा कहहिं सुजाना॥
जौं बरसइ बर बारि बिचारू। होहिं कबित मुकुतामनि चारू॥[81]

यहाँ हृदय समुद्र है और सरस्वती स्वाति नक्षत्र है। इस रूपक में प्रकृति की सहायता से प्रस्तुत का सांगोपांग निर्वाह कवि ने बहुत कुशलता से किया है तथा काव्य सिद्धान्त जैसे गूढ़ विषय को सरल बना दिया है।

जौ चलिहै तौ चलौ चलिकै बन, सुनि सिय मन अवलम्ब लही है।
बूड़त बिरह-बारिनिधि मानहुँ नाह बचन मिसि बाँह गही है॥[82]

वनवास की आज्ञा मिलने पर सीता को सहारा मिल गया, मानो विरह समुद्र में डूबते हुए को राम के वचन ने उबार लिया हो। यहाँ उत्प्रेक्षा द्वारा विराट् विरह समुद्र

में डूबने वाली सीता को राम का सहारा मिल गया, इस भाव को कवि ने प्रदर्शित किया है। जिस प्रकार एक लकड़ी या टहनी के सहारे मनुष्य समुद्र में बहता रहता है, डूबता नहीं, उस संकट के समय वही अवलम्ब उसके लिए जीवनदायी होता है मानो उसी प्रकार राम की आज्ञा ही सीता का अवलम्ब थी।

भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीरसिन्धु बिनसाइ ॥[83]

भरत को कभी राजमद हो ही नहीं सकता, क्या कभी काँजी से क्षीर सागर फट सकता है? क्षीर सागर के दृष्टान्त द्वारा भरत की निस्पृहता की सुन्दर अभिव्यक्ति है।

भगत कल्पतरु प्रनत हित, कृपा सिन्धु सुख धाम।
सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम ॥[84]

यहाँ कल्पतरु, प्रनतहित, कृपासिन्धु, सुखधाम राम के विशेषणों का साभिप्राय प्रयोग हुआ है। जैसे समुद्र में अपार जल होता है, वैसे ही राम में समुद्र के समान अपार कृपा है।

काह न पावकु जारि सक, का न समुद्र समाइ,
का न करै अबला प्रबल, केहि जग कालु न खाइ।[85]

अग्नि किसको नहीं जला सकती, समुद्र में क्या नहीं समा सकता और अबला क्या नहीं कर सकती? यहाँ अबला को प्रबल दिखाया है, जो सामान्यतः विरोधी है, पर वास्तव में विरोधी नहीं है। प्रश्नवाचक वाक्यों से विरोध दीखता है, परन्तु वस्तुतः है नहीं। समुद्र में क्या नहीं समा सकता, अर्थात् समुद्र इतना विशाल है कि उसमें सब कुछ समा जाता है। समुद्र कवि के लिए विशालता का प्रतीक है।

कृसधन सखहि न देब दुख, मुएहुँ न मागब नीच।
तुलसी सज्जन की रहनि पावक पानी बीच ॥[86]

सज्जनों को माँगने में कष्ट होता है। नीच से माँगने पर उन्हें जल में डूबने के समान कष्ट होता है और सज्जन से माँगने पर आग में जलने के समान कष्ट होता है। आग में जलना और पानी में डूबना दोनों ही अत्यन्त पीड़ादायक हैं। प्राकृतिक उपकरणों के माध्यम से कवि ने नीति-प्रतिपादन किया है।

मानस सलिल सुधाँ प्रतिपाली। जियइ कि लवन पयोधि मराली।
नव रसाल बन बिहरनसीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला ॥[87]

मानसरोवर के अमृतरूपी जल में रहने वाली हंसनी कहीं समुद्र के खारे पानी में रह सकती है? सामान्य सुखमय वातावरण में रहने वाला व्यक्ति अकस्मात् दुःखमय वातावरण में नहीं रह सकता। समुद्र का पानी खारा होता है, वह पीने योग्य नहीं होता। हंसनी इतनी कोमल होती है कि खारे उपद्रवी समुद्र में नहीं रह सकती।

राम के लिए 'कृपासिन्धु' का प्रयोग भी कवि ने बार-बार किया है। समुद्र

विशालता और असीमता का परिचायक है। विरह को भी समुद्र के समान विशाल बताया गया है।

सरोवर

जेहि सर काक कंक बक सकर, क्यों मराल तहं आबत।
जाकी सरन जाइ कोविद दारुन त्रयताप बुझावत ॥[88]

मेरे हृदय तड़ाग में विषय रूपी गन्दला जल भरा हुआ है। यहाँ तालाब और उसमें रहने वाले प्राणियों के साथ रूपक बाँधकर कवि ने दर्शन जैसे नीरस विषय को भी सरस बना दिया है। इसमें बगुले, कौए आदि बुरी प्रवृत्तियों को प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार तालाब और उसमें होने वाले क्रिया-कलापों को रूपक अलंकार द्वारा प्रस्तुत किया है।

प्रकृति

सुमति भूमि.......................मीन मनोहर ते बहु भाँति।[89]

यह रूपक, अलंकृत प्रकृति-चित्रण का श्रेष्ठ निदर्शन है। इस सुन्दर स्फीत एवं अतीव विशद सांगरूप का समता करने वाला सांगरूपक दुर्लभ है। इसमें भाव के साथ भी पूरा न्याय है, अलंकार के साथ भी पूरा न्याय किया गया है।

बर बिराज मंडप महं बिस्व बिमोहइ।
ऋतु बसन्त वन मध्य मदनु बनु सोहइ ॥[90]

राम मण्डप में विराजमान होकर संसार को मोहित कर रहे हैं, मानो कामदेव वसन्त ऋतु में वन में विराजमान हों। वसन्त ऋतु में प्रकृति का यौवन चरमोत्कर्ष पर होता है।

सम सुवरन सुषमाकर सुखद न थोर।
सीय अंग ससि कोमल कनक कठोर ॥[91]

सीता के अंग स्वर्ण के समान सुख की खान हैं, लेकिन सीता के अंग कोमल हैं और स्वर्ण कठोर है। सीता के अंगों की सुकुमारता और प्रभावशाली हो गई है, स्वर्ण को उसके सामने हीन बताया गया है। यहाँ व्यतिरेक अलंकार है।

मुनि तापस जिन्ह तें दुख लहहीं। ते नरेस बिनु पावक दहहीं ॥[92]

जो तपस्वियों को दुःख देते हैं, वे अग्नि के बिना भी जल जाते हैं। अग्नि के बिना जलना असम्भव है। यहाँ प्रसिद्ध कारण के बिना ज्वलन-कार्य होने से विभावना है। तपस्वियों की हाय अग्नि के समान होती है, इसलिए वह जला डालती है।

फूलइ फलइ न बेंत, जदपि सुधा बरषहिं जलद।
मूरुख हृदयँ न चेत, जौं गुर मिलहि बिरंचि राम ॥[93]

ब्रह्मा के समान योग्य गुरु मिल जाने पर भी मूर्ख के हृदय में ज्ञान नहीं होता, बादल चाहे अमृत की वर्षा ही क्यों न कर दे किन्तु बेंत नहीं फलता। वर्षा के जल से सारी वनस्पति हरी-भरी हो जाती है, लेकिन बेंत उस वर्षा में भी नहीं पनपता। कारण के विद्यमान होने पर भी कार्य नहीं होता, अतः विशेषोक्ति अलंकार है।

देखें बर बापिका तड़ाग बाग की बनाव ॥
रागवस मो बिरागी पवनकुमार सो ॥[94]

उत्तम बाग, बावली, तालाब को देखकर हनुमान जैसे वैराग्यवान भी राग के वशीभूत हो गए। प्रकृति का मनुष्य पर बहुत प्रभाव होता है। उसके सान्निध्य में मनुष्य अपार शान्ति और सुख का अनुभव करता है। प्रकृति के विभिन्न क्रियाकलापों से प्रभावित होकर मनुष्य अपना स्वभाव तक बदल लेता है। राग और विराग का संयोग है, इसमें विषम अलंकार है।

कोउ कह नर नारायन हरिहर कोउ।
कोउ कह बिहरत बन मधु मनसिज दोउ।[95]

राम-लक्ष्मण को देखने पर कोई कहता है कि ये नर और नारायण ऋषि हैं और कोई कहता है कि ये विष्णु और शिव हैं, कोई कहता है कि वन में वसन्त और कामदेव विहार कर रहे हैं। वसन्त में प्रकृति का सौन्दर्य अपनी पराकाष्ठा पर होता है। उससे अधिक सौन्दर्य से युक्त प्रकृति किसी अन्य ऋतु में नहीं होती।

बादल, बिजली

गरजत घोर बारिधर पावत, प्रेरित प्रबल समीर,
बार बार पवि पात उपल घन बरणत बूँद बिसाल।[96]

ब्रज पर घुमड़-घुमड़कर बादल आ गए हैं। दसों दिशाओं में बिजली दुस्सह रूप में दमक रही है। आकाश में गम्भीर अन्धकार छा गया है। बार-बार वज्रपात होता है। पत्थर और बड़ी-बड़ी बूँदों की वर्षा हो रही है। सारा वर्णन ही अत्युक्तिपूर्ण है।

लागे झरोखन्ह झाँकहिं भूपतिं भामिनी।
कहत बचन रद लसहि दमक जनु दामिनी ॥[97]

स्वयंवर के समय राजमहिलाएँ झरोखों से लगकर झाँक रही हैं और बात करते समय उनके दाँत ऐसे चमक रहे हैं, जैसे बिजली। बिजली अचानक चमकती है और लुप्त हो जाती है, उसी प्रकार जब मुख खोलती है तो बात करने के लिए दाँत चमकते हैं। इसीलिए बिजली का उपमान कवि ने किया है।

राम नाम अवलम्ब बिनु, परमारथ की आस।
बरषत बारिद बूँद गहि, चाहत चढ़न अकास।[98]

जिस प्रकार बूँद को पकड़कर आकाश में चढ़ना असम्भव है, उसी प्रकार

राम-नाम अवलम्बन बिना परमार्थ की आशा करना असम्भव है। वर्षा वर्णन द्वारा कवि ने अपनी बात स्पष्ट की है।

तुलसी बुझाइ एक राम घनस्याम ही तें।
जागि बड़वानि ते बड़ी है आगि पेट की।[99]

पेट की आग बड़वाग्नि से भी बड़ी है। यह रामरूप श्याम मेघ (पानी से भरे हुए बादल) द्वारा ही बुझाई जा सकती है। श्यामघन साभिप्राय विशेषण है, परिकर अलंकार है।

कैधों व्योम वीथिका भरे हैं, भूरि धूमकेतु
वीर रस वीर तरवारि-सी उधारी है।[100]

हनुमान की जलती हुई पूँछ के सादृश्य के आधार पर व्योम में काल-रसना, सुरेश- चाप, दामिनी, कृसानु आदि प्राकृतिक वस्तुओं का सन्देह होता है। इन प्राकृतिक वस्तुओं के उल्लेख द्वारा हनुमान के पराक्रम तथा अग्नि की प्रचण्डता को उत्कर्ष प्राप्त हुआ है।

'तुलसी' सुन्यो न कान सलिल सर्पी-समान
अति अचरज कियो केसरी कुमार।[101]

बादल इधर तो अग्नि की लपटों से जले जाते हैं और उधर उनके शरीर ग्लानि से गले जाते हैं। सब मेघ शुष्क होकर पुकारने लगे, हमने बारहों सूर्य देखे, प्रलय की अग्नि देखी, शेष के मुख की ज्वाला देखी परन्तु जल को घृत के समान नहीं देखा। यहाँ मेघों का शुष्क होना और जल को घृत बताना इनमें प्रकृति का निषेध करके अप्रकृत की स्थापना की है। इसलिए अपन्हुति अलंकार है।

राम के लिए श्याम घन का विशेषण बार-बार प्रयोग किया गया है। जिस प्रकार बादल जल की वर्षा करते हैं, उसी प्रकार राम प्रेम की कृपा की वर्षा करते हैं। विनय-पत्रिका, मानस, दोहावली, सभी में राम के लिए 'श्याम घन' विशेषण का प्रयोग किया गया है। वर्षा के समय बिजली भी चमकती है। इसका उल्लेख 'जानकी मंगल' में अलंकार सौन्दर्य को प्रकट करने के लिए किया है। अन्य रचनाओं में इसका प्रयोग उपदेशात्मक चित्रण के लिए अधिक हुआ है। 'कृष्ण गीतावली' में प्रलयंकारी वर्षा का चित्रण है। मेघ जीवनदायी जल की वर्षा करते हैं, मानव-जीवन में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

पर्वत

तीखी तुरा तुलसी कहतो पै हिये उपमा को समाउ न आयो।
मानो प्रतच्छ परव्यत को नभ ठीक लसी कपि यों घुमि आयो॥[102]

यहाँ हनुमान की तीव्र गति का चित्रण करने में तुलसी ने एक ऐसी उत्प्रेक्षा की

है, जिससे क्रिया की तीव्रता के अनुभव के साथ-साथ ही कवि की प्रकृति की पर्यवेक्षिणी प्रवृत्ति का भी परिचय मिलता है। कार्य-व्यापार का चित्रण करते समय कभी-कभी ऐसे प्रसंग भी मिलते हैं जहाँ कवि अपनी सहानुभूति द्वारा पशु-पक्षी ही नहीं वरन् पर्वत जैसे निर्जीव पदार्थों के सहज व्यापारों में भी किसी अभिप्राय की ध्वनि प्रस्तुत करता है।

सुभग उर दधि-बूँद सुन्दर सखि अपनपो बारु।
मनहुँ मरकत मृदु सिखर पर लसत विषद तुषारु॥[103]

सुन्दर वक्षस्थल पर सुन्दर दही की बूँदें सुन्दर लगती हैं। ऐसा लगता है कि मरकतमणिमय कोमल पहाड़ के शिखर पर उज्ज्वल तुषार के कण शोभा दे रहे हैं। मरकत मणि बहुत मूल्यवान और नीले रंग की आभा वाली होती है। उस पर पड़ी हुई ओस की बूँदें सुन्दरता का भी सौन्दर्य बढ़ा देती हैं। यहाँ कृष्ण के शरीर पर मरकतमणि और दही की बूँदों पर तुषार के कणों की उत्प्रेक्षा की गई है।

प्रमुख सादृश्यमूलक अलंकारों के विवेचन के आधार पर पता चलता है कि इन अलंकारों का तुलसी ने सर्वाधिक परिमाण में तथा पूर्ण मनोयोग से विन्यास किया है। कवि ने इन अलंकारों के लिए उपमानों का चुनाव अधिकतर प्रकृति से किया है। प्रकृति के अवयवों को ही सुन्दर रूप से अपने काव्य में स्थान दिया है। तुलसी ने अपनी अलौकिक प्रतिभा से प्रकृति के परम्परायुक्त उपमानों में नई जान डाल दी है। तुलसी का मौलिक प्राकृतिक उपमान-विधान हिन्दी साहित्य का गौरव है। सादृश्य और साधर्म्य दोनों के ही पूर्ण निर्वाह का जैसा सहज कौशल तुलसी के सादृश्यमूलक अलंकारों में देखने को मिलता है, वैसा हिन्दी साहित्य में दुर्लभ है। तुलसी ने प्रकृति-प्रेम को स्वीकार कर काव्य में उसका नवीन प्रयोग किया है। उनके वर्णन में परम्परा का पालन मात्र ही नहीं, उसमें सौन्दर्य, काव्यशास्त्र और संवेदना के भी दर्शन होते हैं। तुलसी का प्रकृति-वर्णन सहज और सूक्ष्म दर्शन से युक्त है। विशेष रूप से मानस, गीतावली, कवितावली में प्रकृति का बहुत ही सुन्दर चित्रण हुआ है। प्रथम वे भक्त हैं, इसलिए अध्यात्मतत्त्व उनकी आँखों से कहीं भी ओझल नहीं हो पाता।

प्रकृति के अलंकार रूप में उसके अन्य रूप समाविष्ट हो जाते हैं। प्रकृत रूप में कवि अपने कथन की पुष्टि अलंकार द्वारा करता है, जबकि उसका मूल ध्येय उपदेश-वर्णन या दर्शन की व्याख्या अथवा भक्ति का प्रतिपादन करना होता है। सौन्दर्य-वर्णन में भी ये बातें सूक्ष्म रूप से समाविष्ट हो जाती हैं। मानव के विचार उसकी रचना में प्रतिभासित होते हैं। इन दुरुह विषयों को सुन्दर, स्पष्ट एवं हृदयग्राही बनाने के लिए कवि के मुख से अलंकार प्रस्फुटित होते हैं। तुलसी भक्त कवि हैं, वे ईश्वर के सगुण रूप का वर्णन तन्मयता से करते हैं और उनकी उपमा कमल एवं नीले

बादल से देते हैं। अलंकार-वर्णन में प्रकृति पूर्ण सहायक है। राम के अंगों की श्रेष्ठता और स्वभाव की कोमलता को प्रदर्शित करने के लिए वन में प्रतिष्ठित वसन्त से रूपक बाँधकर उनका वर्णन कवि ने किया है। राम की शक्ति एवं महान् कार्यों की उत्प्रेक्षा प्रकृति के तेजोमय रूप, सूर्य या अग्नि से की गई है। प्रकृति कवि का जीवन है, वह कवि-हृदय में रस का संचार करती है।

उपदेश देने अथवा अपनी बात सुगम रूप से कहने के लिए कवि दृष्टान्त, उदाहरण या अर्थान्तरन्यास अलंकारों का प्रयोग करता है। कवि बगुला भक्तों या कौवे जैसे कुटिल व्यक्तियों का उदाहरण देकर जीवन में असत्य की असारता को बताता है और कुटिलता दूर करने का उपदेश देता है। बादलों के झुकने एवं बरसने से दान प्रवृत्ति का दृष्टान्त देकर दान एवं नम्रता की महिमा कवि प्रदर्शित करता है। प्रकृति में अलंकार और उपदेश इतने मिलजुल जाते हैं कि मानव-हृदय द्रवित हो जाता है, उनके कथनों को आत्मसात करने की चेष्टा करता है। दर्शन को व्यक्त करने के लिए कवि ने भ्रान्तिमान, असंगति, विभावना अलंकारों को काव्य में स्थान दिया है। रस्सी में साँप का भ्रम होगा, बिना नेत्रों के जब जड़ चेतन जगत देख सकना, संसार की असारता और फिर उसे सब समझना, यह सब अलंकारों के माध्यम से प्रकृति का आश्रय लेकर कवि ने उपदेश दिया है। इस प्रकार कवि का अलंकार-सौन्दर्य और प्रकृति पर पूर्ण प्रभुत्व दृष्टिगोचर होता है। तुलसी की अलंकार योजना हिन्दी-साहित्य की अमूल्य निधि है। उनके अलंकार, शास्त्रीय दृष्टि की अपेक्षा भाव और सौन्दर्य के कारण अधिक हृदयग्राही हैं। केवल प्रकृति-वर्णन के लिए या स्वतन्त्र सौन्दर्य-चित्रण के लिए कवि ने 'स्वभावोक्ति' अलंकार का प्रयोग किया है, चित्रकूट के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन इसी के अन्तर्गत है। जो हृदय सुन्दरता से द्रवित नहीं होता, उसका आनन्द नहीं ले सकता, वह पत्थर का है और यदि वह हृदय पत्थर का है तो उसमें दया, अहिंसा, प्यार, दान आदि जैसे सद्गुण भी नहीं हो सकते। सौन्दर्य का पुजारी स्वतः ही सद्गुणों से युक्त होता है। प्रकृति के माध्यम से सद्गुणों का कवि ने विकास किया है। राम नीलकमल, मेघसमूह तथा मरकतमणि के समान हैं। उनकी भक्ति का कवि ने उपदेश दिया है। ईश्वर सौन्दर्यशाली है, दर्शनीय है, इसलिए भी कवि को प्रकृति का प्रत्येक सुन्दर वस्तु में उनके दर्शन होते हैं और वह उस सर्वशक्तिमान की तुलना भी उन्हीं प्राकृतिक अवयवों से करने लगता है। प्रकृति पग-पग पर कवि के साथ रहा है, अपने काव्य को हृदयग्राही बनाने के लिए कवि ने प्राकृतिक अवयवों का भरपूर प्रयोग किया है। गोस्वामी तुलसीदास का प्रकृति-चित्रण दर्शन से परिपुष्ट, सौन्दर्य से देदीप्यमान एवं नैतिक उपदेश से मुखरित होता है, वे प्रकृति में अपने उपास्य की प्रतिच्छाया देखकर मुग्ध हो जाते हैं ओर प्राकृतिक क्रिया-कलापों में श्रीराम की मर्यादा का प्रतिबिम्ब प्राप्त करते हैं।

सन्दर्भ

1. दोहावली, 107
2. रामचरितमानस, 6/70/1
3. वही, 6/79/2
4. वही, 1/267/दो.
5. वही, 6/92/4
6. दोहावली, 495
7. पं. चन्द्रवली पाण्डेय : तुलसी, पृ. 284
8. रामचरितमानस, 7/39/1
9. वही, 2/7/4
10. वही, 1/259/4
11. विनयपत्रिका, 42/2
12. वही, 142/4
13. वही, 222/4
14. कवितावली, 6/49/4
15. हनुमान वाहुक, 17/3
16. विनयपत्रिका, 127/3
17. रामचरितमानस, 1/258/दो.
18. पार्वतीमंगल, 14 दो.
19. गीतावली, 2/86/4
20. वही, 2/86/4
21. जानकीमंगल, 104
22. दोहावली, 138
23. विनयपत्रिका, 115
24. दोहावली, 245
25. रामचरितमानस, 2/30/5, 7
26. वही, 3/29/7
27. कवितावली, 2/27/4
28. कृष्ण गीतावली, 58
29. विनयपत्रिका, 117/5
30. रामचरितमानस, 1/3/10
31. दोहावली, 334
32. रामचरितमानस, 1/256/9
33. वही, 2/143/3
34. दोहावली, 333
35. रामचरितमानस, 2/204/1
36. गीतावली, 1/25/1
37. कवितावली, 1/1/34
38. रामचरितमानस, 5/36/5
39. गीतावली, 2/12/4
40. दोहावली, 229
41. रामचरितमानस, 1/358/1
42. वही, 1/264/3, 4
43. कवितावली, 6/48/1
44. कृष्ण गीतावली, 51/1
45. रामचरितमानस, 7/9
46. विनयपत्रिका, 63/3-4
47. वरवै रामायण, 1/10
48. गीतावली, 2/29/1
49. गीतावली, 5/44/5
50. रामचरितमानस, 2/64/1
51. बरवै रामायण, 1/1
52. रामचरितमानस, 5/58/दो.
53. कवितावली, 2/3/4
54. बरवै रामायण, 1/5
55. रामचरितमानस, 1/3/10
56. वही, 7/9/9
57. वही, 1/254-255/2
58. गीतावली, 1/104/2
59. वही, 5/48/3
60. कवितावली, 2/22/4
61. कवितावली, 5/3/4
62. रामचरितमानस, 1/204/8
63. दोहावली, 193
64. रामचरितमानस, 1/123/9
65. कवितावली, 2/13/4
66. कृष्ण गीतावली, 22/2
67. रामचरितमानस, 1/325/4, 5
68. रामचरितमानस, 2/209/1
69. वही, 2/50/11, 12
70. कृष्ण गीतावली, 31/1

71. विनयपत्रिका, 25/1
72. कवितावली, 2/13/4.
73. रामचरितमानस, 2/34/1, 2
74. वही 2/105/2, 4
75. विनयपत्रिका, 90/1
76. वही, 63/3
77. बरवै रामायण, 42
78. रामचरितमानस, 2/65/3, 4
79. दोहावली, 498
80. रामचरितमानस, 1/85/1
81. वही, 1/11/8
82. गीतावली, 2/9/2
83. रामचरितमानस, 2/231/दो.
84. वही, 7/84/दो.
85. वही, 2/47/9
86. दोहावली, 335
87. रामचरितमानस, 2/63/6
88. विनयपत्रिका, 185/3
89. रामचरितमानस, 1/37 छन्द
90. जानकीमंगल, 138 दो.
91. बरवै रामायण, 1/10
92. रामचरितमानस, 2/126/2
93. दोहावली, 484
94. कवितावली, 5/1/3
95. बरवै रामायण, 7/22
96. कृष्ण गीतावली, 18/34
97. जानकीमंगल, 104
98. दोहावली, 20
99. कवितावली, 7/96/4
100. वही, 5/5/1
101. वही, 5/20/1
102. वही, 1/482
103. कृष्ण गीतावली, 14/3

6

तुलसी-काव्य में प्रकृति का बिम्बात्मक रूप-योजना

वर्ण्य-विषय के सम्प्रेषण तथा सफल, सार्थक अभिव्यंजना के लिए कवि किसी अन्य साधन का उपयोग करे या न करे, बिम्बों का माध्यम वह अवश्य ग्रहण करता है। कवि की भावानुभूति, वैचारिक दिशा, अनुभव अध्ययन, जीवनदृष्टि, संस्कृति आदि के दाय से सम्पुष्ट बिम्बात्मक अभिव्यक्ति उसके कथ्य को पाठक के निकट स्पष्ट एवं सुव्यक्त करती है। कवि ने जिस परिवेश में कालयापन किया है, जीवन में जो कुछ अनुभवगोचर हुआ है, जो कुछ उसके अन्तर्मन पर अपनी छाप छोड़ गया है, सभी कुछ उसके बिम्बों का घटक होता है।

तुलसी के बिम्बों के चयन क्षेत्रों के आधार पर हम उनके बिम्बों को दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं—

1. प्रकृति के क्षेत्र से गृहीत बिम्ब
2. जीवन से गृहीत बिम्ब

प्रकृति के परिवेश में गृहीत बिम्बों के पुनः आठ वर्ग बनाए जा सकते है—जलीय, आकाशीय, पार्थिव, वायव्य, तेजस, जीवजन्तु-सम्बन्धी, ऋतु एवं काल सम्बन्धी, एकाधिक वर्गों से सम्बद्ध।

जलीय बिम्ब—ये बिम्ब सागर, नदी, सरोवर, जलीय पुष्प कमल, पंक, जल, तरंग सेतु, पोत तथा जल-भँवर विषयक हैं। तुलसी में जलीय बिम्बों में सर्वाधिक संख्या सागरीय बिम्बों की है। सामान्यतः कवि सागर की अथाहता तथा विशालता के गुणों से प्रभावित है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने विपुलकाय नदियों तथा अधीत ग्रन्थों के आधार पर सागर के सम्बन्ध में धारणा बनाई है। वह सागर के स्वरूप का कोई चित्र उपस्थित नहीं करता। अधिकांशतः विशालता तथा अगाधता की ही चर्चा करता है—

नाथ जथामति भाषेउँ राखेउँ नहिं कछु गोइ।
चरित सिन्धु रघुनायक थाह कि पावइ कोइ॥[1]

एक स्थान पर तुलसी ने समुद्र का अत्यन्त सुन्दर तथा भावात्मक बिम्ब दिया है। राम की बारात का स्वागत करने के लिए पुरवासी सोत्साह अग्रसर होते हैं। कुछ लोग अश्वों की वल्गा छोड़ देते हैं। उनका वेग प्रबल है। दोनों पक्षों का मिलन ऐसा

प्रतीत होता है मानो दो आनन्दसागर, अपनी बेलाओं का त्याग कर, मिल गए हों—

हरषि परसपर मिलन हित कदुक चले बगमेल।
जनु आनन्द-समुद्र दुइ मिलत बिहाइ सुबेल॥[2]

राम-भक्तों के श्रवण समुद्र के समान हैं जो निरन्तर कथा-सरिताओं से आपूर्यमान रहने पर भी मरते नहीं। परोत्कर्ष से प्रहृष्ट होने वाले सज्जन उदधि के तुल्य हैं, जो चन्द्र की पूर्ण वृद्धि से आनन्दित होता है—

जग बहु नर सर सरि सम भाई। जे निज बाढ़ बढ़हि जल पाई॥
सज्जन सकृत सिन्धु एन कोई। देखि पूर बिधु बाढ़ए जोई॥[3]

सागर के नदी, सेतु आदि का भी बिम्ब तुलसी निरन्तर देते हैं। इन्द्र द्वारा प्रयुक्त उच्चाटन से उत्पन्न अयोध्यावासियों की दुचिती स्थिति की तुलना नदी तथा सागर के संगमस्थल की विक्षुब्ध जलराशि से की गई है। संसार रूपी समुद्र की चर्चा तुलसी ने बार-बार की है। वे भवसागर से तरने के लिए सन्तों के चरणों, राम-भक्ति, सत्संगति आदि को नौका के समान बताते हैं। सागर एवं पोत का युगपत व्यवहार भी तुलसी का प्रिय अप्रस्तुत है। साथ ही अधिकांश स्थलों पर बिम्बविधायी भी। यह बिम्ब कविसमय-सिद्ध है, प्रत्यक्ष दृष्ट नहीं।

तुलसी के जलीय बिम्बों में नदी विषयक बिम्ब सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। वे नदी के बड़े-बड़े संश्लिष्ट बिम्ब भी देते हैं तथा लब्धाकार एकल बिम्ब भी। नदी के संश्लिष्ट बिम्बों में उसका प्रवाह, कगार, तटवर्ती वृक्ष, उसका उत्स पर्वत, लक्ष्य सागर आदि सभी कुछ अन्तर्निविष्ट रहता है—

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी। मानहुँ रोष तरंगिनी बाढ़ी॥
पाप पहार प्रगट भई सोई। भरी क्रोध जल जाइ न जोई॥
दोउ बर कूल कठिन हठ धारा। भँवर-कूबरी-बचन प्रचारा॥
ढाहत भूपरूप तरु मूला। चली विपति बारिधि अनुकूला॥[4]

इन दीर्घाकार बिम्बों में नदी का स्वरूप पूरे अनुषंगों के साथ उपस्थित हो जाता है। नदी के एकल अश्लिष्ट बिम्बों से कवि सामान्यतः अमूर्त भावों को रूपायित करता है—

रिपु-रिस घोर नदी विवेक बल, वीर सहित हुते जाते बहे री।
स्वै मुदिका-टेक तेहि ओसर सुचि समीर सुत पेरि गहे री॥[5]

अन्तर्द्वन्द्व, भावाधिक्य आदि की स्थिति को तुलसी भँवर के बिम्ब से स्पष्ट करते हैं। डूबते तथा तैरकर थकते को थाह-सी मिल जाने के द्वारा कवि निराशा से उबरने को अंकित करता है। नदियों का सागर की ओर उमड़कर आना भी बिम्ब-विधायक है। कवि पुरुष-थिरहित स्त्री की तुलना जलहीन नदी से करता है। कविता, भक्ति,

कीर्ति आदि के लिए भी तुलसी ने नदी के बिम्ब प्रस्तुत किए हैं। सुप्रसिद्ध मानसरूपक में संयोजित काव्यसरिता भक्ति-सुर-सरिता का वर्णन है।

नदियों में तुलसी गंगा का बिम्ब अधिकांशतः उदात्त भावों तथा सन्त जनों के सन्दर्भ में उपस्थित करते हैं। तुलसी ने नदी को युद्ध, विरह, स्नेह, व्यथा, भव आदि के लिए भी पुनः पुनः अप्रस्तुत बनाया है।

सरोवर के बिम्बों का उपयोग भी तुलसी ने बहुशः किया है। मानसरोवर के अतिरिक्त अन्यत्र भी सरोवरों के चित्र उपलब्ध होते हैं। गरुड़ को राम की कथा सुनाते हुए काकभुशुण्डी राम-चरित्र को सरोवर कहते हैं—

राम चरित सर सुन्दर स्वामी।[6]

राम-प्रेम रहित हृदय को तुलसी जलहीन सरोवर के तुल्य निष्फल कहते हैं। विवाह के अवसर पर राम जनकपुर में पिता दशरथ से ऐसे मिलने जाते हैं जैसे पिपासित व्यक्ति सरोवर की ओर जाय—

चले जहाँ दसरथु जनवासे। मनहुँ सरोबर तकेउ पिआसे।[7]

राम वियोग में दशरथ की इन्द्रियाँ इस प्रकार व्याकुल होती हैं, जिस प्रकार जलहीन सरोवर में कमल-वन। सकमल सरोवरों के बिम्ब भी तुलसी ने दिए हैं।

जलीय पुष्प कमल का तुलसी ने उपमानरूप में अत्यधिक व्यवहार किया है। किन्तु समग्र भारतीय साहित्य में कमल का व्यवहार इतनी अधिक मात्रा में हुआ है कि इसकी बिम्बोद्बोध-क्षमता नष्टप्राय हो गई है। कुछ विशेष तथा अनुरूप स्थितियों में कमल-बिम्ब सौन्दर्य विधायक होता है। अन्यथा या तो निष्प्राण उपमान होकर रह जाता है या सामान्य विशेषण मात्र। तुलसी द्वारा कमल का उपयोग, यद्यपि सर्वत्र तो नहीं तथापि अनेकत्र बिम्ब-निर्माण हो सका है। वे नेत्र, मुख, वर्ण, अंग-सौकुमार्य, हस्त, चरण तथा हृदय आदि के लिए कमल का प्रयोग करते हैं। कहीं-कहीं राम के सुन्दर श्याम शरीर की उपमा नील कमलों से दी गई है—

श्याम तामरस दाम शरीरं।[8]

शोकहत होने के भाव को तुषारहत कमलवन के द्वारा प्रकट किया गया है।

शोक मगन सब समां खमरु। मनहु कमल का परेउ तुसारु॥[9]

राम वियोग से पीड़ित राजा को जड़ से उच्छिन्न कमल के तुल्य बताया गया है। विवाह के अवसर पर राम के वामांग में विराजमान सीता ऐसी प्रतीत हो रही है मानो नील कमल के समीप कंचन-कमल की कलिका। सीता के लिए अन्यत्र भी कवि कमल-कलिका का सादृश्य विधान उपस्थित करते हैं। अग्नि परीक्षा के उपरान्त सीता राम के निकट विद्यमान हैं। कवि उस प्रसंग में सीता को नीलकमल की उपवर्तिनी स्वर्ण कमल-कलिका कहता है। कमल नाल को भी कवि उपमान की भाँति प्रयुक्त करता है। जनक के द्वारा स्वयंवर-सभा में उपस्थित राजाओं की विगर्हणा सुनकर

उद्दीप्त-रोष लक्ष्मण उद्घोष करते हैं—

कमलनाल जिमि चाप चढ़ावौं।[10]

तुलसी पोत, नौका एवं बेड़े का बिम्ब भी पर्याप्त देते हैं। परन्तु ये सामान्यतः नदी अथवा सागर के सन्दर्भ में ही दिए गए हैं। कहीं-कहीं स्वतन्त्र रूप से भी इनका प्रयोग हुआ है। नदियों की तरंगों के द्वारा भी बिम्ब-विधान किया गया है। राम तथा सीता की अभिन्नता को दिखाने के लिए जल एवं लहरों की एकरूपता को ही उपमान बनाया गया है। पंक द्वारा भी तुलसी ने बिम्ब निर्माण किया है। राम से मिलने चित्रकूट जाते समय भरत का हृदय तो मानो आगे-आगे चलता है, किन्तु चरण संकोच-पंक में गड़ जाते हैं।

पवित्रता, मसृणता, निर्मलता तथा शैल्य आदि के प्रसंग में जल के बिम्ब का प्रयोग किया गया है। विशुद्धीकरण के लिए जल से प्रक्षालन के बिम्ब मिलते हैं। वन गमन के अवसर पर राजकीय अलंकरणों तथा वस्त्रों से रहित राम की शरीर-शोभा की उपमा शैवाल विनिर्मुक्त जल से दी गई है—

सरीरु लरयो तजि नीरु ज्यों काई।[11]

अस्थिरता तथा व्यर्थता की अभिव्यक्ति के लिए भी जल की चिकनाई का बिम्ब दिया गया है।

वस्तुतः तुलसी के जलीय बिम्ब विशेष पूर्णता लिए हुए हैं। कवि अधिकतर प्रभावसाम्य तथा गुणसाम्य के आधार पर जलीय बिम्ब प्रस्तुत करता है। ये बिम्ब अधिकांशतः समग्रतापूर्ण हैं एवं तुलसी की निरीक्षण-क्षमता तथा एक ही उपादान के विविध पक्षों से बहुविध बिम्ब निर्माण-सामर्थ्य का प्रमाण देते हैं।

आकाशीय बिम्ब—तुलसी ने विशाल मात्रा में आकाशीय बिम्बों क़ा प्रयोग किया है। आकाशीय बिम्बों में सर्वाधिक विशाल संख्या सूर्य सम्बन्धी बिम्बों की है। सूर्य के तेज, प्रभाव, प्रकाश, किरणों आदि विशेषताओं का उपयोग तुलसी के बिम्बों का कलेवर गढ़ता है। राम को कवि अधिकतर तेजस्वी सूर्य के उपमान से अलंकृत करता है। कहीं उनको भानुकुल का भानु कहा गया है तो कहीं प्रभाव का प्रभाकर। तुलसी राम को मोहरूपी रात्रि का सूर्य कहते हैं। वे सूर्य तुल्य तेजवान हैं तथा संशय, शोकरूप अन्धकार का विनाश करते हैं।

संसय सोक निबिड़ तम भानुहि। दनुज गहन घन दहन कृसानुहि ॥[12]

तुलसी सूर्योदय के बिम्ब भी एकाधिक आवृत्त करते हैं। 'गीतावली' में स्वयंवर सभा में विश्वामित्र के साथ उपस्थित राम-लक्ष्मण को कवि मोर का मृदुकर सूर्य कहता है, जो अपने समस्त तेज को स्वयं में ही अन्तर्हित किए लोचन-सुखद प्रतीत होता है—

उदय-सैल सोहैं सुन्दर कुँवर, जोहैं।
मानौ भानु भोर भूरि किरनि छिपाइकै।[13]

एक रूपक में तुलसी वार्द्धक्य को दिशा तथा काल को सूर्य कहते हैं। सूर्योदय की बेला जागरण की बेला है, अतः कालरूपी सूर्य के उदित होने पर तो जीव को जागना चाहिए—

जरठाइ-दिसां रवि-काल उग्यो, अजहुँ जड़ जीव न जागहि रे।[14]

तुलसी सूर्य-किरणों से भी बिम्ब बनाते हैं। गुरु के वचन मोह रूपी अन्धकार को दूर करने वाले सूर्य-किरण कहे गए हैं। शिव भी अपने वचनों को भ्रम रूपी अन्धकार का विनाश करने वाली सूर्य किरणों के तुल्य बताते हैं। सूर्य के सहज प्रकाशित होने के गुण के आधार पर तुलसी राम-लक्ष्मण के सहज तेजस्वी रूप का ज्ञान कराते हैं। दशरथ की सभा में जनक के दूत कहते हैं—

जिन्ह के जस प्रताप कें आगे। ससि मलीन रबि सीतल लागे।
तिन्ह कहँ कहिअ नाथ किमि चीन्हे। देखिअ रबि कि दीप कर लीन्हे॥[15]

तुलसी सूर्य से विरहादि संतापक गाँवों की व्यंजना भी करते हैं। सूर्य सम्बन्धी बिम्बों में विविधता रहने पर भी, तुलसी सूर्यास्त सम्बन्धी बिम्ब अत्यल्प मात्रा में देते हैं। सूर्यास्त सम्बन्धी एक बिम्ब के द्वारा कवि दशरथ की मृत्यु को व्यंजित करता है—

अँथयउ आजु भानुकुल भानू।[16]

सूर्यवत ही चन्द्र विषयक बिम्ब भी तुलसी साहित्य में प्रचुर हैं। मुख के लिए चन्द्र का प्रयोग इतना रूढ़ हो गया है कि बिम्ब नहीं बन पाता, किन्तु तुलसी चन्द्र के साथ विविध विशेषणों का प्रयोग कर इस सादृश्य-विधान को प्रभावशाली बिम्बात्मकता से मंडित करते हैं—

सरद-बिमल-बिधु बदन बधूटा।

चन्द्र का बिम्ब तुलसी की वर्ण-चेतना का ज्ञापन भी है। वे गंगा-धारा की धवलिमा की व्यंजना के लिए शशि को उपमान रूप में प्रस्तुत करते हैं—

सोहत ससि धवल बिधु बदन बधुटी।[17]

पूर्वाशा में चन्द्रोदय होता है, इस तथ्य के आधार पर भी तुलसी बिम्ब का निर्माण करते हैं। वे कौशल्या की वन्दना करते हुए कहते हैं—

बंदउँ कौसल्या दिसि प्राची। कीरति जासु सकल जग माची।
प्रगटेउ जहं रघुपति ससि चारू। बिस्व सुखद खल कमल तुसारु॥[18]

चन्द्रमा के समाज से अलंकृत रात्रि के बिम्ब से कवि सौन्दर्य तथा उत्कृष्टता की व्यंजना करता है। वह अपनी रचना को शिव की कृपा से उसी प्रकार अलंकृत तथा विभासित कहता है, यथा रात्रि चन्द्र के समाज से सुशोभित हो। चन्द्रमा के कलंक का बिम्ब भी तुलसी ने कई स्थलों पर दिया है। कैकेयी राजकुलोत्पन्न है, पतिगृह भी राजकुल में है, पुत्रवती भी है, तथापि उसके भाग्य में सुख नहीं है, जैसे

चन्द्रमा की देह अमृत घटित होने पर भी वह कलंकी ही है—

देह सुधा गहे, ताहि मृगहूँ मलीन कियो।[19]

तुलसी हास को मुखरूपी चन्द्र की रश्मियाँ कहते हैं। दिन में विवर्ण दिखाई देने वाले शशि को राम के शौर्य के सम्मुख हतवर्ष राजाओं का उपमान बनाया गया है—

तुलसी महीस देखे दिन रजनीस जैसे।[20]

इस प्रसंग से प्रातःकालीन सारकों की क्षीणप्रभता पर भी कवि की दृष्टि पड़ी है। ऐसे बिम्ब अधिकतर प्रभावसाम्य के आधार पर गठित होते हैं। राम के रूप वर्णन में भी तुलसी ने चन्द्र विषयक काल्पनिक बिम्ब योजना का आश्रय लिया है। बालक राम के श्यामल केशों में ग्रथित लटकन के विषय में कवि उत्प्रेक्षा करता है—

गभुआरी अलकावली लसै, लटकन ललित ललाट।
जनु उडुगन बिधु मिलन को, चले तम बिदारि करि बाट॥[21]

सुमन्त्र को दुःखी दशरथ अमृतरहित चन्द्रमा के समान प्रतीत होते हैं। राम-लक्ष्मण के मध्य जनकसुता ऐसी लगती है, जैसे बुद्ध एवं चन्द्रमा के बीच रोहिणी हो। राम को देखकर जनकपुर में एकत्रित राजा-लोग उसी प्रकार क्षीणाम हो जाते हैं, जिस प्रकार चन्द्रोदय पर नक्षत्र-मंडली। चन्द्रमा की शीतलता के आधार पर कवि बिम्ब प्रस्तुत करता है। मेघान्तर्गत सहसा आविर्भूत चन्द्रमा के विमुग्धकारी सौन्दर्य का अंकन भी बिम्ब विधान हेतु हुआ है—

लता भवन तें प्रगट मे, तेहि अवसर दोह माइ।
निकसे जनु जुग बिपल विवु, जलद-पटल बिलगाइ॥[22]

तुलसी ने नक्षत्रों से भी बिम्बों का निर्माण किया है। अन्धकारमयी रात्रि के चित्राधार पर निर्मित नक्षत्र चित्र आकर्षक हैं—

स्रम-सीकर साँवरी देह लसे, मनो रासि-महातम-तारक में॥[23]

तुलसी शरत्कालीन तारकों की विशेष दीप्तिमयता को भी सादृश्य के लिए प्रस्तुत करते हैं। टूटते तारे पर भी कवि ने दृष्टिपात किया है। श्याम शरीर पर सुशोभित गजमुक्ताओं की माला के मध्य पड़े पदिक में वह नवग्रहों द्वारा रचित 'अथाई' की सम्भावना करता है।

तुलसी ने रात्रिकालीन आकाश का बिम्ब कई स्थानों पर प्रयुक्त किया है। ग्रहों में राहु, केतु, मंगल, शनि, शुक्र आदि का बिम्बात्मक प्रयोग किया गया है।उल्का की तीव्र गति के द्वारा भी बिम्ब विधान किया गया है—

लंक लूक सो आयो।[24]

मंगल ग्रह के द्वारा कवि एक रमणीय प्रतिभा का नियोजन करता है। अयोध्या के भवनों के कलशों पर जड़ी द्युतिमयी मणियाँ ऐसी प्रतीत होती हैं, मानो पृथ्वी पर

अनेक लोहितपुर आ गए हों।

प्रस्तुत बिम्ब प्रभा, भास्वरता तथा पूँछ के दीर्घ आकार की सुन्दर व्यंजना करता है। तुषार तथा ओले के प्रयोग से भी तुलसी ने बिम्बविन्यास किया है। तुषार के साथ सामान्यतः सूर्य तथा सूर्यकिरणों का प्रयोग किया गया है। राम-रावण युद्ध में कुछ समय के लिए राम का रथ बाणों से आच्छन्न होने के कारण दृष्टिगोचर नहीं होता, इस स्थिति को तुलसी रवि तथा तुषार के बिम्ब से मूर्तित करते हैं–

दंड एक रथ देखि न परेऊ।
जनु निहार महुँ दिनकर दुरेऊ॥[25]

वे खलों की उपमा वषोपलों से देते हैं जो स्वयं तो नष्ट होते ही हैं, शल्य को भी दल देते हैं। राम को वन पहुँचाकर सुमन्त्र अयोध्या में प्रवेश करते हैं, उनके सूने वेश को देखकर लोग इस प्रकार क्षीण होते हैं जैसे धूप में ओले। आकाशीय बिम्बों में उपादानों के वैविध्य के साथ-साथ उनके प्रयोग में भी बहुरूपता है। तुलसी जलीय बिम्बों के समान ही अपने अनेक पक्षान्तरों द्वारा बिम्ब सर्जन करते हैं। ये व्यक्तियों, वस्तुओं, भावों तथा स्थिति के मूर्त अंकन के सफल एवं सार्थक प्रयोग हैं। इनमें कुछ स्थानों पर परम्परा-नुमोदन तथा कुछ स्थानों पर परम्परा-नुमोदन तथा कुछ स्थलों पर मौलिकता भी गोचर होती है।

पार्थिव बिम्ब--आकाशीय तथा जलीय बिम्बों के समान ही तुलसी पार्थिव बिम्ब उपस्थित करने में भी रुचि लेते हैं। इस प्रसंग में कवि ने एक ओर काव्य परम्परा का सफल प्रयोग किया है तो दूसरी ओर अपने आप देखे चतुर्दिन दृश्यों का अभिनव बिम्ब विधान भी किया है। कवि के दीर्घकालीन चित्रकूट निवास का प्रभाव इस प्रसंग में स्पष्ट दिखाई देता है। पर्वतों, वनों, वृक्षों, पुष्पों, फलों आदि के अतिरिक्त घास, खनिज पदार्थ, मार्ग, कंटक, फूल आदि के सभी सुन्दर बिम्ब तुलसी-साहित्य में हैं। पार्थिव बिम्बों में वृक्षों से सम्बन्धित बिम्ब सर्वाधिक संख्या में हैं। वे विविध प्रकार के वृक्षों के बिम्ब वर्ण, गुण तथा आकार से देते हैं। कल्पवृक्ष यद्यपि पौराणिक कल्पना से सम्बद्ध वृक्ष हैं, किन्तु कवि के अन्तःकरण पर इतनी स्पष्टता और गहराई से अंकित है कि उनके अनेक बिम्ब उनके साहित्य में प्रयुक्त हुए हैं। कल्पवृक्ष का सम्बन्ध प्रायः अभिलाषा-पूर्ति से जोड़ा गया है। इसका प्रयोग मुख्यतः सन्त, सत्संगति, भक्ति, राम-नाम आदि के सन्दर्भ में हुआ है–

आलबाल-अवध, सुकामतरु कामबेलि,
दूरि करि केकई बिपत्ति-बेलि बई है।[26]

कामतरु तथा कामबेलि का स्वतन्त्र अथवा मिलित बिम्ब कवि औदात्यपूर्ण भावों, मान्य व्यक्तियों तथा आनन्दपूर्ण परिस्थितियों के सन्दर्भ में देता है। अनेकशः इस बिम्ब का प्रयोग पूरे आसंगों के साथ हुआ है–

ज़ननि सकल चहुँ ओर आलबाल मनि-अँगनाई।
दसरथ-सुकृत विबुध-बिखा बिलसत, बिलोकि जनु बिधि बर बारि बनाई ॥[27]

केदार, वाड़ तथा वृक्ष तीनों ही इसमें पूरी दृश्यात्मकता के साथ उपस्थिति हैं तथा एक समग्र दृश्य का अंकन करते हैं।

कल्पवृक्ष के अतिरिक्त कवि ने तमाल का भी बिम्ब-विधान के लिए बहुशः उपयोग किया है। इसका प्रयोग राम अथवा विष्णु के श्यामल वर्ण को गोचर कराने के लिए हुआ है। तमाल के समान श्यामल राम के साथ विद्यमान स्वर्णवर्णी सीता के लिए कनकवलली का बिम्ब प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार राम तथा सीता दोनों के वर्ण वैपरीत्य के द्वारा सौन्दर्य को उभारकर प्रस्तुत किया गया है। तुलसी चन्दनवृक्ष का भी बिम्ब रूप में व्यवहार करते हैं। चन्दन का बिम्ब शैत्य, वर्ण तथा अतिघर्षण से अग्नि उत्पन्न होने की सम्भावना के आधार पर वे देते हैं—

सुनु प्रभु बहुत अवग्या किएँ। उपज कोध ग्यानिन्ह के हिएँ।
अति संघरषन जौं कर कोई। अनल प्रगट चन्दन ते होई ॥[28]

तुलसी करुणाशील सन्तों को कपास तथा मषंतरु के समान बताते हैं। जो परार्ध कष्ट भोगते हैं। वे दुष्टों की प्रवृत्ति का मूल्यांकन करने के लिए मन का बिम्ब प्रयुक्त करते हैं। पलाश के पत्रों की चर्चा कवि अस्थिरता तथा विचलित होने की व्यंजना करने के लिए करता है। तुलसी ने शाल कदली वृक्षों के द्वारा भी अनेक बिम्ब निर्मित किए हैं। ताल एवं शाल आकार की दीर्घता को रूपायित करते हैं तथा कदली का उपयोग कभी कम्पन की अभिव्यक्ति करता है, कभी सारहीनता की, काटने पर ही कदली के फलीभूत होने के बिम्ब से दुष्टों के साथ कठोरता के व्यवहार में औचित्य का प्रतिपादन करता है। सिहोरे एवं लजारु के द्वारा कवि दुष्टों तथा निस्तेज व्यक्तियों की व्यंजना करता है। स्पर्श से ही मुरझा जाने वाला छुईमुई का लज्जावन्त बिरवा, स्वयंवर सभा में अकृतार्थ होने के कारण सिर झुकाकर बैठे महीपों की स्पष्ट व्यंजना करता है—

जनक-बचन छुए बिरवा लजारु के से
बीर रहे सकल सकुचि सिर नाइकै।[29]

तुलसी सामान्य वृक्ष को सामान्य लता के सहभाव में तथा स्वतन्त्र रूप में भी बिम्ब विधान के प्रयोजन के लिए प्रयुक्त करते हैं। अरूप भावों के पल्लवन तथा विकास के रूपायन के लिए वृक्ष के फलने-फूलने का बिम्ब प्रस्तुत किया गया है। नारद के हृदय में गर्व-तरु के अंकुरण तथा विष्णु के द्वारा उसके उत्पाटन के लिए सन्नद्धता को इस विषय में प्रमाणस्वरूप उपस्थित किया जा सकता है—

करुनानिधि मन दीख बिचारी। उर अंकुरेउ गरब तरु भारी।
बेगि सो मैं डारिहउँ उखारी। पन हमार सेवक हितकारी ॥[30]

तुलसी साधन, मोह, अभिलाषा, वैर, वीरता तथा स्नेह को भी वृक्ष एवं बिरवा के द्वारा मूर्त करते हैं। तुलसी लोचनों के प्रस्त्रवण से विरह के अंकुरों के सिंचन का बिम्ब भी प्रस्तुत करते हैं। दशरथ की मृत्यु के उपरान्त कातर, दुखित माताएँ, हिमपात से हत वल्लरियाँ-सी प्रतीत होती हैं। कैकेयी के लिए कवि विषवेलि तथा विषफल उत्पन्न करने वाली लता का बिम्ब उपस्थित करता है। तुलसी गूलर, पनस, बिम्बफल, इन्द्रायण, आमलक तूम्बरि तथा बिल्वफल को उपमान रूप में प्रयुक्त कर बिम्ब निर्माण करते हैं। बिम्बाफल तथा आमलक के द्वारा परम्परा स्वीकृत ढंग से ही बिम्ब बनाए गए हैं। शेष फलों के बिम्बों में योजना-पद्धति के कारण विशेष चारुता उत्पन्न हो गई है। अंगद लंका को गूलर के फल के समान बताते हैं, जिसके मध्य राक्षस रूपी कीट निवास करते हैं। वानर स्वभाव से ही फलभक्षण-प्रिय होते हैं अतः अंगद भी लंकारूपी उदुम्बर का भक्षण कर लेते किन्तु राम ने अनुमति नहीं दी। पुलकित, रोमांचित शरीर के हेतु, कंटकित कटहल का बिम्ब विशेष प्रभावशाली सिद्ध हुआ है। कवि ने कटुता के लिए इन्द्रायण का बिम्ब प्रयुक्त किया है तथा गुरु एवं हरि के चरणों में न झुकने वाले शीश को कटु तूम्बी की संज्ञा दी है। तूम्बी का बिम्ब आकार तथा गुण दोनों की स्पष्ट एवं सशक्त व्यंजना करता है। स्थलीय पुष्पों में कवि शिरीष, कुन्द, किंशुक तथा चम्पक के बिम्ब विशेषतः देता है। पुष्पों के बिम्ब तुलसी ने अधिकतर वर्ण तथा सौकुमार्य एवं कहीं-कहीं प्रभावसाम्य की अभिव्यक्ति के लिए दिए हैं। अधरान्वित दन्त पंक्ति के लिए तुलसी सपल्लव कुन्द का बिम्ब देते हैं। पुष्पित किंशुक अधिकतर रक्ताक्त घायलों के लिए प्रयुक्त हुआ है। वस्तुतः स्थल-पुष्पों के बिम्बों का व्यवहार तुलसी ने कम ही किया है। उन्होंने अधिकतर श्वेत, नील पीत तथा रक्त कमल को उपमान रूप में स्वीकार किया है। कहीं पुष्प सामान्य के आधार पर बिम्ब दिया गया है, कहीं-कहीं पुष्प-विशेष के आधार पर।

पार्थिव बिम्बों में पार्वत्य बिम्बों का विशेष महत्त्व है। वे आकार, वर्ण, दृढ़ता तथा कठोरता के प्रतिमान बनकर प्रयुक्त हुए हैं। ये अधिकर निशाचरों के विशाल आकार आदि के द्योतक हैं। नासिका और कर्ण-निपात के कारण विकराल स्वरूप शूर्पणखा गेरु के पनालों से युक्त पर्वत सी भयावनी प्रतीत होती है। राक्षसों के कटकर गिरते हुए धड़ पर्वतों से लगते हैं। जाम्बवन्त से अपनी अतुलित शक्ति के विषय में जानकर हनुमान का आकार पर्वत के समान हो जाता है—

रामकाज लगि तव अवतारा। सुनतहिं भयउ पर्बताकारा ॥
कनक बरन तन तेज बिराजा। मानहुँ अपर गिरिन्ह कर राजा ॥[31]

अंगद को रावण सप्राण कज्जलगिरि जैसा प्रतीत होता है। भुजाओं के कट जाने पर कुम्भकर्ण पक्षहीन मन्दराचल-सा लगता है। राक्षस ही नहीं, वानर भालू भी जब दौड़ते हैं तो अपनी महाकारता के कारण नाना वर्णों के उड़ते महीधरों के तुल्य

आभासित होते हैं—

मानहुँ सपच्छ उड़ाहिं भूधर बृन्द नाना बान ते।[32]

असम्भव को सम्भव करने का प्रयत्न पहाड़ को फूँक से उड़ाने की चेष्टा के द्वारा अंकित किया गया है।

तुलसी के पार्थिव बिम्ब खनिज पदार्थों से भी निर्मित हैं। मरकत, स्पर्शमणि, सूर्यकान्तमणि, स्वर्ण, इन्द्रनील तथा विद्रुप के साथ-साथ काँच, मुक्ता, चिन्तामणि, वज्र माणिक्य, गुंजा आदि के द्वारा निर्मित बिम्बों की संख्या अपार है। खनिज के उपरान्त अन्य वस्तुओं का व्यवहार तुलसी निर्मलता, श्यामता, द्रवणशीलता तथा तुच्छता आदि की व्यंजना के लिए करते हैं। राम के श्यामल वर्ण को तुलसी अधिकांश में मरकत तथा इन्द्रनील के समान बताते हैं तथा सीता के वर्ण की तुलना स्वर्ण से करते हैं। राम, लक्ष्मण तथा सीता के लिए तुलसी एक स्थान पर मरकत तथा स्वर्ण के मध्य स्थित मुक्तामणि का भी उल्लेख करते हैं—

जुगुल बीच सुकुमारि, नारि इक राजति बिनहि सिंगार।
इन्द्रनील, हाटक, मुकुतामनि जनु पहिरे महि हार॥[33]

तुलसी दाँत की शुभ्रता के लिए वज्र का व्यवहार करते हैं। अग्नि में तपकर स्वर्ण के अधिक मास्वर हो उठने का बिम्ब कष्ट सहकर उत्कर्ष प्राप्ति की व्यंजना करता है। चिन्तामणि के द्वारा तुलसी राम तथा भक्ति को व्यक्त करते हैं। चिन्तामणि तथा काँच का साक्षेप प्रयोग उत्तम तथा हीन की अभिव्यक्ति करता है। इसी प्रकार स्पर्श मणि और गुंजा भी इन्हीं के प्रतीक बनते हैं। कृश शरीरिणी सीता हनुमान को ऐसी प्रतीत होती है मानो कामदेव मोहिनी मणि को भूल गया हो—

कृस सरीर सुभाय सोहित, लगी उड़ि उड़ि धूलि।
मनहु मनसिज मोहिनी-मनि गयो भोरे भूलि॥[34]

अश्वों के अतितीव्र वेग को पैरों के तप्त अयस पर पड़ने के बिम्ब से इन्द्रियगोचर कराया गया है। रज एवं तृण का उपयोग कवि लघुता एवं उपेक्षणीयता की अभिव्यक्ति के लिए करता है। क्रोधावेश में लक्ष्मण भरत से प्रतिशोध लेना चाहते हैं, अतः राम से कहते हैं कि अत्यन्त तुच्छ धूल भी अपमानित होने पर सिर पर चढ़ जाती है, फिर मैं तो क्षत्रिय हूँ, आपका भाई हूँ तथा रघुवंशी हूँ—

छत्रि जाति रघुकुल जनमु राम अनुग जगु जान।
लातहुँ मारे चढ़ति सिर नीच को धूरि समान॥[35]

सुग्रीव को बाली तृण के समान उपेक्षणीय समझता है। कवि अरण्य तथा पृथ्वी सम्बन्धी बिम्ब भी देता है। वह अपने पापों को वन के समान विपुलकाय बताता है, जो पुण्यरूपी नख से नहीं कट सकता। ग्राम वधुएँ वन-मार्ग में आशंकित होती हैं कि रामादि के कोमल चरणों के स्पर्श से पृथ्वी संकुचित होती होगी। तुलसी ने भूमि को

आधार तथा दूब को आधेय मानकर भी बिम्ब दिया है, छाया तथा पथ भी तुलसी के बिम्बों के उपादान बने हैं। सम्पत्ति छाया के समान है जो पीठ देने पर उपेक्षा करने पर पीछे लग जाती है, सम्मुख होने पर (कामना करने पर) दूर हो जाती है। तुलसी संसार के लिए मार्ग का बिम्ब उपस्थित करते हैं एवं राम-भजन को राजमार्ग कहते हैं—

गुरु कह्यो राम-भजन नीको मोहिलागत राज-डगरो सो।[36]

तुलसी के पार्थिव बिम्ब अनेक प्रकार के तो हैं ही, प्रयोग विधि की अनेकरूपता तथा विविध विषयों को मूर्तित करने के कारण विशेष महत्त्वपूर्ण भी हैं। छोटे-से लेकर बड़े, साधारण, तुच्छ तथा उपेक्षणीय से लेकर अधिकतम महत्वशाली उपादानों का निर्माण हुआ है।

वायव्य विम्ब—तुलसी ने वायव्य बिम्बों का प्रयोग अधिक नहीं किया है। वे वायु को उपमान रूप में प्रयुक्त तो बहुशः करते हैं, किन्तु मूर्तता के अभाव में उनकी वायु-विषयक सादृश्य योजना कम ही स्थलों पर बिम्ब हो सकी है। गति का चित्रण करने में तुलसी जीवन्त वायव्य बिम्ब दे सके हैं। त्वरित वेग से युद्ध भूमि की ओर अग्रसर होने वाली यातुधान सेना प्रतीत होती है मानो काजल की आँधी आ रही हो। आँधी के वेग तथा उसकी शक्ति से राक्षसों के बल तथा उनकी गति की अप्रतिहतता का मूर्त चित्रण हुआ है—

चले बीर सब अतुलित बली। जनु कज्जल कै आँधी चली।[37]

विभिन्न भावों का मूर्त अंकन भी तुलसी ने वायु के बिम्ब से किया है। वे शोक को भी वायु से रूपायित करते हैं। रावण की राजसभा में अंगद के पदाघात से पृथ्वी में कम्पन होता है, जिससे सभासद गिर पड़ते हैं। वे मानो भय रूपी वायु से ग्रस्त होकर भाग निकलते हैं—

डोलत धरनि सभासद खसे। चले भाजि भय मारुत ग्रसे।[38]

वायु के वेग से पुष्पों के झड़ने का बिम्ब भी तुलसी ने किया है। परशुराम के यह कहने पर कि आज दया के कारण मुझे कष्ट भोगना पड़ रहा है, लक्ष्मण कहते हैं—

बाउ कृपा मूरति अनुकूला। बोलत बचन झरत जनु फूला।[39]

कम होने पर भी तुलसी के वायवीय बिम्ब स्पष्ट मूर्त चित्रविधान का साधन हो सके हैं।

तेजस विम्ब—अग्नि सम्बन्धी बिम्बों का तुलसी ने पर्याप्त व्यवहार किया है। वे अधिकतर दावाग्नि से ही बिम्ब बनाते हैं। सामान्य अग्नि के कुछ बिम्ब भी तुलसी-साहित्य में मिलते हैं। प्रताप एवं तेज को तुलसी अधिकांशतः अग्नि के बिम्ब से ही रूपायित करते हैं—

रावरे पुन्यप्रताप-अनल महँ अलप दिननि रिपु दहिहैं।[10]

तुलसी शोक की व्यंजना भी अग्नि के बिम्ब से करते हैं। इसमें धर्मसाम्य ही सादृश्य-विधान का आधार रहा है। शोक भी कष्टदायी है, शरीर को क्षीण करने वाला है तथा अग्निदाह भी। राम का वियोग भरत के तरुण शरीर के लिए दावाग्नि के तुल्य वाहक तथा पीड़ादायी हो गया है—

कहा भलो धों भयो भरत को लगे तरुन-तन दौन।[11]

दावाग्नि का बिम्ब भरत के अन्तर्दाह की भीषणता तथा उसके अनियन्त्रित आधिक्य की व्यंजना कर उनके शोक की तीव्रता को मूर्त करता है। तुलसी अग्नि की ज्वलनशीलता तथा तेजोमयता दोनों से ही प्रभावित होकर बिम्ब देते हैं। काम, क्रोध, विप्रदोह आदि को भी तुलसी ने अग्नि के बिम्ब से मूर्त किया है। राम का गुण-समूह कुतर्क, कुचाल तथा दम्भ को उसी प्रकार भस्म कर देता है, जिस प्रकार ईंधन को परम प्रबल अग्नि। भयावह वातावरण की अभिव्यक्ति के लिए भी तुलसी दावाग्नि का बिम्ब देते हैं। भरत ननिहाल से लौटकर आते हैं। श्रीहीन भयावनी अयोध्या ऐसी लगती है मानो दावानल हो।

चतुर्दिक दाह की अभिव्यक्ति के लिए तुलसी अवाँ का बिम्ब उपस्थित करते हैं। प्रतापभानु का शत्रु राजा अपने पुरातन राज्य सुख को स्मरण कर बहुत दुःखी रहता है। उसकी छाती वैर से अवाँ के समान ही सुलगती रहती है।

समुझि राजसुख दुखित अराती। अवाँ अनल इव सुलगइ छाती।[12]

तृणों को पाकर अग्नि विशाल रूप धारण कर लेती है। अग्नि का ताप केवल सुखदायी ही नहीं है, वह शीत से रक्षा करने के कारण काम्य भी है। तुलसी अग्नि-ताप की इसी प्रियता के आधार पर रामनाम के लिए अग्नि का बिम्ब प्रस्तुत करते हैं, जैसे अग्नि के प्रभाव से जूड़ी का निवारण हो जाता है, तथैव राम-नाम कलिकाल को भगाने में समर्थ है—

राम-नाम को प्रभाउ जानि जूड़ी आगि है।
सहित सहाय कलिकाल भीरु भागि है॥[13]

राख तथा धूम सम्बन्धी बिम्ब भी तुलसी साहित्य में मिल जाते हैं। संसार में भले व्यक्ति की सन्तति भी दुष्ट हो सकती है। दानी पिता का पुत्र भी कृपण हो सकता है। इसे तेजस्वी ज्योतिर्मय अग्नि से धूम की उत्पत्ति के द्वारा रूपायित किया जाता है।

तुलसी के अग्नि विषयक अप्रस्तुत बिम्ब संख्या तथा बहुमुखता की दृष्टि से तो समृद्ध हैं ही, अग्नि के प्रस्तुत बिम्ब भी समग्रता तथा प्रेषणीयता के गुण से भरे-पूरे हैं। कवितावली का लंकादहन, अग्निकाण्ड की भयावहता, स्वरूप, भागदौड़, चिल्लपुकार, झुलसन तथा रक्षा के लिए किए गए प्रयत्नों का अत्यन्त विस्तृत तथा मूर्त अंकन करता है।

तुलसी ने लगभग सभी ऋतुओं के बिम्ब प्रस्तुत किए हैं। मानस के किष्किन्धा कांड में शरद तथा वर्षा ऋतु का वर्णन मिलता है। ये वर्णन अप्रस्तुत-योजना से समन्वित हैं। उपमान रूप में तुलसी ने वर्षाकालीन श्यामल मेघों तथा शरद के श्वेत मेघों का ग्रहण किया है। वानरों तथा राक्षसों का युद्ध शरद तथा वर्षा ऋतु के विपरीत रंगों वाले मेघों के संघर्ष के समान प्रतीत होता है।

शीतकालीन रात्रि का बिम्ब भी तुलसी ने पुनः पुनः आवृत्त किया है। सीता को राक्षस कुल रूपी कमलों के लिए शीत निशा के समान बताया गया है। तुलसी हिमऋतु से कमलों के क्षत-विक्षत होने के बिम्ब भी देते हैं। रामरूपी सूर्य दक्षिण दिशा में प्रस्थान कर गए हैं। अतः अयोध्या रूपी सरोवर में पुरवासी रूपी कमल विरह रूपी हेमन्त को पाकर अत्यन्त म्लान हो गए हैं—

तुलसी रबिकुल-रबि रथ चढ़ि चले तकि दिसि दखिन सुहाई।
लोग नलिन भए मलिन अबध-सर, बिरह बिषम हिम पाई॥[14]

सूर्य का दक्षिणायन होना शीत ऋतु का संकेत है। यही सारे बिम्ब को सम्बद्ध करता है। प्रभावसाम्य पर बाधारहित बिम्ब से कवि विरह, मलीनता जैसे अल्प भावों और स्थितियों को मूर्त रूप प्रदान कर सका है।

ग्रीष्म के ताप से व्याकुल पथिक का सन्ताप भी बिम्ब का उपादान बना है। अशोकवाटिका में स्थित सीता की करुण दशा देखकर हनुमान भी व्यथित होते हैं—

देखि दसा ब्याकुल हरीस, ग्रीषम के पथिक ज्यों धरनि तरनि-तायो।[15]

वसन्त के अनेक बिम्ब तुलसी ने दिए हैं। 'गीतावली' के अयोध्याकाण्ड में चित्रकूट का वर्णन करते हुए तुलसी वसन्त का बिम्ब देते हैं। विवाह-मण्डपस्थ राम ऐसे लगते हैं मानो वसन्तकालीन वन के बीच कामदेव—

बर बिराज मंडप महं बिस्व बिमोहइ।
ऋतु बसंत बन मध्य मदन जनु सोहइ॥[16]

प्रातःकाल, संध्या तथा रात्रि के बिम्ब तुलसी ने विशेषतः दिए हैं। राम के वनगमन के अवसर पर अयोध्या कालरात्रि-सी प्रतीत होती है। रात्रि के द्वारा तुलसी ने मोह-ममता आदि को भी रूपायित किया है। ये अरूप भाव इस अप्रस्तुत से पूर्णतः मूर्त हो सके हैं। अन्यत्र राम जन्मोत्सव के समय अयोध्या का वर्णन करते हुए कवि उसकी तुलना संध्या से करता है।

ऊपर वर्णित विविध प्रकार के प्राकृतिक बिम्बों के अतिरिक्त तुलसी ने अनेक मानवेतर प्राणियों के आधार पर भी बिम्ब नियोजन किया है। उन्होंने पशु, पक्षी तथा जन्तुओं के विविध चित्र अप्रस्तुत रूप में दिए हैं। पशुओं में सर्वाधिक बिम्ब गजविषयक हैं। ये या तो सिंह के साथ युग्म रूप में व्यवहृत हुए हैं अथवा स्वतन्त्र रूप से हाथी के ही अवयव अथवा स्वभाव का बिम्ब उपस्थित करते हैं। सिंह तथा

हाथी के मिलित बिम्ब का प्रयोग कवि अधिकतर दो बलशालियों के संघर्ष और एक के सम्मुख इतर के हतप्रभ हो जाने के लिए करता है। राम को निशाचर रूपी करि-बरुथ के लिए मृगराज के तुल्य कहा गया है। कुपित कैकेयी के सम्मुख दशरथ ऐसी ही अस्तव्यस्त स्थिति में आ जाते हैं।

राक्षसों के समूह की ओर राम ऐसे दृष्टिपात करते हैं, जैसे सिंह हाथियों के झुण्ड की ओर उपेक्षा से देखता है। सिंह का हाथियों के समूह में निर्भयतापूर्वक प्रविष्ट हो जाना भी बिम्ब का विषय बना है। विदीर्ण करि-कुम्भ से यत्र-तत्र विकीर्ण मणियों का बिम्ब भी दिया गया है। ये बिम्ब परम्परा से प्रयुक्त होते रहे हैं—

अरुनमय गगन राजत रुचि तारे।
मनहुँ रवि बाल मृगराज तमनिकर-करि
दलित, अति ललित मनिगन बिथारे।[17]

गज सम्बन्धी स्वतन्त्र बिम्बों में गज केलि तथा वृक्षोत्पाटन, मृणालभंजन आदि के बिम्ब विशेषतः प्रयुक्त हुए हैं। भुजाओं के लिए प्रयुक्त हस्ति शुंड पूर्णतः रूढ़ एवं पारम्परिक प्रयोग है।

इसके अतिरिक्त धेनु का भी बिम्ब प्रस्तुत किया है। वर प्राप्ति के लिए हठशीला कैकेयी से राजा दशरथ कहते हैं कि भरत को राज्य दिलाने के लिए तू राम को वन भेज रही है, किन्तु अन्त में पछताएगी क्योंकि तू तात के लिए गाय का वध कर रही है। विवशता के सन्दर्भ में म्लेच्छ तथा कसाई के हाथ में पड़ी गाय का बिम्ब आया है। रावण की वशवर्तिनी सीता इसी प्रकार व्याकुल एवं विवश है, जैसे म्लेच्छ के वशीभूत कपिला गाय। राम की बालक्रीड़ाओं के लिए भी तुलसी कामधेनु का बिम्ब देते हैं तथा प्रेम-पथ को धनी की धैया की पीने की बात करते हैं। पशु-विषयक बिम्बों में मृग-मृगी सम्बन्धी बिम्बों की संस्था भी पर्याप्त है। एकनिष्ठ प्रेम के उदाहरण स्वरूप तुलसी मृग की संगीतप्रियता का बिम्ब प्रस्तुत करते हैं—

आपु ब्याध को रूप धरि कुहौ कुरंगहि राग।
तुलसी जो मृग मन मुरै परै प्रेम पट दाग॥[18]

अन्तर्यामी प्रभु को छोड़कर सांसारिक विषयों में रुचि रखने वाला व्यक्ति उस कस्तूरी मृग के समान है, जो अपनी ही मद गन्ध से व्याकुल भटकता फिरता है। लक्ष्मण राम के साथ वन-गमन को उत्सुक हैं, किन्तु माता की अनुमति मिलना शंकास्पद है। अतः जब सुमित्रा अनुमति ही नहीं देती, प्रत्युत वन जाने की धन्यता भी प्रमाणित करती है तो लक्ष्मण तत्क्षण ऐसे प्रस्तुत हो जाते हैं, जैसे मृग जाल तोड़कर पलायन का सुयोग पा जाय—

मातु चरन सिरु नाइ, चले तुरत संकित हृदयँ।
बागुर बिषम तोराइ, मनहुँ भाग मृगु भाग बस।[19]

पशुओं के अतिरिक्त तुलसी वे पक्षियों से सम्बन्धित अनेक बिम्ब दिए हैं। उनके पक्षी विषयक बिम्ब अधिकतर हंस, काक, चातक, मयूर, कोकिल, कीर, बाज, लबा, तीतर, चकोर, चक्रवाक तथा उलूक के सम्बन्ध में है। इन बिम्बों में परम्परा से प्राप्त रुढ़ियों का प्रयोग पर्याप्त किया गया है। हंस के नीर क्षीर विवेकी होने की मान्यता के कारण सत्य की प्रतिष्ठा तथा विवेकपूर्ण आचरण के प्रसंग में हंस के बिम्ब का प्रयोग मिलता है। इसी कारण भरत को रघुकुल रूपी तड़ाग का हंस कहा गया है। आरणीय माताओं को वैधव्य की भूषा में देख सीता सहम जाती है, उन्हें कौशल्या आदि माताएँ बधिक के वश में पड़ी मराली के समान प्रतीत होती हैं। श्वेत मुक्ताओं की मालाओं के लिए भी तुलसी उमड़कर आई हुई हंस पंक्ति की उत्प्रेक्षा करते हैं। हंस के साथ काम का भी युग्म रूप में व्यवहार किया गया है। इसी प्रकार वकी एवं हंसी की तुलना भी सापेक्ष प्रयोग के द्वारा प्रस्तुत की गई है। कैकेयी छल-प्रपंच प्रवीणा मंथरा की बातों से भ्रमित हो जाती है तथा उसकी अपकारी बातों को उपकारी समझती है–

बकिहि सराहइ मानि मराली।[50]

धर्मसाम्य के आधार पर कौए के शंकालु तथा अविश्वासी स्वभाव का बिम्ब भी तुलसी ने एकाधिक बार प्रस्तुत किया है। वे इन्द्र को काक का समानधर्मा कहते हुए छली तथा 'मलीन-चित' कहते हैं। लोमश ऋषि बार-बार सगुण की ही रट लगाने वाले विप्र से कुपित होकर उसे कौए के समान ही अविश्वासी कहते हैं–

सत्य बचन बिस्वास न करही। बायस इव सबही ते डरही।[51]

पशु-पक्षियों के अतिरिक्त जन्तुओं के बिम्ब भी तुलसी ने पर्याप्त व्यवहृत किए हैं। जन्तु विषयक बिम्बों में सर्वाधिक बिम्ब सर्प विषयक हैं जो विविध प्रकार के प्रसंगों में दिए गए हैं। सर्प के बिम्ब का प्रयोग अधिकतर मणि से सम्बन्ध रखता है। राम के वियोग में व्याकुल दशरथ की दशा मणि वियुक्त सर्प जैसी है। सुतीक्ष्ण ऋषि के हृदय से राम अपने द्विभुज स्वरूप को विलुप्त कर देते हैं तो मुनि इस प्रकार आकुल हो उठते हैं, जैसे मणि के वियोग में सर्प–

मुनि अकुलाइ उठा तब कैसें। बिकल हीन मनि फनि बर जैसें॥[52]

सर्प एवं मणि का बिम्ब एकनिष्ठ एकांगी प्रेम का प्रतीक है–

पीर कछू न मनिहि, जाकें बिरह बिकल भुजंग।[53]

सर्प के स्वभाव की कुटिलता के कारण तुलसी ने सर्प को दुष्टों के उपमानरूप में ग्रहण किया है। मंथरा विषादग्रस्त मुख से कैकेयी के निकट जाती है। रानी की पुनः पुनः पृच्छा का भी कुछ उत्तर नहीं देती। केवल काली सर्पिणी के समान विषैली साँसें लेती छोड़ती रहती है–

तबहुँ न बोल चेरि बड़ि पापिनि। छाड़इ स्वास कारि जनु साँपिनी।[54]

कवि ने अनेकशः संशय रोग, भव, काल, चिन्ता तथा भुजाओं के साथ सर्प के बिम्ब का व्यवहार किया है। तुलसी बाहु रूपी कोटर में रोग-जहि के बलात प्रविष्ट होने का बिम्ब देते हैं–

भुज तरु कोटर रोग अहि बरबस कियो प्रवेस।
बिहगराज-बाहन तुरत काढ़िअ मिटै कलेस ॥[55]

संसार रूपी भुजंग की चर्चा भी तुलसी पुनः पुनः करते हैं। मनुष्य को संसार (सांसारिक कामनाएँ तथा लौकिक वासनाएँ आदि) रूपी सर्प डस लेता है तथा अचेत कर देता है। औषधि रूपी चित्रकूट के दर्शन मात्र से ही मनुष्य संसज्ञ हो जाता है। सर्प के साध औषधि का बिम्ब भी कई बार प्रयुक्त हुआ है। राम को देखकर विशाल पिनाक भी सहज ही 'दक्षिण' हो जाता है मानो महाव्याल जड़ी को देखकर संकुचित हो गया हो–

दहिनो दियो पिनाकु सहमि भयो मनाकु,
महाव्याल बिकल बिलोकि जनु जरी है।[56]

राम के क्षिप्रगामी तीक्ष्ण शिलीमुख भी सर्प के समान हैं। उनकी तीव्रगति का चित्र प्रस्तुत करने के लिए कवि उन्हें फुँकारते हुए सर्पों के समान बताता है–

तब चले बान कराल। फुँकरत जनु बहु ब्याल ॥[57]

उड़ते हुए बाण सपक्ष सर्प के समान दौड़ते हैं। वे उड़ने वाले साँप के समान ग्रस्त करते हैं। वियोग की स्थिति में त्रिविध वायु सर्पश्वास के समान सन्तापदायक लगती है। त्याज्य वस्तु के सन्दर्भ में भी कवि ने सर्प का बिम्ब दिया है। पार्वती तपस्या में लीन होती है, तो समाज का सर्प के समान ही त्याग कर देती है। माया के अभ्यास के लिए भी तुलसी दर्शन के क्षेत्र में प्रचलित रज्जु में सर्प के भ्रम का बिम्ब बार-बार दुहराते हैं।

कमठ पृष्ठ की प्रस्तर तुल्य कठिनता भी बिम्ब का उपादान बनी है। आसन्न संकट के अनुभव से संकोचन की प्रवृत्ति कच्छप की नैसर्गिक विशिष्टता है। उसके इस धर्म का ग्रहण भी बिम्ब देने के लिए किया गया है। कौरव सभा में बलात् अपमानित द्रौपदी अंग-संकोच करती है–

सकुचि गात गोवति कमठी ज्यों
हहरी हृदय, बिकल गई भारी ॥[58]

गुणज्ञ के लिए भी मधुकर का बिम्ब आया है। कीट तथा भृंग की गति का बिम्ब भारतीय साहित्य का चिर-प्रयुक्त बिम्ब है। तुलसी ने भी इस क्रमागत पुरातन बिम्ब का सुन्दर प्रयोग किया है। मारीच रावण को समझाता है कि जब से विश्वामित्र के यज्ञ में दोनों भाइयों ने मुझे बिना फल का बाण मारा है, मेरी गति कीट-भृंग के समान हो गई है।

जल अलि के आधार पर भी तुलसी ने सुन्दर बिम्ब विधान किया है। चूहे की अकारण अपकारवृत्ति भी बिम्ब का आधार बनी है। उसकी क्षुद्रता के आधार पर भी बिम्ब निर्माण किया गया है। हनुमान अपने उत्साहवेश में मृत्यु को तुच्छ चूहे के समान घोषित करते हैं। चूहे के साथ मार्जार का बिम्ब भी प्रयुक्त हुआ है—

मोह-मूषक-मार्जार[59]

मधु छिन जाने पर मधुमक्खियाँ अत्यन्त व्याकुल हो जाती हैं। राज्य प्राप्ति के स्थान पर राम को वनगमन की आज्ञा मिलती है। प्रिय राजकुमार के वनगमन के अप्रत्याशित समाचार से नगरवासी आकुल एवं दुःखी हो जाते हैं। तुलसी नागरिकों की तुलना उन मक्खियों से करते हैं, जो मधु छिन जाने के कारण अत्यन्त व्यथित हैं। आकार की लघुता के लिए मशक का बिम्ब दिया गया है। चींटी, दादुर, घुन, पाहन, कृमि आदि के बिम्ब भी तुलसी साहित्य में मिलते हैं। जोंक वक्र गति, कुटिलता का उपमान बनकर प्रयुक्त हुई है। जन्तुओं में दादुर उरग के युगल का बिम्ब कई बार प्रयुक्त हुआ है—

भुजदंड सर कोदंड फेरत रुधिर कन तन अति बने।
जनु रायमुनीं तमाल पर बैठीं बिपुल सुख वापने ॥[60]

इसमें 'तमाल' पार्थिव वर्ग का है तथा 'रायमुनी' पशु-पक्षियों के वर्ग में आती है। तुलसी के काव्यों में ऐसे बिम्बों की संख्या अगणित है। इनमें से अधिकांश काव्य-परम्परा के अनुसार ही प्रयुक्त हुए हैं। चन्द्रमा तथा चकोर का युग्म ऐसे ही बिम्बों का निर्माण करता है। एक ही बिम्ब से पृथक्-पृथक् भावों की अभिव्यक्ति की क्षमता इस वर्ग के बिम्बों में भी मिलती है—

भरत बिमल जसु बिमल बिधु सुमति चकोरकुमारि।
उदित बिमल जन हृदय नभ एकटक रही निहारि ॥[61]

भरत के असाधारण शील तथा सज्जनों के हृदय पर उसके प्रभाव की अभिव्यक्ति करता है। अन्यत्र यह बिम्ब एकनिष्ठ घनिष्ठतम प्रीति की व्यंजना के लिए भी लाया गया है—

अधिक सनेहँ देह भै भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी ।[62]

विटप-कुठार, सूर्य खद्योत, अनल-समीर, मशक-हिमराशि, कमल भ्रमर, कमल सूर्य, मेरु-मेघदामिनी, मृगदीप, सुखेलि किरात, कुमुद चन्द्र, तूल अग्नि, कमल तुषार, अग्नि शलभ, चातक मेघ तथा गज कमल प्रमुख युग्मों के अतिरिक्त भी तुलसी ने ऐसे बिम्बों का निर्माण किया है—

सत सत सर मारे दस भाला। गिरि सृंगन्ह जनु प्रबिसहिं ब्याला ॥[63]

भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से तुलसी के अन्य बिम्बों के समान ही ये भी अत्यन्त सशक्त सिद्ध हुए हैं। जहाँ कवि की अपनी कल्पना से मौलिक बिम्बों का नियोजन

किया है, वहाँ उनकी काव्यात्मक चारुता बहुत अधिक बढ़ गई है।

मात्रा, बहुलता तथा कवि के प्रकृति-निरीक्षण के प्रमाण होने के कारण उपर्युक्त प्राकृतिक वर्गों के बिम्ब तुलसी पर लगाए जाने वाले इस आरोप का खण्डन करते हैं कि उनको प्रकृति में रुचि नहीं थी। इनमें कवि एक ओर तो विभिन्न प्राणियों की प्रकृति को विशिष्टता अथवा आकार को मूर्त करता है तो दूसरी ओर प्राकृतिक उपादानों के प्रति अपनी रुचि का यापन भी करता है। प्रकृति सम्बन्धी ये बिम्ब सृष्टि के विभिन्न तत्त्वों के माध्यम से सम्पूर्ण प्रकृतिगत परिवेश के द्वारा बिम्बात्मकता तथा विषय की प्रेषणीयता की दृष्टि से कवि के उद्देश्य की सिद्धि में सहायक हुए हैं।

शीतलता का प्रयोग अधिकतर सुखात्मकता के सन्दर्भ में हुआ है। राज्याभिषेक की सम्भावना से खिन्न राम, कैकेयी से वनगमन की सूचना पाकर शीतलता सुख का अनुभव करते हैं। शैत्य की अभिव्यक्ति जल तथा छाया से की गई है। जल के द्वारा अधिकतर मरती मीन को तथा मुरझाती लतादि को प्लवित कर सुख देने की व्यंजना हुई है–

बिरह-अगिनि जरि रही लता ज्यों, कृपादृष्टि-जल पलुहावहिंगे।[64]

त्रिताप से संतप्त लोक 'प्रभु' की छाया प्राप्त कर सुखी हो जाता है। शीतलता की अभिव्यक्ति के लिए कवि चन्दन को भी उपमान रूप में प्रयुक्त करता है। सन्ताप-शान्ति का भाव भी शीतलता से जुड़ा रहता है। अज्ञान रूपी शरतकालीन धूप के सन्ताप से निवृत्ति हेतु शिव के वचन पार्वती को चन्द्र-किरणों के समान शीतल प्रतीत होते हैं। शीतलता के द्वारा कुछ स्थलों पर अप्रियता की व्यंजना भी हुई है। प्रिय के साथ वनगमन के लिए उत्सुक सीता को राजभवन में ही रहने की प्रेरणा देने वाले राम के शीतल वचन अत्यन्त व्यथित करते हैं–

सीतल सिख दाहक भइ कैसें। चकइहि सरद चन्द निसि जैसे ॥[65]

अत्यधिक दाह की व्यंजना के लिए तुलसी ने बाग का बिम्ब दिया है। स्वामियों की परिवर्तनशील मनोवृत्ति तथा अस्थिरचितता के लिए कवि सहज ही गर्म और शीघ्र ही ठण्डे हो जाने का बिम्ब देता है–

भली-भाँति पहिचाने-जाने साहिब जहाँ लौ जग
जूड़े होत थोरे, थारे ही गरम।[66]

अंगद की कठोर वाणी से रावण क्रोध से प्रज्ज्वलित हो उठता है मानो जलते हुए विशाल अग्नि-पिंड में घृताहुति पड़ी हो। ताप की अनुभूति केवल दुखद ही नहीं है, परिस्थिति विशेष में उसका आनन्दात्मक पक्ष भी है–

राम-नाम को प्रभाउ जानि जूड़ी आगि है।
सहित सहाय कलिकाल भीरु भागि है।[67]

सामान्य मेघों के गर्जन के बिम्ब भी तुलसी ने प्रयुक्त किए हैं। इन मेघों की

ध्वनि के रूप एकाधिक हैं। यह ध्वनि भीम भी है, मंद भी। मेघ के अतिरिक्त कठोर भयप्रद ध्वनियों के प्रसंग में सिंह के गर्जन का बिम्ब बहुशः प्रयुक्त हुआ है। रावण की सेना के वीर अपनी वीरता का बखान करते हैं तथा सिंह नाद करते हैं। कौशल्या राम के मुख से उनके वनगमन का समाचार सुनकर इसी प्रकार सहम जाती है, जैसे सिंहनाद को सुनकर मृगी–

कहि न जाइ कछु हृदय बिषादू। मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू ॥[68]

तुलसी ने सिंह के अतिरिक्त शृगालादि पशुओं, दादुर आदि जन्तुओं तथा विविध पक्षियों की ध्वनि के प्रस्तुत अप्रस्तुत बिम्ब भी उपस्थित किए हैं। युद्ध-भूमि में जम्बुक आदि दाँत किटकिटाते हैं तथा मांस भक्षण करके तृप्त होने पर हुआ-हुआ करके कोलाहल करते हैं–

जम्बुक निकर कटक्कट कट्टहिं। खाहिं हुआहिं अघाहिं दपट्टहिं ॥[69]

राम को वन पहुँचाकर लौटने वाले अश्व राम को देखकर हिनहिनाते हैं। स्थल पर प्रयुक्त 'हिहिनाहि' क्रिया अश्वों की स्वाभाविक ध्वनि को सहज ही मूर्त देती है। वर्षा ऋतु में दादुर बोलते हैं तो क्रमशः बोलते ही चले जाते हैं, मानो पाठ कर रहे हों। विविध पक्षी नाना प्रकार का जो कोलाहल करते हैं, वह ऐसा प्रतीत होता है मानो ऋषिगण राम का गुणगान कर रहे हैं–

सुनहु तमचुर मुखर, कीर कलहंस पिक
केकि रव कलित, बोलत बिहंग बारे।
मनहुँ मुनिबृन्द रघुबंसमनि ! रावरे
गुनत गुन आश्रमनि सपरिवारे ॥[70]

गुरु वन्दना के प्रसंग में तुलसी ने जो प्रकृति के माध्यम से बिम्ब-विधान किया है, वह गुरु के प्रति आदर तथा सम्मान की व्यंजना करता है–

बंदउँ गुरु पद कंज, कृपा सिन्धु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज, जासु बचन रवि कर निकर ॥[71]

सूर्य-किरणों के तीव्र आलोक से जिस प्रकार अन्धकार का नाश हो जाता है, उसी प्रकार गुरु की वाक्यावली अज्ञान को विनष्ट कर देती है। गुरु के चरणों की रज से समस्त भवताप दूर हो जाते हैं तथा वह गुण-समूह को वशवर्ती बनाती है, यह रज हृदयरूपी दर्पण को निष्कलुष करने का साधन है।

रामकथा के प्रति तुलसी का आदरभाव उनकी भक्ति-भावना का ही परिणाम है। वे राम-कथा के विषय में निरन्तर अनेक प्रकार के प्राकृतिक बिम्ब देते चलते हैं। कहीं उसे विवेकरूपी पावक के लिए अरणि बताते हैं तो कहीं कलियुग-सर्प के विनाश हेतु मयूर। वे उसे संसार सरिता के लिए तरणी भी कहते हैं तथा सन्देह रूपी पक्षियों को उड़ाने वाली ताली की ध्वनि भी। रामचरित के प्रति भी तुलसी के हृदय में भक्ति

का भाव है। वे रामचरित की विशेषतओं का उद्घाटन करने के लिए सरोवर का विशाल बिम्ब प्रस्तुत करते हैं तथा उसे चन्द्र किरणों के समान सबके लिए सुखद भी मानते हैं–

रामचरित राकेस-कर सरिस सुखद सब काहु।
सज्जन कुमुद चकोर चित हित बिसेषि बड़ लाहु ॥[72]

तुलसी के भक्ति-भाव में आत्मग्लानि का स्थान भी बड़े महत्त्व का है। इस भाव को अनेक प्रतिमाओं के द्वारा अभिव्यंजित किया गया है। ये बिम्ब सामान्यतः सशक्त बन पड़े हैं–

सदा मलीन पंथ के जल ज्यों, कबहुँ न हृदय थिराने।[73]

यदि मार्ग में जल भरा हो तो वह कभी स्थिर तथा स्वच्छ नहीं रह पाता। यही स्थित हृदय की भी है। मार्ग के शान्त स्वच्छ जल में किसी पथिक के चरण पड़ते ही जल पिच्छल हो उठता है। पथि के निकल जाने पर वह पुनः शान्त एवं स्वच्छ हो जाता है। किन्तु फिर वैसी ही स्थिति आती है और जल फिर मलीन हो जाता है। इसी प्रकार हृदय त्याग, वैराग्य एवं भक्ति के कारण केवल कुछ ही पल शान्त रहता है। निरन्तर आने वाली सांसारिक कामनाएँ और वासनाएँ उसमें विक्षोभ उत्पन्न कर बार-बार उसकी पवित्रता और स्थिरता को भंग करती रहती हैं।

'गीतावली' में वर्णित राम का रूप विविध प्रकार की रंग योजना में समन्वित है। उसमें कवि की कल्पना, परम्परा प्राप्त उपमानों को अपने ढंग से नियोजित करती है। इष्टदेव के चित्रण में कवि का मन सबसे अधिक यहीं रमा है। इस सन्दर्भ में गीतावली उत्तरकाण्ड का सातवाँ पद द्रष्टव्य है। इस पद में वर्णों की योजना अनुपम है। नीलमणि तथा तमाल का श्याम वर्ण है। चंचरीक की कालिमा के साथ दिनमणि की दीप्ति है, रक्तकमल से नेत्र तथा वियुद्धवर्ण से अवलिप्त पद्मराग के शिखर तुल्य दन्त हैं, नीलमणि पर्वत से प्रवाहित मेघमन्द्र ध्वनि से युक्त तटों वाली कालिन्दी के समान तुलसी की माला है तथा विनयपूर्वक स्वशोभावर्धन हेतु उपस्थापित जलद-श्याम-शरीर पर विद्युत-सी पीताम्बर की छवि है। कवि के वर्णन-नैपुण्य को कल्पना की उत्कृष्टता उदात्त भावना से संयुक्त करती है। सीता का सौन्दर्य अनुपमेय है, वह सुन्दरता को भी उद्भासित कर देने वाला है। राम का रूप भी जलद-पटलों से सद्यःमुक्त चन्द्रमा के समान है। राम सीता के उसी चित्र को चित्तमित्ति पर उरेह लेते हैं तथा सीता राम के रूप का ध्यान करने के लिए पलक-कपाट बन्द कर लेती हैं।

ब्रीड़ा तथा संकोच की बिम्बात्मक अभिव्यक्ति भी तुलसी ने की है। राम सीता की ओर दृष्टिपात कर पिनाक को अत्यन्त उपेक्षापूर्वक देखते हैं। तुलसी एक बिम्ब द्वारा इस भाव की व्यंजना भी करते हैं–

सियहि बिलोकि तकेउ धनु कैसे। चितव गरुरु लघु ब्यालहि जैसे।[74]

यहाँ उत्साह श्रृंगार का आनुषंगिक भाव वनकर आया है। श्रृंगार यहाँ अंगी रस है। धनुभंग से सीता पूर्ण तृप्ति का अनुभव करती है, जैसे कोई चातकी अभीप्सित स्वातिजल की उपलब्धि कर सकी हो।

शोक भाव की व्यंजना तुलसी साहित्य में प्रकृति के माध्यम से पर्याप्त हुई है। वनगमन का सम्पूर्ण प्रसंग करुणोत्पादक है। इस प्रसंग में तुलसी ने बिम्ब भी पर्याप्त संख्या में दिए हैं। कैकेयी के द्वारा वर-याचना से राजा दशरथ की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो उठी है। राजा की दशा को बिम्ब द्वारा वर्णित करता हुआ कवि कहता है–

व्याकुल राउ सिथिल सब गाता। करिनि कलपतरु मनहुँ निपाता ॥[75]

राजा के दुःख से हतचेत रह जाने का भाव हथिनी के द्वारा उत्सात कल्पतरु के बिम्ब से व्यक्त होता है। 'करिणी' पद मतवालेपन अविचारपूर्वक कार्य करने की व्यंजना करता है। कल्पतरु राजा के गाम्भीर्य, औदात्य तथा उनके महत्त्व का प्रतिनिधित्व करता है। सिंहनी के समक्ष विवश पड़े गजराज का बिम्ब भी दशरथ की द्रावक स्थिति को मूर्त कर देता है। इसी प्रकार जल के अभाव से व्याकुल 'पाहिना' मछली का बिम्ब भी दशरथ की विकलता को चित्रित करता है। भरत-दशरथ-मरण के समाचार से सहम जाते हैं। वेदना की भयावहता को चित्रित करने के लिए कवि सिंहनाद से भयभीत हो जाने वाले हाथी का बिम्ब उपस्थित करता है–

सुनत भरतु भए बिबस बिषादा। जनु सहमेउ करि केहरि नादा ॥[76]

भरत को दुखित परिवार तुषारहित कमलवन-सा प्रतीत होता है। शोक तथा वेदना की मार्मिकता की व्यंजना के लिए तुलसी सर्प के मणि सोने का बिम्ब भी देते हैं। पक्षियों के पंखहीन होने का बिम्ब घनीभूत वेदना तथा विवशता को पूर्णतः अंकित कर देता है। शोक की अभिव्यक्ति के लिए तुलसी अग्नि का बिम्ब तो देते ही हैं, विषाद को प्रस्तुत करने के लिए शोक नदी का सांगरूपक भी उपस्थित करते हैं।

तुलसी साहित्य में उत्साह की अभिव्यक्ति अनेक स्थलों पर हुई है–

एतना कहत नीति रस भूला। रन रस बिटपु पुलक मिस फूला ॥[77]

प्रफुल्लित वृक्ष का यह सादृश्य लक्ष्मण के सहज-उत्साह से स्फूर्त शरीर को मूर्त-सा कर देता है। इसी प्रकार धूल के सिर चढ़ जाने का बिम्ब भी लक्ष्मण के आत्मविश्वास तथा आत्माभिमान भरी उत्साह प्रवृत्ति को रूपायित करता है। हनुमान के उत्साह की व्यंजना के लिए भी कवि ने सुन्दर बिम्ब दिए हैं। चन्द्रमा को आर्द्र वस्त्र की भाँति निचोड़कर अमृत ले आने तथा पाताल को फोड़ सर्पों को नष्ट कर अमृतकुण्ड ले आने एवं सूर्य को ही ब्रह्माण्ड बाह्य कर देने की प्रतिज्ञाएँ उनके उत्साह की व्यंजना करती हैं।

भय के भाव की अभिव्यक्ति तुलसी ने राम के वनगमन, सीताहरण, लंकादाह तथा युद्ध के प्रसंगों में की है। 'कवितावली' में लंकादहन का प्रसंग भय की सृष्टि की

दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है। सजीवता, स्वाभाविकता तथा उस प्रसंग की बिम्बात्मकता मिलकर भय को मानो साक्षात् उपस्थित कर देती है। वह अग्नि इतनी बढ़ रही है मानो विंध्याचल की दावाग्नि हो। हनुमान की पूँछ अपनी आकारगत विशालता के कारण भयावनी है—

कैधों व्योम बीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु
बीररस बीर सरबारि सो उघारी है।
'तुलसी' सुरेस-चापु, कैधों दामिनी कलापु
कैधों चली मेरु तें कृसानु-सरि भारी है॥[78]

अनेक पुच्छल तारों से युक्त आकाश-वीथिका विद्युत समूह तथा अग्नि की प्रवाहमयी नदी के बिम्ब लंका का भयापन्न स्वरूप प्रस्तुत करते हैं।

वात्सल्य के वियोग पक्ष में सुन्दर प्राकृतिक बिम्ब योजना की गई है। राम के बिना दशरथ स्वयं को जलहीन मछली के समान प्राण धारण में असमर्थ तथा निरवलम्ब अनुभव करते हैं। वे अमृत रहित चन्द्रमा के समान कान्तिहीन हो गए हैं—

जाइ सुमंत्र दीख कस राजा। अमिअ रहित जनु चन्दु बिराजा॥[79]

राजा के वैवर्ण्य से उनकी तीव्र विरह वेदना तथा दयनीयता व्यंजित होती है। साधारणतः सभी मध्यकालीन कवियों में मूर्तता का आग्रह मिलता है। विभिन्न पात्रों के रूप वर्णन में प्रयुक्त परम्परागत अथवा मौलिक बिम्ब इसी वर्ग में आते हैं—

स्याम सरीर रुचिर श्रम-सीकर, सोनित-कन बिच बीच मनोहर।
जनु खद्योत-निकर, हरिहित-गन भ्राजत मरकत-सैल-सिखर पर।
घायल बीर बिराजत चहुँ दिसि, हरषित सकल रिच्छ अरुबनचर।
कुसुमित किंसुक-तरु समूह महँ, तरुन तमाल बिसाल बिटप बर॥[80]

इसमें दो मूर्त स्थितियों को दो मूर्त बिम्बों की सहायता से रूपायित किया गया है। राम का श्रम बिन्दुओं तथा रक्त-कणिकाओं से युक्त श्यामल शरीर ऐसा प्रतीत होता है, मानो जुगनुओं तथा वीरबहुटियों से युक्त मरकत शैल-शिखर। रक्तावत वीरों के बीच खड़े राम पुष्पित किंशुक वृक्षों के मध्य स्थित तमाल तरु से प्रतीत होते हैं। इस बिम्ब से राम के वर्ण तथा दीर्घकायता की स्पष्ट अभिव्यक्ति भी होती है।

गतिशील वस्तुओं को भी कवि मूर्त उपमानों से रूपायित करता है। वह सनसनाते हुए तेज बाणों के लिए सर्पों का साम्य उपस्थित करता है। राम के शक्तिपूर्वक संघानित अप्रतिहत बाण कुम्भकर्ण के शरीर में प्रविष्ट होकर उसी प्रकार निकल जाते हैं जैसे विद्युत कलाप जल्द समूह में अन्तर्हित हो जाता है।

तनु महुँ प्रविसि निसरि सर जाहीं।
जिमि दामिनि घन माझ समाही॥[81]

किसी का मूर्त रूप में वर्ण करने में तुलसी वर्ण योजना तथा आकार का भी

ध्यान रखते हैं। काले रंग के हाथियों के लिए वे वर्षाकालीन वायु-प्रेरित बादलों का बिम्ब देते हैं। इसी प्रकार हनुमान को स्वर्ण कहा है। चित्रकूट पर लक्ष्मण जहाँ पर्णशाला का निर्माण करते हैं, उस स्थल के वर्णन से तुलसी की समग्र दृष्टि के साथ-साथ प्रकृतिवर्णन की क्षमता भी दृष्टिगोचर होती है।

फटिकसिला मृदु बिसाल, संकुल सुरतरु-तमाल
ललित लता-जाल हरति छबि बितान की।
मंदाकिनि-तटिनि-तीर, मंजुल मृग-बिहग-भीर,
धीन मुनिगिरा गभीर सामगान की।[82]

विशाल स्फटिक शिलाएँ घने तमाल वृक्ष, लताओं के मंडप, पयस्विनी-तट पर पशुओं तथा पक्षियों का समूह, भ्रमर, कोकिल कलापी की ध्वनियाँ, मुनियों का सामगान, बादलों की छाया निर्झर तथा प्रवाहित होने वाली शीतल मन्द-सुगन्ध वायु सब मिलक एक दृश्य को समग्रतः उपस्थित करते हैं।

तुलसी साहित्य में प्रकृति के अनेक ऐसे बिम्ब हैं जो उनकी एकाधिक रचनाओं में आवृत्त हुए हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

कमल

तुलसी मिटै न मोहतम, किएँ कोटि गुनग्राम।
हृदय-कमल फूले नहीं बिनु रबिकुल-रबि राम ॥[83]

यहाँ रामरूपी सूर्य के अभाव में हृदयरूपी कमल के प्रफुल्लित न हो सकने का वर्णन है, किन्तु कमल की आकृति, वर्ण, सौकुमार्य गंध आदि को व्यक्त नहीं किया गया। एक धर्म मात्र की ही प्रस्तुति की गई है। 'जानकी मंगल' में कमल से बिम्बों का सृजन किया गया है–

मंगल आरति साज बरहिं परिछन चलीं।
जनु बिगसीं रबि-उदय कनक पंकज कलीं ॥[84]

वर का 'परछन' करने के लिए प्रस्तुत कपट स्त्रीवेशधारिणी देवांगनाएँ सूर्य के उदय पर विकसित स्वर्ण-कमल की कलिकाओं के समान प्रतीत हो रही हैं। इस स्थल पर भी सूर्य के संदर्भ में कमल का प्रयोग हुआ है। कमल का विशेषण 'कनक' रंग तथा दीप्ति की अभिव्यक्ति करता है। कमल की कलिका से स्त्रीत्व तथा सुकुमारता की व्यंजना होती है। 'कवितावली' का कमल सम्बन्धी एक बिम्ब उपर्युक्त बिम्बों से तुलनीय है। कवि इस बिम्ब में कमलकलिकाओं को पूरी पृष्ठभूमि के साथ अंकित करता है–

सुनि सुन्दर बैन सुधारस-साने सयानी हैं जानकी जानि भली।
तिरछै करि नैन, दै सैन तिन्हें समुझाइ कछू मुसुकाइ चली ॥

'तुलसी' तेहि औसर सौहें सबै अवलोकति लोचन लाहु अली।
अनुराग-तड़ाग में भानु-उदै बिगसीं मनो मंजुल कंज-कली ॥[85]

जानकी संकेत मात्र से ग्राम वधुओं की परिचय पृच्छा का उत्तर देती है। उस अवसर पर स्नेहपूरित चित्त से राम के प्रति निबद्धदृष्टि ग्राम वधुएँ ऐसी प्रतीत होती हैं, मानो सूर्योदय के कारण अनुराग-सरोवर में अनेक कमलकलिकाएँ प्रफुल्लित हो गई हों। सूर्योदय पर प्राकृतिक स्नेह के कारण सरोवर में विकसित कलिकाओं का बिम्ब पूर्ण चित्र का निर्माण करता है। जैसे सूर्यालोक निर्व्याज सहजता से कमल-कलिकाओं को विकसित करता है, उसी प्रकार राम का सौन्दर्य भी ग्राम वधुओं में प्रसन्नता के अन्तःस्फुरण का कारण बनता है।

शिशिर ऋतु की तुषारमयी रात्रियाँ कमल वनों को ध्वस्त कर देती हैं। तुलसी इन बिम्बों का उपयोग कई रचनाओं में करते हैं—

देखि सपुर परिवार जनक छिय हारेउ।
नृप समाज जनु तुहिन बनज बन मारेउ ॥[86]

धनुष यज्ञ में असफल राजा ऐसे प्रतीत हो रहे हैं, जैसे कमलों के वन को पाला मार गया हो। राजाओं की हीनता, नैराश्य तथा श्रीहीनता की अभिव्यक्ति में यह बिम्ब समर्थ हैं। 'गीतावली' का बिम्ब अपेक्षाकृत सशक्त तथा सन्दर्भानुकूल है। वह एक पूर्णतर प्राकृतिक व्यापार का चित्र अंकित करता है—

तुलसी रबिकुल-रवि रथ चढ़ि चले तकि दिसि दखिन सुहाई।
लोग नलिन भए मलिन अवध-सर, बिरह बिषम हिम पाई ॥[87]

सूर्यवंश के सूर्य राम रथासीन हो दक्षिण दिशा दंडकारण्य की ओर प्रस्थित हुए तो अयोध्या रूपी तड़ाग में पुरजन रूपी क़मल दीर्घ पीड़ादायी, विछोह रूपी हिमकेतु के आगमन से मलिन हो गए। विषम हिम ऋतु के कारण मुरझाए कमलों से पूर्ण सरोवर तथा दक्षिणायन जाने वाले सूर्य का चित्र, एक अपेक्षाकृत व्यापक चित्रफलक पर बनता है। मुरझाए क्षीणकान्ति कमलों के समूह की दयनीय स्थिति के प्रति जो सहज सहानुभूति होती है, कवि अयोध्यावासियों के प्रति उसी व्यथानुभूति की अभिव्यक्ति करना चाहता है।

गंगा की स्तुति करते हुए कवि गंगा को मोह, मद तथा कामरूपी कमलों के लिए हिमरात्रि कहता है—

मोह-मद-मदन-पाथोज-हिमयामिनी ।[88]

सम्पूर्ण बिम्ब का निर्माण एक ही समस्त पद से होता है। गंगा को प्राचीन काल से ही चित्तकल्पक्ष-विनाशिनी माना गया है। परम्परा से गंगा की अलौकिकता पर विश्वास किया जाता रहा है। गंगा को मोहादि कमलों के लिए हिमयामिनी कहने में कवि का उद्देश्य उसकी अलौकिक क्षमता को प्रकट करना है।

कमल के सन्दर्भ में भ्रमर का भी उपमानरूप में व्यवहार हुआ है। विभिन्न रचनाओं में प्रयुक्त यह बिम्ब उसके विकास-क्रम की पूर्वापरता का ज्ञापन है। 'कवितावली' में राम के बाल-सौन्दर्य के अंकन में इस बिम्ब का व्यवहार हुआ है—

अरविंद सो आनन रूप-मरंद अनन्दित लोचन-भृंग पिए।[89]

बालक राम के मुखकमल का पान कर नेत्ररूपी भमर आनन्दित रहते हैं। यह सौन्दर्य-योजना राम के सौन्दर्य तथा द्रष्टा के नेत्रों के आनन्द-लाभ की व्यंजना करती है—

पौढ़िये लालन, पालने हौं झुलावौं।
कर पद मुख-चरन कमल लसत लखि लोचन-भँवर भुलावैं।[90]

राम का लोकोत्तर सौन्दर्य कौशल्या के नेत्रों को भूलभुलैया में डाल देता है। प्रथम बिम्ब में एक ही कमल है, लेकिन यहाँ तो कर, पद, मुख, चरण अनेक कमल हैं। अतः नेत्र लखकर ही चकित हो जाते हैं। ऐसा होना स्वाभाविक भी है, क्योंकि कमलों की अनेकता के कारण वे एकाग्र तक नहीं हो पाते।

यह प्राकृतिक बिम्ब राम के सौन्दर्यातिशय तथा दर्शन मात्र से ही सामान्यजन की अपेक्षा स्वाभाविक रूप से अधिक संवेदन-प्रवण माँ के वात्सल्यपूर्ण हृदय के छककर भ्रमित हो जाने की युगपद व्यंजना करता है। मानस में भी कवि ने कमल का पुनः पुनः प्रयोग किया है। कहीं शिव के प्रति राम की भक्ति की अभिव्यक्ति के लिए तो कहीं राम के प्रति शिव की भक्ति के प्रस्तुतीकरण में। तुलसी अपनी भक्ति-भावना की अभिव्यंजना के लिए भी इस बिम्ब का व्यवहार करते हैं। राम तथा सीता के प्रथम मिलन के प्रसंग में भी इस बिम्ब का उपयोग किया गया है—

करत बतकही अनुज सन मन सिय रूप लोभान।
मुख सरोज मकरन्द छबि करइ मधुप इव पान ॥[91]

राम अनुज से वार्तालाप भी कर रहे हैं तथा उनका हृदय सीता के सौन्दर्य का रसपान भी कर रहा है।

भ्रमर एवं कमल के युग्म से विनयपत्रिका में भी बिम्ब का निर्माण हुआ है—

मन मधुकर पनकै तुलसी रघुपति-पद-कमल बसैहौं।[92]

कवि ने दृढ़ भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति की है। तुलसी इन्द्रियादि के आकर्षण से मुक्त होकर प्रणपूर्वक मनरूपी मधुकर को राम के चरणकमलों में बसा लेना चाहते हैं। कवि यत्नपूर्वक प्रण के साथ चित्त को राम के चरणों में केन्द्रित रखने के लिए सन्नद्ध हैं। इस प्रकार न्यूनतम शब्दों में अधिकतम अर्थ की व्यंजना हुई है।

तुलसी ने पौराणिक कथाओं द्वारा जिस सिद्धहस्तता से प्राकृतिक बिम्ब-निर्माण किया है, वह अद्वितीय है।

रावण ऋक्षराज जम्ववान् को शक्तिहीन कहता है। इस भाव को जलरहित मेघ के बिम्ब से व्यक्त किया गया है–

रीछ जल ज्यों न घनमैं।[93]

जैसे जलहीन बादल को वायु का हल्का-सा झोंका उड़ा ले जाता है, उसी प्रकार जम्बवान् को भी क्षण मात्र में सरलता से पराजित किया जा सकता है। शबरी को भक्ति का स्वरूप समझाते हुए राम कहते हैं–

भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा ॥[94]

'जलहीन वारिद' इस प्रसंग में शोभाहीनता, निरर्थकता, असारता, अकाम्यता तथा गौरवहीनता की व्यंजना करता है। जैसे जलहीन बादलों की कामना कोई नहीं करता, वैसे ही भक्ति-रहित पुरुष भी प्रिय नहीं होते।

भरत चित्रकूट पहुँचने के लिए आतुर हैं। वे निषादपति के साथ चित्रकूट की ओर अग्रसर होते हैं। तुलसी उस अवसर पर भरत के लिए तृषित गज का उपमान प्रस्तुत करते हैं–

चले जनु तक्यो तड़ाग तृषित गज घोर घामके लागे।[95]

प्यास तथा घोर घाम भरत की आकुलता, शीघ्रता एवं राम से मिलने पर वेदना-शान्ति की आशा को व्यंजित करते हैं।

दशरथ के जनकपुर जाने पर राम-लक्ष्मण बहुत आनन्दित होते हैं किन्तु संकोचवश गुरु से कह नहीं सकते। विश्वामित्र स्वयं उनके शील को देखकर उन्हें दशरथ के पास ले जाते हैं–

चले जहाँ दसरथु जनवासे। मनहुँ सरोबर तकेउ पिआसे ॥[96]

मानो प्यासे व्यक्ति ने सरोवर देख लिया हो, इतने भर से हर्ष, आतुरता तथा आशा की सफल व्यंजना हो सकी है।

बाज

युद्ध के अवसर पर रावण की सेना के युद्धभूमि में प्रवेश पर राम का अनुज्ञापूर्ण रुख देखकर हनुमान प्रसन्न हो उठते हैं–

राम रुख निरखि हरषे हियें हनुमानु
मानो खेलवार खोली सीसताज बाज की।[97]

राम का रुख जाने बिना युद्धारम्भ नहीं हो सकता। इसीलिए राम का अनुभूतिपूर्ण रुख हनुमान को ऐसे प्रसन्न कर देता है जैसे बाज के सिर की छोपी को खोलकर खिलाड़ी ने उसे आखेट के लिए स्वतन्त्र कर दिया हो। यह बिम्ब हनुमान की युद्धप्रिता, उनकी आज्ञाकारिता तथा उनके शौर्य एवं साहस की व्यंजना करता है।

वर-याचना की पीठिका भली-भाँति निर्मित करके कैकेयी दशरथ से हँसकर

अपनी बात कहना आरम्भ करती है–

बात दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली। कुमत कुबिहग कुलह जनु खोली ॥[98]

दुर्बुद्धि कैकेयी हँसकर बोली मानो उसने कुमंत्रणा रूपी बाज की छोपी खोली दी हो। लोभ से प्रेरित होकर मनुष्य नाना प्रकार के कर्म करता है। भक्ति के लिए निर्लोभता आवश्यक है, क्योंकि तभी संसार के नानाविध कर्मों से मुक्ति मिल सकती है–

लोभ मनहिं नचाव कपि ज्यों, गरे आसा-डोरि।[99]

गले में आशा रूपी डोरी डालकर लोभ मन को बन्दर के समान नचाता है। बधिक से त्रस्त गाय का बिम्ब कवि ने कई बार दिया है। गीतावली में इस बिम्ब का प्रयोग सीताहरण के अवसर पर किया गया है–

बनदेविन सिय कहन कहति यों, छल करि नीच हरी हौं।
गोमर-कर सुरधेनु, नाथ ! ज्यौं त्यौं परहाथ परी हौं ॥[100]

जिस प्रकार कामधेनु कसाई के हाथ पड़ जाय, उसी प्रकार मैं शत्रु के हाथ पड़ गई हूँ। भय, दुर्दशा, आशंका तथा विवशता की व्यंजना होती है–

अधम निसाचर लीन्हें जाई। जिमि मलेछ बस कपिला गाई ॥[101]

म्लेचछ के वशीभूत कपिला का बिम्ब दयनीयता, असहायता देखने वाले (गृद्ध) की सहानुभूति तथा सीता की कातरता आदि भावों की ही अभिव्यक्ति करता है।

भारतीय काव्य परम्परा सिंह तथा गज में प्रकृतिसिद्ध वैर तथा सिंह की श्रेष्ठता को स्वीकार करती रही है–

रजनीचर मत्त गयंद-घटा विघटै मृगराज के साज करै।
झपटै, भर कोटि मही पटकै, गरजै रघुबीर की सोंह करै ॥[102]

मतवाले हाथियों के समूह तुल्य निशाचरों के झुण्ड का विनाश करने वाले हनुमान सिंह के समान युद्ध करते हैं।

जाइ दीख रघुबंसमनि, नरपति निपट कुसाजु।
सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि मनहुँ वृद्ध गजराजु ॥[103]

सुमन्त्र के साथ राम कैकेयी के भवन में आए तो राजा दशरथ को बहुत दुरवस्था में पड़े देखा मानो सिंहनी को देखकर वृद्ध गजराज सहम गया हो।

विकट भृकुटी, वज्र दशन नख वैरि-मदमत्त-कुंजर-पुंज-कुंजरारी।[104]

विकट भृकुटि तथा वज्र तुल्य भीषण दन्त नखों द्वारा हनुमान के उद्धत शौर्य तथा शत्रु-नाश की व्यंजना की गई है। आकार की दृढ़ता तथा भीषणता से मदमत्त कुंजरसमूह को निश्चयपूर्वक नष्ट करने की क्षमता स्पष्ट ध्वनित होती है।

जल के प्रति मीन की अपरिहार्य निष्ठा भारतीय काव्य परम्परा में पर्याप्त प्रख्यात रही है–

सियराम सरूप अगाथ अनूप बिलोचन मीनन को जलु है।
श्रुति रामकथा, मुख राम को नामु, हिएँ पुनि रामहिं को थलु है ॥[105]

'मानस' तथा 'विनयपत्रिका' के प्राकृतिक बिम्बों में एक प्रकार की क्रमिकता दृष्टिगोचर होती है। दुष्टों के वर्णन के प्रसंग में तुलसी रम्य बिम्ब का उपयोग करते हैं–

जे पर दोष लखहिं सहसाखी। पर हित घृत जिन्ह के मन माखी ॥[106]

दुष्ट लोग स्वभावतः ही 'अपकारी' होते हैं। वे स्वयं हानि उठाकर भी दूसरे की हानि करने के लिए तत्पर रहते हैं। उनका मन माक्षिका के समान होता है, जो घी में गिरकर स्वयं तो मरती ही है घी को भी असाध बना देती है। विनयपत्रिका में भी तुलसी घी की मक्खी का बिम्ब प्रस्तुत करते हैं–

तुलसी तिहारो, तुमहीं पे तुलसी के हित
राखि कहीं हौं तो जो पै हूवे हों माखी घीय की ॥[107]

भक्त कवि अपने इष्टदेव से कहता है कि तुलसी आपका ही दास है आप ही तुलसी के हितैषी हैं। यदि इस बात में तनिक भी कपट हो तो मेरी गति घी में पड़ी मक्खी जैसी हो जाए अर्थात् मैं भी असहाय विवश तथा अनाश्रित होकर प्राण त्याग करूँ।

तीव्र व्याकुलता की अभिव्यंजना के लिए तुलसी सर्प की मणि खोने का बिम्ब देते हैं। चित्रकूट में भरत, राम से निवेदन करते हैं कि आपसे दूर रहकर मेरा जीवन तो उस सर्प के समान है जिसकी मणि चली गई है–

मेरो जीवन जानिय ऐसोइ, जियें जैसी अहि जासु, गई मनि फनकी।[108]

चित्रकूट में ही जनक के दूत वशिष्ठ से कहते हैं कि कैकेयी की कुचाल को सुनकर जनक उसी प्रकार मूढ़वत् हो गए जैसे मणि के बिना सर्प को कुछ नही सूझता–

रानि कुचालि सुनत नरपालहि। सूझ न कछु जस मनि बिनु व्यालहिं।[109]

अपनी दीनता का निवेदन करता हुआ कवि 'विनयपत्रिका' में कहता है–सारा जन्म व्यर्थ ही बीत गया, कुछ करते नहीं बना। अब जब वार्द्धवय ने अंग-प्रत्यंग को विमर्दित कर दिया है तो मणिरहित सर्प के समान सोच रहा है–

अब सोचत मनि बिनु भुजंग ज्यों, बिकल अंग दले जरा धाय।[110]

मणिधर भुजंग मणि खो जाने पर जीवित होते हुए भी मृततुल्य होता है। उसमें न जीने की लालसा शेष रहती है ओर न उत्साह, उल्लास एवं क्षमता। इसी प्रकार राम के वियोग में भरत भी अत्यन्त म्लान हैं। जैसे अचानक आ पड़ी विपत्ति किंकर्त्तव्यविमूढ़ कर हतचेष्ट कर देती है, उसी प्रकार की स्थिति (सादृश्य-योजना के लिए उपस्थित) मणिहीन सर्प की भी होती है। मणि खोने पर सर्प जिस तीव्र वेदना व्यर्थता, आकुलता, घबराहट तथा असह्य छटपटाहट का अनुभ करता है, वह जनक के पक्ष में भी व्यंजित होती है। ऐसी मान्यता है कि मणि के प्रकाश में ही सर्प देख पाता है अन्यथा अन्धा हो जाता है। जनक को भी कुछ सूझता नहीं है।

'विनयपत्रिका' के स्तुति-भाग में राम की आरती का स्तवन करते हुए तुलसी उसके लिए कुमुद तथा चन्द्र के प्रसिद्ध कविसमय पर आश्रित बिम्ब का प्रयोग करते हैं—

प्रनत-जन-कुमुद-वन-इन्दु-कर-जालिका।[111]

शरणागत भक्तजन रूपी कुमुदवन के लिए वह आरती चन्द्र किरणों के जाल के समान है। चन्द्रकरों के द्वारा कुमुदों के स्फुटन का कार्य अधिक इन्द्रियगम्य है जबकि ज्योत्स्ना द्वारा कुमुदों का पोषण उतना गोचर नहीं हो पाता।

प्रकृति सम्बन्धी बिम्बों का नियोजन 'रामाज्ञाप्रश्न' में पर्याप्त मात्रा में मिलता है। लता, पुष्प, वन, वृक्षादि सम्बन्धी बिम्ब इस बात की ओर संकेत करते हैं कि कवि इस कृति के रचनाकाल तक आते-आते वनादि का निरीक्षण करने का अवसर प्राप्त कर चुका था।

उठि विलास बिराल वड़, कुम्भकरन जमुहान।
लखि बिलास बिकसुदेस कपि-भालु-दल, जनु दुकाल समुहान॥[112]

कवि वन, नदी, पावक, चन्द्र, चकोर आदि से सम्बन्धित पूर्व परम्परागत बिम्बों का प्रयोग अधिक करता है।

कवि के सुदीर्घ नलीय बिम्ब उसके नदी-तट पर बहुत दिनों तक निवास के परिणाम हैं। 'गीतावली' में नदी विषयक ऐसे बिम्बों की अल्पता से स्पष्ट प्रमाणित होता है कि गीतावली के रचनाकाल तक कवि नदी-तट-निवास के अनुभवों को उसी प्रकार आत्मीकृत नहीं कर पाया था जिस प्रकार 'मानस' के रचनाकाल में कर सका था। सीता तथा राम का प्रथम मिलन पुष्पवाटिका में होता है। राम के हृदय में जागृत अनुराग को व्यक्त करने के लिए तुलसी एक प्राकृतिक बिम्ब देते हैं—

अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा॥
भए बिलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल॥[113]

बिम्ब परम्परागत है, किन्तु यहाँ रतिभाव की प्रगाढ़ता को सुस्पष्टतया व्यक्त कर रहा है। कवि-परम्परा चन्द्रमा के प्रति चकोर का सहज एवं अमाप्य प्रेम सम्बन्ध मानती रही है। मुख के चन्द्रत्व की अभिव्यक्ति कर कवि ने मुख की कान्ति सौन्दर्य, आकर्षण शक्ति तथा प्रियदर्शनत्व की व्यंजना की है। साथ ही चकोर तुल्य गाढ़ अनुराग की व्यंजना भी इस बिम्ब से हुई है।

गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी। प्रगट न लाज निसा अवलोकी॥[114]

यह प्राकृतिक बिम्ब सीता के आत्मसंयम की अभिव्यक्ति कर रहा है। गुंजार करना भ्रमरी का स्वभाव है, किन्तु कमल रात्रि में निमीलित हो जाता है, और उसमें बन्द भ्रमरी, मौन हो जाती है। इसी प्रकार अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए व्याकुल सीता लज्जा के कारण मीन रह जाती है।

दशरथ की वेदना तथा दुःख कातरता के लिए अनेक प्राकृतिक बिम्बों का प्रयोग किया गया है। कैकेयी द्वारा याचित वरों को सुनकर दशरथ को आघात-सा लगता है—

बिबरन भयउ निपट नरपालू। दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू ॥[115]

बिजली के प्रहार से गिरनेवाले ताल वृक्ष का बिम्ब महान् राजा दशरथ की आन्तरिक पीड़ा तथा वेदना की व्यंजना करता है। ताड़ का दीर्घकाय वृक्ष भी विद्युत के प्रखर प्रहार से जलभुन जाता है, पर समग्रतः नष्ट नहीं होता। उसका ठूँठ शेष रह जाता है। रानी के वाक्य-प्रहार से भी राजा की मृत्यु तो नहीं हुई, वे मृतप्राय हो गए—

व्याकुल राउ सिथिल सब गाता। करिनि कलपतरु मनहुँ निपाता ॥[116]

गिरा हुआ वृक्ष मुरझा जाता है, राजा भी श्लथ तथा श्रीहीन हैं। करिणी के द्वारा कल्पतरु का निपात उसकी मत्तता, अप्रतिहतता तथा अविचारिशीलता का निदर्शन कराता है। एक स्थान पर कौशल्या की एक उक्ति के द्वारा भरत की दीर्घ सन्तापक तथा अन्तर्दाहक वेदना और उनके विषाद को अभिव्यंजित किया गया है—

कहा भलो धौं भयो भरत को, लगे तरुन-तन दौन।[117]

यहाँ 'दीन' दावाग्नि शब्द वेदना के तीव्रतम रूप की व्यंजना करता है। इससे कौशल्या के भरत-प्रेम की अभिव्यक्ति होती है। जैसे दावाग्नि से हरा-भरा तरुण वृक्ष भी सुलग-सुलगकर जलता रहता है, उसी प्रकार भरत को भी राम-वियोग की वेदना खाए जा रही है। जैसे दावाग्नि की लपेट में आने पर वृक्ष के हरे-भरे पत्ते जल जाते हैं, उसी प्रकार भरत के हर्ष आदि का भी विनाश हो गया।

देखि दसा ब्याकुल हरीस, ग्रीषम के पथिक ज्यों धरनि तरनि-तायो।[118]

जैसे ग्रीष्म ऋतु में यात्री सूर्य तथा पृथ्वी दोनों ओर से संतप्त होता है, वैसे ही हनुमान जी उनकी वेदना तथा संयम की भावना के कारण व्यथित हो गए।

अतिशय क्रोध से उत्तेजित कैकेयी की मुद्रा को कवि नदी के बिम्ब द्वारा अंकित करता है—

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी। मानहुँ रोष-तरंगिनि बाढ़ी ॥[119]

नदी को बाढ़ से उफनता हुआ रूप उसके अंग-प्रत्यंग के रोष-कंपन को व्यक्त करता है। नदी का एक साथ बढ़ जाना कैकेयी के झमक कर खड़े हो जाने को शब्दांकित करता है।

राम की महाप्राणता तथा उनकी निर्लोभ प्रवृत्ति की व्यंजना भी सुन्दर रूप से व्यक्त हुई है—

नव गयन्दु रघुबीर मनु, राजु अलान समान।
छूट जानि वन गवनु सुनि, उर अनन्दु अधिकान ॥[120]

जिस प्रकार नव गजेन्द्र बन्धन से मुक्त होकर वनगमन में प्रसन्नता का अनुभव

करता है। राम का वैसा भाव उनके चारित्रिक उत्कर्ष का ज्ञापक है। यह बिम्ब राम के चरित्र की महनीयता को प्रकट करता है।

राम करौं केहि भाँति प्रसंसा। मुनि महेस मन मानस हंसा ॥[121]

हंस का नीर क्षीर विवेक तथा उसका श्वेत रंग परम्परा से प्रसिद्ध है। सात्विक प्रवृत्ति वाले पात्रों के लिए तुलसी ऐसे उपमान चुनते हैं जो किसी-न-किसी प्रकार शुभत्व तथा सतोगुणी भावना से संपृक्त हैं–

प्रिया बचन मृदु सुनत नृपु, चितयउ आँखि उघारि।
तलफत मीन मलीन जनु, सींचत सीतल बारि ॥[122]

शीतल जल का सिंचन कौशल्या की वाणी की विशिष्टता को स्पष्ट करता है। वे स्वयं पीड़ित होती हुई भी राजा के कष्ट को दूर करती हैं।

भारतीय साहित्य में आरम्भ से ही नेत्रों का उपमान बनकर मीन का प्रयोग होता रहा है–

काल-करम-बस मन कुमनोरथ, कबहुँ कबहुँ कछु भोतो।
ज्यों मुदमय वसि मीन बारि तजि उछरि भभरि लेत गोतो ॥[123]

'मानस' में सीता के नेत्रों के लिए प्रयुक्त करने पर भी कवि इस बिम्ब को नवल सुषमा प्रदान कर सका है। सीता के नेत्रों की दृष्टिनिक्षेप-क्रिया ऐसी लगती है मानो कामदेव के मत्स्य चन्द्रमंडल रूपी पात्र में क्रीड़ारत हो।

जीव आनन्द-रूप होता हुआ भी अज्ञान के कारण नाना प्रकार के दुःखों का अनुभव करता है। जैसे कोई मृग मरीचिका के जल में स्नान करके प्रसन्न हो, उसी प्रकार वह संसार के विषयों में सुखानुभूति करता है। अपने सहज रूप को भूलकर वह स्वयं को उसी प्रकार बद्ध मानता है, जैसे स्वप्न में अकारण ही राज्य को छोड़कर कोई राजा कारागृह में पड़ जाय। माया के आवरण स्वरूप की चर्चा वे एक अन्य बिम्ब में करते हैं–

पुरइनि सघन ओट जल बेगि, न पाइअ मर्म।
मायाछन्न न देखिए जैसे निर्गुन ब्रह्म।[124]

जैसे पत्तों की ओट से जल के दर्शन नहीं होते, वैसे ही माया के आच्छन्न होने से ब्रह्म भी दिखाई नहीं देते।

राम के विषय में मोह करना ऐसे ही है, जैसे निर्मल एवं निर्लेप आकाश में धूलि तथा धूम का भर जाना।

उमा राम विषइक अस मोहा। नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा ॥[125]

आकाश का अन्धकार, धूलि तथा धूमावृत्त होना केवल आभा समान सत्य है। वह सत्य की केवल प्रतीति है। वस्तुतः आकाश धूमादि से कभी आच्छादित नहीं होता। उसका निज रूप निर्मल तथा स्वच्छ ही रहता है। यह बिम्ब राम के स्वरूप की

निर्विकारता तथा उनकी एकरूपता को स्पष्ट व्यक्त करता है।

राकापति षोडस उअहिं, तारागन समुदाइ।
सकल गिरिन्ह दव लाइअ, बिनु रबि राति न जाइ ॥[126]

सोलहों चन्द्र तारागण तथा समस्त पर्वतों की दावाग्नि का प्रकाश भी सूर्य के बिना रात्रि के अन्धकार को दूर नहीं कर सकता है, इसी प्रकार राम के भजन के बिना सारे साधन मिलकर भी संसृति के क्लेश को दूर नहीं कर सकते।

तुलसी वर्ण-व्यवस्था का अतिशय सम्मान करते हैं, वह समाज में व्यवस्था को स्थापित करने के लिए ही आवश्यक है। वह स्वयं में कोई उद्देश्य नहीं है। स्वयं में उद्देश्य हो सकती है भक्ति और भक्तहीन जाति का होने पर भी सामान्य है। कुब्जा के विषय में गोपियाँ कहती हैं—

पावक परत निषिद्ध लाकरी होति अनल जग जानी।
तुलसी सो तिहुँ भुवन गायबी नन्द सुवन सनमानी ॥[127]

जैसे अग्नि में पड़ने पर निकृष्ट लकड़ियाँ भी अग्निरूप ही हो जाती हैं, उसी प्रकार भक्ति पतित-पावन है।

तुलसी के साहित्य में पार्वत्य चित्र बहुत मिलते हैं। वे चित्रकूट आते-जाते रहे थे, अतः उनके चित्त पर पर्वतों की महाकायता का प्रभाव पड़ा होगा। पर काले शिलाखण्डों से युक्त विशाल पर्वतों के प्रति उनके मन में अश्रद्धा का ही भाव है।

तुलसी के प्राकृतिक बिम्ब मनःप्राण लोकचेतना से जुड़े हुए हैं। स्वभावतः उनके प्राकृतिक बिम्ब लोक का जो इतिहास प्रस्तुत करते हैं, वह इस महादेश की प्राचीन संस्कृति के दाय का भोग करने वाली बहुसंख्यक जनता का इतिहास है। वह इतिहास समाज में फैले दम्भ, अभाव, विलासिता और चिन्ताओं का है। तुलसी ने इसकी निष्कृति राम की भक्ति रामराज्य के स्वप्न में पाई थी। आज के जनतन्त्री जीवन के अभ्युदय के लिए तुलसी के साहित्य से पर्याप्त प्रेरणा प्राप्त की जा सकती है।

सन्दर्भ

1. रामचरितमानस, 7/123/ख
2. वही, 1/30/4/2
3. वही, 2/34/1, 4
4. वही, 2/34/1, 4
5. वही, 5/49/7-8
6. वही, 7/94/4
7. वही, 1/307/8
8. वही, 3/11/2
9. वही, 2/213/2
10. वही, 1/253/8
11. वही, 2/2/1
12. वही, 7/30/7
13. गीतावली, 1/84/8
14. कवितावली, 31/4
15. रामचरितमानस, 1/292/2, 3
16. वही, 2/156/3
17. वही, 1/16/4, 5
18. वही, 1/16/4, 6

19. कवितावली, 2/4/4
20. गीतावली, 1/94/2
21. वही, 1/22/6
22. वही, 1/232
23. कवितावली, 2/13/4
24. गीतावली, 5/1/6
25. रामचरितमानस, 6/93/4
26. गीतावली, 2/34/2
27. वही, 1/30/4
28. रामचरितमानस, 7/111/15, 16
29. गीतावली, 1/84/9
30. रामचरितमानस, 1/129/2, 3
31. वही, 4/30/3, 4
32. वही, 6/79 छं.
33. गीतावली, 2/29/4
34. वही, 5/2/2
35. रामचरतिमानस, 2/229 दो.
36. विनयपत्रिका, 173/5
37. रामचरितमानस, 6/78/4
38. वही, 6/32/2
39. वही, 1/280/2
40. गीतावली, 3/16/2
41. गीतावली, 2/83/2
42. रामचरितमानस, 1/160/4
43. विनयपत्रिका, 70/2
44. गीतावली, 2/12/4
45. वही, 5/15/2
46. जानकीमंगल, 138
47. गीतावली, 1/37/2
48. दोहावली, 314
49. रामचरितमानस, 2/75
50. वही, 2/20/2
51. वही, 7/112/7
52. वही, 3/10/10
53. कृष्ण गीतावली, 51/5
54. रामचरितमानस, 2/13/8
55. दोहावली, 235
56. वही, 82
57. रामचरितमानस, 3/20/1
58. कृष्ण गीतावली, 60/6
59. विनयपत्रिका, 11/1
60. रामचरितमानस, 6/103 छंद
61. वही, 2/303
62. रामचरितमानस, 1/232/3
63. वही, 6/83/3
64. गीतावली, 5/10/3
65. रामचरितमानस, 2/64/1
66. विनयपत्रिका, 249/1
67. वही, 70/2
68. रामचरितमानस, 2/54/2
69. वही, 6/88/5
70. गीतावली, 1/37/3
71. रामचरितमानस, 1/5 स्तुति भाग
72. वही, 1/32ख
73. विनयपत्रिका, 235/3
74. रामचरितमानस, 1/259/4
75. वही, 2/35/1
76. वही, 2/160/2
77. वही, 2/229/5
78. कवितावली, 5/5/2-3
79. रामचरितमानस, 2/148/2
80. गीतावली, 6/16/2, 3
81. रामचरितमानस, 6/69/3
82. गीतावली, 2/44/1
83. वैराग्य संदीपनी, 2
84. जानकीमंगल, 132
85. कवितावली, 2/22
86. जानकीमंगल, 89
87. गीतावली, 2/12/4
88. विनयपत्रिका, 18/3
89. कवितावली, 1/2/3
90. गीतावली, 1/18/1
91. रामचरितमानस, 1/231
92. विनयपत्रिका, 105/6

93. गीतावली, 5/23/2
94. रामचरितमानस, 3/35/3
95. गीतावली, 2/68/3
96. रामचरितमानस, 1/307/4
97. कवितावली, 6/30/4
98. रामचरितमानस, 2/28/4
99. विनयपत्रिका, 158/5
100. गीतावली, 3/7/3
101. रामचरितमानस, 3/29/4
102. कवितावली, 6/36/1-2
103. रामचरितमानस, 2/39
104. विनयपत्रिका, 28/2
105. वही, 87/5, 6
106. रामचरितमानस, 1/4/2
107. विनयपत्रिका, 48/5
108. विनयपत्रिका, 263/6
109. रामचरितमानस, 2/271/2
110. विनयपत्रिका
111. विनयपत्रिका, 48/5
112. रामाज्ञा प्रश्न, 7/2
113. रामचरितमानस, 1/230/2
114. रामचरितमानस, 1/259/1
115. वही, 2/29/3
116. वही, 2/35/1
117. गीतावली, 2/83/2
118. वही, 5/15/2
119. रामचरितमानस, 2/34/1
120. वही, 2/51/दो.
121. वही, 1/341/2
122. वही, 2/154
123. विनयपत्रिका, 161/5-6
124. रामचरितमानस, 3/39 क
125. वही, 1/117/2
126. वही, 7/78 ख
127. कृष्ण गीतावली

7

तुलसी-काव्य में प्रकृति का दार्शनिक रूप

तुलसी ने प्रकृति से दृष्टान्त देकर दार्शनिक विचारों को बोधगम्य बनाकर अभिव्यक्त किया है। मानव के लिए जो गुण विशेष उपयोगी और आकर्षक हैं, उन्हीं की चर्चा तुलसी ने प्राकृतिक अवयवों की सहायता से की है।

भारतीय संस्कृति की आध्यात्मिक प्रवृत्ति इस भावना पर आधारित है कि सारी सृष्टि का उद्‌भव एक ही उद्‌गम से है। 'सब में व्यापक' से तात्पर्य सब मनुष्यों में व्यापक तो है ही; इसके अतिरिक्त पेड़, पौधे, पशु, पक्षी, जल, जड़-चेतन सभी में वह विद्यमान है। प्रकृति ब्रह्म का ही गोचर स्वरूप है।

पशु-पक्षी

मनुष्यों की कौन कहे खग, मृग, मीन, यहाँ तक कि साँप, बिच्छू भी अपने हृदय की कुटिलता भूलकर मन्त्रमुग्ध से बने हुए राम का दासत्व करने के लिए तैयार है—

राम सकल नामन्ह से अधिका।
होउ नाथ अघ-खग-गन अधिका।[1]

रामनाम पापरूपी पक्षियों के समूह के लिए बधिक के समान है। पक्षियों के समूह की तुलना पापपुंज से की गई है और रामनाम उस पाप राशि का विनाश करने वाला है। भक्ति में राम-नाम का अधिक महत्त्व है—

सुमिरे कृपालु के मराल होत खूसरो।[2]

राम-नाम से मूर्ख भी हंस अर्थात् ज्ञानी हो जाता है। हंस ज्ञान, उज्ज्वलता और धवलता का प्रतीक माना जाता है। रामनाम की महिमा से बिगड़े हुए कार्य भी बन जाते हैं।

सियाराम सरूप अगाध अनूप बिलोचन मीननु को जलु है।[3]

जिस प्रकार मछलियों के लिए जल का अभाव जीवन के अन्त का सूचक है और जल का अस्तित्व जीवन का सूचक है, जल के बिना मछलियों के जीवन की सत्ता नहीं है, उसी प्रकार मनुष्य के जीवन के आधार के लिए राम-नाम अति आवश्यक है। इस प्रकार मछली का दृष्टान्त देकर राम की महिमा को पुष्ट किया है।

सखि सरोष प्रियदोष विचारत प्रेम पीन पीन छीबै।
खग मृग मीन सलम सरसिज गति सुनि पाहनो पसीजे ॥[4]

जिस प्रकार पपीहा, मछली, मृग, शलभ, कमल का एकनिष्ठ और सच्चा प्रेम होता है, उसी प्रेम-भाव से ईश्वर के प्रति मानव को समर्पित होना चाहिए। ईश्वर-प्राप्ति प्रेम द्वारा ही हो सकती है, वह भी चातक, मछली और मृग के जैसा प्रेम इन जड़ जीवों का आदर्श प्रस्तुत करके मनुष्य को प्रेम का अर्थ सिखाया गया है।

नाम सुप्रेम पियूष ह्रद तिन्हहुँ किए मन मीन।[5]

रामनाम के अमृत सरोवर में अपने मन को मछली बनाना चाहिए। भक्ति और प्रेम के सरोवर में डूबने से ही मोक्ष प्राप्त हो सकता है। प्रत्येक दर्शन में विषय-वासनाओं को बुरा कहा गया है। वे मनुष्य को ईश्वर से विमुख कर देती है। संसार मायाजाल है, इसमें लिप्त नहीं होना चाहिए—

दीप सिखा सम जुबति, जन, मन जनि होसि पतंग।
भजहि राम, तजि काम मद, करहि सदा सतरंग ॥[6]

जिस प्रकार दीपक की लौ पर मँडराकर पतंगा जल जाता है, उसी प्रकार विषय-वासनाओं में लिप्त विषयी और कामी जन अपने आपको नष्ट कर लेता है। कृत्रिम आकर्षण के कारण पतंगा अपना सब कुछ नष्ट कर डालता है। उसी प्रकार विषय-वासनाओं द्वारा मनुष्य ईश्वर विमुख हो जाता है।

रसना साँपिनि, बदन बिल, जे न जपहिं हरिनाम।
तुलसी प्रेम न राम सों, ताहि बिधाता बाम ॥[7]

साँप की जीभ विषैली होती है। उससे लोगों को कष्ट ही पहुँचता है। साँप के विषैलेपन का डर दिखाकर कवि ने राम-भक्ति की ओर प्रेरित किया है। प्रकृति पग-पग पर कवि के लिए दृष्टान्त प्रस्तुत कर रही है। उसका प्रत्येक विचार प्राकृतिक क्रियाओं का प्रतिबिम्ब है।

राम के बालरूप से विरक्त दुर्जनों की जड़ता पर क्रोधित होकर तुलसी उनके जीवन को 'खर, सूकर, स्वान समान' ही घोषित करते हैं। आगे चलकर महाकवि ने राम-विमुख व्यक्तियों को उक्त पशुओं से भी हीन माना है। वे तो जड़ हैं, दया के पात्र हैं, परन्तु मनुष्य तो चेतन होता है—

तिन्हते खर सूकर स्वान भले,
जड़तावस ते न कहें कछु वै।[8]

इस प्रकार पशुओं की अज्ञानता एवं मूर्खता से तुलना कर मनुष्य को जगाकर कवि ने उसको ईश्वर प्रेम का सन्देश दिया है।

राम दुष्टों का नाश करने वाले हैं—

राम-रोष-पावक प्रबल निसिचर सलभ-समान।[9]

पतंगा आसानी से अग्नि में जल जाता है। इस दृष्टान्त के द्वारा कवि ने 'मानस' में कहा है कि विषय वासनाओं में पतंगे के समान नहीं जलना चाहिए और अब 'रामाज्ञा प्रश्न' में वे कहते हैं कि दुष्ट लोग राम के क्रोध में पतंगे के समान जल जाते हैं। राम अपनी क्रोधाग्नि में दुष्टों को पतंगों के समान भस्म कर देते हैं।

यह विस्तृत सृष्टि उस सूक्ष्म का विराट् रूप है। अव्यक्त का व्यक्त शरीर है। उस सत्य की प्रातिभासिक सत्ता होने के कारण संसार सत्य है। अन्यथा वह सर्वथा असत्य है। राम से अलग उसकी सत्ता नहीं है। आवश्यकता केवल हंस वाले नीर-क्षीर विवेक की है—

सन्त हंस गुन गहहि पय, परिहरि बारि-बिकार।[10]

दोष एवं गुण इस जगत् में ऐसे मिले हुए हैं, जैसे दूध और पानी। दोष-गुण का अर्थ तुलसी ने पानी मिले दूध के उदाहरण से समझाया है। हंस जैसे सार तत्त्व को ले लेता है और पानी को छोड़ देता है, उसी प्रकार गुणों को ग्रहण करके दोषों को छोड़ देना चाहिए।

मोह-ममता का त्याग कर देना चाहिए। यह विनाशकारी है—

ममता तरुन तमी अंधिआरी। राग द्वेष उलूक सुखकारी।
तब लगि बसति जीव मन माहीं। अब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं।[11]

ममता पूर्ण अँधेरी रात है, जो राग-द्वेष रूपी उल्लुओं को सुख देती है। जब ज्ञान का सूर्योदय होता है, तभी इसका नाश होता है। मूर्ख और अज्ञानी इस संसार में उल्लुओं की तरह रात्रि (अज्ञान) में प्रसन्न रहते हैं। मायाजाल से सदा बचना चाहिए।

यह जगत् दुःखों का घर है। इसे सर्प के उदाहरण द्वारा कवि ने सरलता से समझाया है—

राम-नाम महामनि, फनि जग जाल रे।
मनि लिये फनि जियै, ब्याकुल बिहाल रे।[12]

संसार का जाल सर्प है राम-नाम उसकी प्राप्य मणि है। मणि लेने के लिए जिस तरह सर्प व्याकुल हो जाता है, वैसे ही संसार को राम-नाम के लिए व्याकुल रहना चाहिए। सर्प जैसे विषमय और दुःख-स्वरूप होता है, वैसे ही यह संसार दुःखों का घर है।

सोवत सपनेहूँ सहै संसृति-सन्ताप रे।
बूड्यो मृग-बारि खायो जेवरी को साँप रे।[13]

जब तक मनुष्य अज्ञान में रहता है, तब तक वह संसार के दुःख सहता है। कभी मृगतृष्णा के पानी में गोते लगाता है, कभी उसे जेवरी का सर्प खा लेता है। संसार को सत्य मानना भय है। संसार मिथ्या है। संसार सर्प स्वरूप दुःखमय है। जैसे रस्सी में सर्प का भ्रम होता है, वास्तव में वह रस्सी है, इसी प्रकार बाहरी रूप से प्रभावित होने वाला

व्यक्ति सदा अकारण दुःख भोगता है, ज्ञान होने पर दुःख का लेश नहीं रहता।

जगत् में मनुष्य जन्म लेता है, सांसारिक कार्य करता है। फिर भी सभी मनुष्यों में समानता नहीं है। कोई सुखी है, कोई दुःखी है। जीव कौन है? वह क्यों जन्म लेता है। जीव के लिए जीव से बढ़कर अध्ययन की वस्तु और कोई नहीं हो सकती। तुलसी ने विषयी लोगों को असन्तों की कोटि में रखा है और उन्हें सर्वथा त्याज्य बताया है। सत्संगति सुखकारक है, दुष्टसंगति विनाश का मूल है।

तुलसी ने जड़ जीवों को पशु से भी हीन माना है। जीव बन्धनयुक्त भी है और साथ ही वह बन्ध-मुक्त भी है। अज्ञान में पड़ा हुआ जीव बन्धन-युक्त है और जीव स्वयमेव मुक्त है। अपने विचारों को समझाने के लिए प्राकृतिक नियमों का कवि ने बहुलता से उपयोग किया है—

बिथि लगि लघु कीट अवधि सुख सुखी दहत।
पशु लो पशुपाल ईश बाँधत छोरत महत्त ॥[14]

ग्वाला पशु को रात्रि में बाँधता है और सवेरे चरने के लिए छोड़ देता है। वैसे ही जीव अविद्या रूपी रात्रि में मोड़-बन्धन से बँधता है और ज्ञान का सवेरा होने पर छूट जाता है। जब उसे सत्य का आभास हो जाता है, तो जीव झूठे बन्धन तोड़ देता है। पशु बँधते भी हैं और खुलते भी हैं। उनका बन्धन स्थायी नहीं है। इसी प्रकार अज्ञान का बन्धन भी हट सकता है। स्वयं ईश्वर माया-मोह से ऊपर है। यह 'माया' उसी की रची हुई है। वह इससे प्रभावित नहीं हो सकता।

देखि प्रताप मूढ़ खिसिआना। करे लाग माया बिधि नाना।
जिमि कोउ करै गरुड़ सैं खेला। डरपावै गहि स्वल्प सपेला ॥[15]

राम का प्रताप देखकर मेघनाद लज्जित हो गया और अनेक प्रकार की माया करने लगा। वह ऐसे लग रहा था मानो कोई व्यक्ति छोटा-सा साँप का बच्चा हाथ में लेकर गरुड़ को डराए। सर्प गरुड़ का भोजन है, साँप गरुड़ से डरता है न कि गरुड़ साँप से भयभीत होता है और वह भी छोटा-सा साँप का बच्चा गरुड़ को क्या डराएगा?

तुलसी ने राम के अलौकिक स्वरूप का भी वर्णन किया है। जब राम समुद्र पार जा रहे थे तो समुद्र ने विकराल रूप धारण कर लिया, लेकिन जब राम ने बाण संधान किया तो समुद्र भयभीत हो गया—

मकर उरग झष गन अकुलाने। जरत जन्तु जलनिधि जब जाने।
कनक थार भरि न मनि गन नाना। विप्र रूप आयउ तजि माना।[16]

प्रभु के बाण संधान से समुद्र में विद्यमान मगर, साँप तथा मछलियाँ व्याकुल हो गईं। जब समुद्र ने जीवों को जलते देखा तो वह सोने के थाल में मणियाँ लेकर आया। इस प्रकार राम की शक्ति का अलौकिक प्रदर्शन भी कहीं-कहीं तुलसी ने किया है।

माया पर विचार करते हुए भक्त तुलसीदास ने विद्या माया को वरेण्य एवं अविद्या को त्याज्य माना है। माया के वशीभूत मनुष्य बुद्धिहीन और लालची कुत्ते तथा गधे की भाँति भिन्न-भिन्न प्रकार की विषय-वासनाओं में लिप्त रहते हैं—

तदपि न तजत स्वान अज खर ज्यों फिरत विषय अनुरागे।[17]

कुत्ते, गधे, बकरे की तरह सब विषय से प्रीति करते हैं और अनेक प्रकार के कष्ट सहते हैं। पशुओं के आचरण के माध्यम से मनुष्यों के अज्ञान को सरलता से व्यक्त किया गया है। विषय-वासनाओं द्वारा वास्तविक सुख मिलना असम्भव है।

जेहि सर काक, कंक, बक, सूकर क्यों मराल तहं आवत।[18]

जिस तालाब में कौए, गिद्ध, बगुले और सूअर रहते हैं, वहाँ हंस नहीं रहता। गिद्ध, बगुले बुरी प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं। मनुष्य की विषय-वासनाओं के प्रतिनिधि हैं। हंस ज्ञान और प्रकाश का प्रतीक है। विषय-वासनाओं में लिप्त मनुष्य को ज्ञान प्राप्त नहीं होता और ज्ञानी सन्त उस विषय-वारि के पास नहीं जाते जैसे कि गन्दे पशुओं से युक्त तालाब में हंस कभी नहीं जाता।

मोहमय कुहू निशा, बिहाल काल विपुल व्याल सोह
खोयो सो अनूप रूप स्वप्न जो परे।[19]

अविद्या ही अमावस की रात्रि है। विकराल काल ही सर्प है। अविद्या माया के कारण मनुष्य को ज्ञान का प्रकाश दृष्टिगोचर नहीं होता। प्रकृति में होने वाली घटनाओं से कवि ने सर्वत्र शिक्षा ग्रहण की है। माया से ही क्षिति जल पावक पवन पृथ्वी की रचना होती है। इन्हीं पंचतत्त्वों से शरीर बनता है। जड़ जीव अपने शरीर को ईश्वर से अलग सत्य और अपना समझता है। इसी का नाम माया है।

रुचिर रूप-आहार-वश्य उन्ह, पावक लोह न जान्यो।
देखत विपति विषय न तजत हौं ताते अधिक अयान्यो।[20]

विषय वासनाएँ बाहरी सुन्दरता से मनुष्य को आकर्षित कर लेती है और बाद में पतंगे और मछली की तरह मनुष्य अपना जीवन नष्ट कर लेता है। विषयों की खोज में मनुष्य भटकता है। लेकिन विषयों के भोग से उसकी लालसा और बढ़ जाती है और वह 'भोग' के साधन एकत्रित करते-करते ही समाप्त हो जाता है। जैसे पतंगा अग्नि की सुन्दरता देखकर और मछली चारे के लालच में फँसकर जीवन समाप्त कर बैठती है। मनुष्य को इस मिथ्या आकर्षण से दूर रहना चाहिए।

रविकर-नीर बसे अति दारुण मकर रूप तेहि माहीं।
बदन हीन सो ग्रसे बराबर पान करन जे जाहीं॥[21]

प्यासा मृग सूर्य की किरणों के कारण प्रतीयमान लहरों को जल समझकर अपनी प्यास बुझाने के लिए उस ओर जाता है, पर वहाँ जल को न पाकर दौड़ता-दौड़ता काल के वश में हो जाता है। वैसे ही वह सारा संसार मृगतृष्णा के

समान है। जो वस्तु दिखाई देती है, वह प्यास नहीं बुझाती तो मनुष्य प्यासे मृग की भाँति दूसरे विषय के पाने का प्रयत्न करता है। फिर कोई अन्य वस्तु चाहता है। इस प्रकार मृगतृष्णा में ही अपने प्राणों का त्याग कर देता है। वास्तव में प्रकृति द्वारा दर्शन जैसे नीरस विषय को सरस ओर सरल बनाकर सन्त कवि ने प्रस्तुत कर दिया है।

ज्यों जग बैरी मीन को, आपु सहित बिनु बारि।
त्यों तुलसी रघुबीर बिनु, गति आपनी विचारि॥[22]

जल को छोड़कर सारा जगत् ही मछली का वैरी है। यहाँ तक कि वह स्वयं भी वैरी का ही काम करती है। जीभ के स्वाद के लिए काँटे में मुँह फँसा लेती है। जगत् के मोह में फँसकर मनुष्य मछली के समान स्वयं अपनी हानि करता है। विषय वासना में फँसकर ज्ञान नष्ट हो जाता है और जीव दुःख में डूबकर अपना नाश कर लेता है, मछली की तरह अपना अनिष्ट कर डालता है।

सोई सेंवर तेइ सुवा सेवत सदा बसन्त।
तुलसी महिमा मोह की सुनत सराहत सन्त॥[23]

वही सेमल का पेड़ है। तोता बार-बार अनुभव करता है कि फल में गूदा नहीं है तो भी मोहवश वसन्त ऋतु जाने पर सदा तोता उस पर मँडराता है। जैसे तोते को एक बार चोंच मारने से ज्ञात हो जाता है कि सेमल के फूल में कोई तत्त्व नहीं है, लेकिन अज्ञान और लालचवश फिर चोंच मारता है कि शायद इसमें कुछ रस मिल जाय। यही स्थिति मोह के वशीभूत मनुष्य की हो जाती है।

जड़ ओर चेतन के बीच एक बन्धन-सा पड़ गया है। यह बन्धन मृषा है, भ्रम है। महामोह का एक अंग ही है। ज्ञानवान् लोगों को कुछ भ्रान्ति नहीं है। उन्हें सर्वत्र और सर्वदा ब्रह्म का अनुभव होता है। जीव वास्तव में सच्चिदानन्द ब्रह्म का रूप ही है। केवल प्रेमवश अपने को ब्रह्म से पृथक् समझता है।

कर्मों में सार्थकता होनी चाहिए। व्यर्थ आडम्बर या कर्मकाण्डों से कभी मुक्ति नहीं मिलती, दुःख ही मिलता है–

योग बाग जप विराग तप सुतीर्थ अटत।
बाँधिवे को मयगयन्द रेणु की रजु बटत।[24]

योग, यज्ञ, जप, वैराग्य, तप और सुन्दर तीर्थाटन ऐसे हैं, जैसे संसार रूपी हाथी को बाँधने के लिए धूल की रस्सी। हाथी को बाँधने के लिए अतिशक्तिशाली लोहे की जंजीर चाहिए, दूसरी रस्सियों को तो हाथी तोड़ देता है। हाथी बहुत शक्तिशाली होता है। मिट्टी की रस्सी यदि बन सके तो वह उसे एक क्षण के लिए भी नहीं रोक सकती। संसार के कर्मकाण्ड मिट्टी की रस्सी के समान हैं। जिनसे संसार रूपी हाथी को वश में नहीं किया जा सकता।

कई व्यक्तिगत मनोयोग से कर्म करते हैं और उनका आचरण भी अच्छा होता है। फिर भी वे अपने कार्य में सफल नहीं हो पाते। इसका कारण उनका भाग्य या पूर्वजन्म के कर्मों का फल है। इन्हीं कर्मों के कारण मनुष्य आवागमन के चक्कर में पड़ता है।

विषय-बारि मन-मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक।
ताते सहौं विपति अति दारुन जनमत जोनि अनेक॥[25]

जैसे जल मत्स्य को अतीव महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है, वह उसे एक पल के लिए भी नहीं छोड़ना चाहता है, वैसे ही मनुष्य को विषय वासनाएँ महत्त्वपूर्ण लगती हैं और वह दुष्कर्म करता हुआ आवागमन के चक्कर में पड़ा रहता है।

जब मनुष्य कोई कार्य करता है तो उसका कोई-न-कोई दृश्य या अदृश्य उद्देश्य होता है। भक्ति का उद्देश्य मुक्ति प्राप्त करना है। दर्शन इसी मुक्ति की व्याख्या का नाम है।

सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन।
नाम सुप्रेम पियूष-ह्रद तिन्हहुँ किए मन मीन।[26]

मनुष्य की देह पाकर ही मोक्ष प्राप्त हो सकती है। यह देह पाकर मुक्ति की खोज करना चाहिए। जिन्होंने सुन्दर प्रेम रूपी अमृत सरोवर में अपने मन को मछली बना रखा है, वे ही मोक्ष प्राप्त करते हैं। जैसे मछली जल के बिना कुछ नहीं चाहती। उसी प्रकार मनुष्य को और सब कुछ छोड़कर मोक्ष प्राप्ति के निमित्त राम-नाम की साधना करनी चाहिए।

भगवान् का भजन करना चाहिए, कालरूपी सर्प संसार को खाए जा रहा है। कालरूपी सर्प के कारण सब नष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार सर्प का विष मृत्यु का कारण होता है, उसी प्रकार दुष्कर्म मनुष्य के विनाश के कारण होते हैं। किन्तु मृत्यु और मोक्ष में अन्तर है। मृत्यु से मनुष्य की मुक्ति नहीं होती। वह फिर अपने कर्मों के कारण जन्म लेता है। मुक्ति तो सदेह भी सम्भव है। उसके लिए मृत्यु आवश्यक नहीं है। इसलिए सर्प से जैसे सब बचकर रहते हैं, उसी प्रकार दुष्कर्मों से भी बचना चाहिए, अन्यथा मुक्ति प्राप्त नहीं होती—

तुलसीदास हरिणजहि आश तजि काल-उरग जग खायो।[27]

इसी प्रकार विनयपत्रिका का एक अन्य उदाहरण है जिसमें मुक्ति-मार्ग का एक परिचित रहस्य दृष्टान्त के माध्यम से समझाया गया है—

मोह-मूषक-मार्जार, संसार-भय-हरण, तारण-तरण अभयकर्ता।[28]

मोहरूपी मूषक बड़े ज्ञानियों के तप रूपी वस्त्र कुतर डालता है और उनकी भक्ति रूपी खेती खा जाता है। प्रभु का स्मरण ही उससे रक्षा के लिए मुक्ति का एकमात्र साधन है।

जिस प्रकार जल से मछली एकनिष्ठ प्रेम करती है, उसी प्रकार ईश्वर प्राप्ति के लिए ईश्वर भक्ति आवश्यक है। दोहावली और कवितावली में मछली के एकनिष्ठ प्रेम द्वारा भक्ति की आवश्यकता की चर्चा कवि ने की है और वही मछली जब चारे के लालच में प्राण खो देती है तो उसका यह कर्म 'विनयपत्रिका' में विषय-वासनाओं से दूर रहने का सन्देश देता है। इस प्रकार मछली की विभिन्न क्रियाओं द्वारा विभिन्न दार्शनिक रहस्यों की व्याख्या सुगम हो गई।

सूर्य और चन्द्र

राम में रूप, गुण, शील, शक्ति और सौन्दर्य का अनुपम समन्वय है। तुलसी को राम का सगुण रूप विशेष प्रिय है। वे ब्रह्म को सगुण मानकर उसकी आराधना करते हैं। जहाँ ज्ञान चर्चा आवश्यक होती है, केवल वहीं ब्रह्म की निर्गुण रूप की विवेचना करते हैं। तुलसी ने राम को बार-बार निर्गुण-सगुण स्वरूप कहा है। इस सगुण रूप को व्याख्यायित करने के लिए वे प्रकृति से सहर्ष सहायता लेते हैं—

नर नारायन सरिस सुभ्राता। जग पालक बिसेषि जन त्राता।[29]

जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा पृथ्वी के उपकारक हैं, उसी प्रकार राम इस पूर्ण सृष्टि के उपकारक हैं। सूर्य और चन्द्रमा सृष्टि के लिए हितकारी और आवश्यक हैं, उसी प्रकार ब्रह्म सबका कल्याण करता है।

राम सत्, चित्, आनन्द स्वरूप हैं—

राम सच्चिदानन्द दिनेसा। नहिं तहं मोह निसा लवलेसा।
सहज प्रकास रूप भगवाना। महि तहिं पुनि बिग्यान बिहाना।[30]

राम सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। वे सूर्य के समान प्रकाशवान हैं। जहाँ सूर्य रूपी राम हैं, वहाँ मोह रूपी अन्धकार नहीं रह सकता। रात्रि मोह रूप है और प्रातःकाल ज्ञान रूप है। राम-नाम सूर्य की तरह अन्धकार को दूर करने वाला है।

वृद्धावस्था में आकर जीव निराश हो जाता है। उसे अपनी त्रुटियों का अनुभव होता है—

ममता बस तै सब भूलि गयो, भयो मोह महामय भागहि रे,
जरठाई दिसा रविकाल उग्यो, जहुँ जड़ जीव न जाग रे।[31]

मिथ्या सुखों में ही जीव सब कुछ भुला देता है। वृद्धावस्था रूपी पूर्व दिशा से काल रूपी सूर्य का उदय हो गया। मनुष्य को जब अपनी मृत्यु का आभास होता है, तभी ज्ञान ओर सत्य उसे कुछ-कुछ दिखाई देने लगते हैं। जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश में वे सब वस्तुएँ प्रकाशित हो जाती हैं, जो अन्धेरे में विद्यमान होते हुए भी दिखाई नहीं देती थीं, उसी प्रकार वृद्धावस्था रूपी सूर्य से अन्धकार का नाश और सत्य का उदय होता है। तब ज्ञात होता है कि कुछ साथ लेकर नहीं जाना, सब यहीं छोड़ जाना

है, कोई किसी का सम्बन्धी नहीं है। सूर्य प्रकाश और ज्ञान का प्रतीक है।

में-तें मेट्यो मोह तम, उग्यो आतमा भानु।
सन्त राज सो जानिये, तुलसी या सहिवानु ॥[32]

आत्मा रूपी सूर्य के उदय होने से अज्ञान रूपी अन्धकार नष्ट हो जाता है। सूर्य प्रकाश का स्रोत है, ज्ञान प्रकाशमय है, इसीलिए सदा प्रकाश ही ज्ञान का प्रतिनिधित्व करता है। ज्ञान से युक्त जीव सन्तों की कोटि में आता है।

माया का परिवार प्रबल भी है और अमित भी—

राम दूरि माया बढ़ति, घटति जानि मम मोह।
भूरि होत रबि दूर लखि, सिर पर पगतर छाहे।[33]

सूर्य को दूर देखकर छाया लम्बी हो जाती है। सूर्य सिर पर आ जाता है तब वह ठीक पैरों के नीचे आ जाती है। उसी प्रकार राम से दूर जाने पर माया बढ़ती है और पास आने पर घटती है। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि सूर्य के ढलने के समय छाया लम्बी ओर पूर्ण दोपहर को छाया छोटी होती है। उसी प्रकार मोह में लिप्त होने पर दुःख बढ़ते हैं और ज्ञान होने पर दुःख दूर होते हैं। प्रकृति में प्रचलित एक नियम द्वारा माया की सुन्दर व्याख्या कवि ने की है।

रजत सीप महुँ भास जिमि, ज था भानु कर बारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ, भ्रम न सकइ कोउ टारि ॥[34]

सीप में चाँदी और सूर्य की किरणों में पानी की प्रतीति होती है। यह प्रतीति बिलकुल असत्य है। लेकिन इस भ्रम को कोई हटा नहीं सकता। जिस व्यक्ति को किरणों में पानी का भ्रम हो जाता है, यदि उससे कहा जाय कि यह मिथ्या है, भ्रम है, तो वह कभी स्वीकार नहीं करेगा। भ्रम उसे उस समय सत्य दिखाई देता है। यह भ्रम उस समय तक सत्य है जब तक कि मनुष्य को ज्ञान नहीं हो जाता।

निज भ्रम नहिं समुझहि अग्यानी। प्रभु पर मोह धरहिं जड़ प्रानी ॥
जथा गगन घन पटल निहारी। झाँपेउ भानु कहहिं कुबिचारी ॥[35]

अज्ञानी मनुष्य अपने भ्रम को तो समझते नहीं और राम पर उसका आरोप करते हैं। आकाश में बादलों का पर्दा देखकर कुविचार कहते हैं कि बादलों ने सूर्य को ढक लिया है जबकि किसी में इतना बल नही है कि वह सूर्य को आच्छादित कर सके, बादल भी सूर्य को ढकते नहीं वरन् उसके सामने आ जाते हैं। मनुष्य किस प्रकार भ्रम को सत्य मान लेता है, इसका सुन्दर उदाहरण प्राकृतिक क्रिया द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

जिस प्रकार वसन्त में वन का सौन्दर्य अपने पूर्ण विकास पर होता है और उसका दृश्य अतीव मनोहारी एवं शान्तिदायक होता है। उसी प्रकार ब्रह्म भी अतीव सौन्दर्ययुक्त हैं। 'जानकी मंगल' में सगुण राम के रूप और सौन्दर्य की उपासना एवं प्रशंसा में शरत् कालीन चन्द्रमा की निन्दा बहुत सहायक हुई है—

बदन सरद बिधु निन्दक सहज मनोहर।[36]

जिस प्रकार शरत्कालीन चन्द्रमा शीतल, सुन्दर और सुखदायी होता है, उसी प्रकार प्रभु का सगुण रूप इससे भी अधिक मनोहारी एवं निर्मल है। सगुण रूप को प्रदर्शित करने के लिए कवि ने चन्द्रमा की सुन्दरता का आश्रय लिया है।

जब तक आत्मज्ञान नहीं होता, तभी तक जीव दुःखमय है। वह जगत् की विषय-वासना में इतना लिप्त रहता है कि मिथ्या को सच समझकर दुःख भोगता है।

ईंधन अग्नि लगाइ कल्पशत औटत नाश न पावे।
तरु कोटर महं बसे विहंग तरु काटे मरे न जैसे।
साधन करिअ विचारहीन मन शुद्ध होइ नहिं तैसे।
अन्तर मलिन विषय मन अति तन पावन करिअ पखारे।[37]

कढ़ाह में भरे हुए घी के भीतर चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब दिखता है। ईंधन से आग लगाकर सौ वर्ष तक औंटाते रहो, चन्द्र का नाश नहीं होता। वृक्ष के कोटर में जो पक्षी रहता है वह वृक्ष काटने से नहीं मरता, उड़ जाता है। बाहरी देह की शुद्धि या केवल कोरा विद्याध्ययन ही जीव के लिए काफी नहीं है। उसे पूर्ण रूप से ब्रह्म के ज्ञान के प्रकाश का अनुभव करना चाहिए। इस प्रकार सत्य और असत्य को प्रकृति की सहायता द्वारा सुन्दर रूप से क्रियान्वित किया है।

सूर्य के प्रकाश से ज्ञान की तुलना की है। जिस प्रकार प्रकाश में सब कुछ दृष्टिगोचर हो जाता है और अँधेरे में होने वाले भ्रम दूर हो जाते हैं, उसी प्रकार ज्ञान से मोह और विषय-वासनाएँ दूर हो जाती हैं। राम सूर्य के समान प्रकाशवान और तेजस्वी है। उनके अस्तित्व का ज्ञान होने से ही अज्ञान का नाश हो जाता है।

जब कवि को 'ज्ञान' की व्याख्या अभीष्ट होती है, तब सूर्य ही उसका सबसे बड़ा सम्बल होता है। सूर्य के माध्यम से 'ज्ञान का स्वरूप' कवि स्पष्ट कर सका है क्योंकि जो सूर्य की विशेषताएँ हैं, वे ही ज्ञान की भी विशेषताएँ हैं।

मनुष्य के लिए ज्ञान-प्राप्ति अतिआवश्यक है, इसीलिए इसका स्वरूप सूर्य द्वारा कवि ने सरलता से समझाया है। 'मानस', 'गीतावली', 'कवितावली', 'विनयपत्रिका' सब में सूर्य को ज्ञानस्वरूप माना गया है। जिस प्रकार सूर्य जीवन-रक्षा और जीवन-यापन के लिए आवश्यक है, उसी प्रकार ज्ञान मानव रक्षा और आत्मा के लिए आवश्यक है। गायत्री-मन्त्र में सविता को ईश्वर का स्वरूप माना गया है, गोस्वामी जी उसको ज्ञान (ब्रह्म ज्ञान अथवा आत्म ज्ञान) का पर्याय भी कहते हैं।

कमल

प्रकृति के अवयवों द्वारा ब्रह्म की विराटता प्रदर्शित करके उसके निर्गुण रूप को अप्राप्य मानते हुए कवि ने सगुण रूप को प्रधानता दी है। जैसे पूरा आकाश देखा नहीं

जा सकता, पूरी पृथ्वी की परिक्रमा नहीं की जा सकती, उसी प्रकार ब्रह्म का निर्गुण रूप मनुष्य की ज्ञान की सीमा से परे है। इसीलिए रूपोपासना का महत्त्व है। संसार की कोई भी वस्तु भगवान् का पूरा स्वरूप नहीं है, उसका प्रतिबिम्ब ही सर्वत्र झलक रहा है। उपमान होते हुए भी जागतिक अथवा प्राकृतिक वस्तुएँ पर्याय नहीं हैं–

तुलसी बंक बिलोकनि मृदु मुसुकानि।
कस प्रभु नयन कमल अस कही बखानि॥[38]

राम के नेत्रों को कमल नहीं कहा जा सकता, क्योंकि नेत्र नित्य प्रफुल्लित रहते हैं और कमल रात्रि में कुम्हला जाते हैं। इस प्रकार प्रकृति के एक नियम को प्रदर्शित करके उसके किसी अवयव को राम के नेत्रों से हीन बताकर राम का रूप-माधुर्य द्विगुणित कर दिया है–

तन की दुति स्याम सरोरुह लोचन कंजकी मंजूलताई हरें।[39]

राम कां शरीर नील कमल के समान, नेत्र कमल की शोभा हरने वाले और दाँत बिजली के समान हैं। तुलसी काव्य में निर्गुण की अपेक्षा सगुण को कवि ने अधिक स्थान दिया है। उस सगुण रूप को प्रदर्शित करने के लिए कवि प्रकृति का ही आश्रय लेता है।

तुलसी ब्रह्म की निर्गुण अवस्था को सगुण अवस्था से भिन्न समझते थे। ब्रह्म निर्गुण भी है और सगुण भी। स्थान-स्थान पर निर्गुण ब्रह्म की उपासना कठिन बताई गई है–

आपु कंज-मरकन्द सुधाह्रद हृदय रहत नित बोरे।
हम सों कहत बिरह स्रम जेहे गगन-कूप खनि खोरे॥[40]

सब सौन्दर्य से प्रभावित होते हैं। जिस प्रकार कमल के सौन्दर्य से प्रभावित भ्रमर उसका रसपान कर आनन्दित होता है, उसी प्रकार प्रभु का सगुण रूप आनन्ददायक है। आकाश के असीम विस्तार में सौन्दर्य की प्राप्ति सम्भव नहीं, इसलिए उसका ध्यान कठिन है।

कभी-कभी पालक प्रकृति भयानक रूप धारण कर लेती है तो भक्तवत्सल राम मनुष्य की रक्षा करते हैं–

सेवक-सरोरुह सुखद भानु भोर को।[41]

जिस प्रकार कमल सूर्य के प्रकाश से प्रफुल्लित होता है, उसी प्रकार भक्त ईश्वर की कृपा से सुख प्राप्त करता है। स्त्री को माया माना गया है। ऋतु-विशेष में प्राकृतिक सौन्दर्य अपने विकास पर होता है, पेड़-पौधों का समपूर्ण विकास होता है। उसी प्रकार माया-मोह के वन को विकसित करने के लिए स्त्री वसन्त ऋतु के समान है।

धर्म सकल सरसीरुह बृंदा। होइ हिम तिन्हहि दहइ सुख मंदा॥
पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई॥[42]

समस्त धर्म कमलों के झुण्ड के समान है। यह विषयराशि स्त्री हिम ऋतु होकर उन्हें जला डालती है। कमल पाले में मुरझा जाते हैं। उस प्रकार ज्ञान नष्ट होने से मनुष्य निराधार हो जाता है। कमल का पाले से सौन्दर्य नष्ट हो जाता है लेकिन वह हरी काई और फलती-फूलती है जिससे किसी को कोई लाभ नहीं होता। उसी प्रकार स्त्री के मोह में ज्ञान का नाश और अज्ञान का विस्तार होता है।

जिस प्रकार कमल देखने में सुन्दर होता है, सब उसे प्राप्त करने के लिए लालायित रहते हैं, उसी प्रकार सगुण राम अतीव सौन्दर्यशाली हैं इसलिए मनुष्य को उन्हें प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। मनुष्य का स्वभाव है कि सौन्दर्य उसे प्रभावित करता है और वह सुन्दर वस्तु पर अपना अधिकार करना चाहता है। उसकी इसी प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर कवि सगुण ब्रह्म को कमल के समान सुन्दर कहता है जिससे साधारण मनुष्य का मन उसमें रमे और यह उस ईश्वर को प्राप्त करने का प्रयत्न करे। सभी रचनाओं में यही भाव का निर्वाह है।

प्रकृति के अन्य तत्त्व

ब्रह्म निर्गुण हो या सगुण, परन्तु वह है सर्वव्यापी। सर्वव्यापी है तो वह निराकार भी होगा क्योंकि आकार में एकदेशीयता आ जाती है। सगुण का अर्थ होता है कल्याणक गुण-गणो का आकार। उस परमात्मा में अनन्त गुण है परन्तु मानव के लिए जो गुण विशेष उपयोगी और आकर्षक हैं, उन्हीं की चर्चा तुलसी ने प्राकृतिक अवयवों की सहायता से की है–

सब अंग रुचिर बिसोर स्याम घन जेहि हृदि जलब असम हरि प्यारे।
तेहि उन क्यों समात बिराट बपु स्यो महि सरित सिन्धु गिरि मारे ॥[13]

जिस हृदय में श्याम मेघ के समान सुन्दर राम हैं, उस हृदय में निर्गुण ब्रह्म के बोधक पृथ्वी, नदियाँ, समुद्र और भारी पहाड़ों वाला विराट शरीर कैसे समा सकता है। प्रकृति के अवयवों द्वारा ब्रह्म की विराटता प्रदर्शित करके उसके निर्गुण रूप को अप्राप्त मानकर सगुण रूप को प्रधानता दी है।

उस सगुण की अनुग्रह की प्राप्ति के लिए जाति, गुण, रूप, वयस् आदि की अपेक्षा नहीं है। दीन और भक्तों से तो उन्हें विशेष प्रेम है–

रूप सील सिन्धु गुनसिन्धु दन्धु दन को,
दयानिधान, ज्ञानमनि, बीर वाहु बोल को।[14]

राम की कृपालुता और भक्तवत्सलता को प्रमाणित करने के लिए प्रकृति का अवलम्ब लिया गया है। तुलसी के राम रूप एवं शील स्वभाव के सागर, गुणों के सागर, दया के सागर हैं। सागर द्वारा असीमता विस्तार, अपरिमितता और व्यापकता का वोध होता है।

प्रकृति मनुष्य की सहचरी है। उसका पालन करती है। सूर्य-चन्द्र उसके जीवन की रक्षा करते हैं। लेकिन कभी-कभी यही प्रकृति जब भयानक रूप धारण कर लेती है, तो भक्तवत्सल राम उससे मनुष्य की रक्षा करते हैं–

कानन, मृथर, बारि, बयारि, महाविष व्याधि दवारि घेरे।
संकट कोटि जहा 'तुलसी' सुत भावु पिताहित बन्धु न नेरे॥[15]

वन प्रान्त में, पर्वतीय प्रदेश में, जल में, वायु में दावाग्नि से व्याप्त प्रदेश में अनेक संकटों में राम साथ देते हैं। वे विपत्ति हरने वाले हैं, भक्त के अनन्य सहायक हैं।

भक्तवत्सल ईश्वर जब अकृपालु हो जाते हैं, तो कुछ भी सम्भव नहीं हो पाता–

बिन्ध्य न ईंधन पाहऐ, पायर जुरे न नीर।
परे उपास कुबेर घर, जो विपच्छ रघुबीर॥[16]

प्रकृति का सार, ऐश्वर्य और सम्पदा ईश्वर कृपा का ही फल है। यदि 'वह' अकृपालु हो जाय तो प्रकृति का अपना कोई अस्तित्व ही नहीं रह जाएगा। अथाह जलराशि का स्वामी समुद्र और वनसम्पदा का स्वामी विन्ध्याचल भी अपने आप में कुछ नहीं है, यदि उन्हें ईश्वर ऐसा न बनाए तो वह नितान्त व्यर्थ है।

ईश्वर सर्वशक्तिमान है और अपनी शक्ति द्वारा प्रकृति में विपरीत गुणों का निर्माण भी कर सकता है–

विपुल जल मरित जग जलधि झूरो
दीन दुख दमन को कौन तुलसीस है।[17]

ब्रह्म विष को अमृत और अग्नि को बर्फ के समान बना सकता है। अग्नि का स्वभाव है गर्म रहना, शीतलता से उसका वैर है, लेकिन ईश्वर की शक्ति असम्भव को सम्भव और सम्भव को असम्भव कर सकती है। 'हनुमान बाहुक' में आगे भी लिखा है कि राम, सीता और लक्ष्मण जिधर देख लेते हैं, वे वृक्ष बिना जल के ही फूलने लगते हैं, पत्थर की शिलाओं से बहुत वेग से जल बहने लगता है। उनके स्मरण मात्र से सुमेरु पर्वत पत्थर के कण के बराबर बन जाता है और अपार समुद्र बकरी के खुर के समान हो जाता है।

संसार को सत्य मानना भ्रम है। संसार मिथ्या है। इसकी असारता बाहर से ज्ञात नहीं होती, केवल ज्ञान द्वारा दूर होती है।

सब फोटक साटक है 'तुलसी' अपनो न कछु सपनो दिन द्वै।[18]

सांसारिक सुख-सामग्री थोथी और भूसे के समान तत्त्वहीन है। यह संसार असार है, जैसे भूसे में कोई तत्त्व नहीं होता, उसी प्रकार यह संसार झूठा है। ब्रह्म के ज्ञान द्वारा ही इस असारता का ज्ञान होता है।

जगत् में जितने जड़-चेतन जीव हैं, सब उसके अंश हैं। तुलसी ने केवल मनुष्य को ही उसका अंश नहीं माना, बल्कि जड़ नदियों, पहाड़ों, झरनों, पशु-पक्षियों, फूलों

अर्थात् समग्र प्रकृति को राममय माना है—

तुलसी रामहि परिहरें, निपट हानि सुन ओझ।
सुरसरि गत सोई सलिल, सुरा सरिस गंगोझ ॥[49]

गंगा पवित्र है, लेकिन उससे विमुख गुण वाला जल मदिरा की कोटि में आ जाता है। उसी प्रकार जीव ब्रह्म का अंश है उससे (ईश्वर से) विमुख होने पर वह अन्धकार में जीवन व्यतीत करता है। इस प्रसंग में गंगा का उदाहरण बहुत ही सटीक है। गंगा द्वारा अंश अंशी भाव पूर्णतः प्रकाशित हो गया है।

देह नाशवान है, इससे सम्बन्धित सब क्रियाकलाप व्यर्थ हैं—

देह-जीव-जोग के सखा मृषा टाँचन टाँचो।
किए विचार सार कदलि ज्यों, मनि कनकसंग लघु लसत बीच-बिच कांचो।[50]

जिस प्रकार केले के वृक्ष में छिलके-ही-छिलके निलकते हैं, गूदा नहीं होता, उसी प्रकार जीव के देह सम्बन्धी धर्म मिथ्या होते हैं। जीव का जगत् को सत्य समझना एवं सांसारिक कार्यों में हर्ष विषाद की अनुभूति करना केले के वृक्ष की तरह असार से सन्तुष्ट रहना है।

यह जीव पाँच तत्त्वों से मिलकर बना है। प्रकृति इसे बनाने में पूर्ण सहायक हुई है—

जड़ पंज मिले जेहि देह करी, करनी लखु थो थरमी घर की।[51]

पृथ्वी, जल, तेज, आकाश एवं वायु पाँच तत्त्वों से मिलकर मानव-शरीर की संरचना हुई है। यह प्रकृति के पाँच तत्त्वों से बना है, प्रकृति के बहुत निकट है—निकट क्या यह तो निर्मित ही उनसे है। इसीलिए मनुष्य के जीवन में प्रकृति का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

प्रकृति के गुणों के कारण मनुष्य को देह मिलती है। देह के कारण ही वह अहंकार की भावना से प्रेरित होकर विविध कर्म करता है। स्वभाव के अनुसार वह फिर-फिर कर्म करता है। स्वभावतः कर्मों से बद्ध होकर वह उनके फल माँगता है। इस प्रकार यह नियति-चक्र ईश्वरेच्छा से ही होता है। मनुष्य संसार को सत्य मानता हुआ कर्म करता रहता है।

इसी कार्य-कारण सिद्धान्त को महाकवि ने प्रकृति द्वारा सुगम रूप से समझाया है—

वेण करली श्रीखण्ड वसन्तहि दूषण मृषा लगावे।
सार रहित हतभाग्य सुरभि पल्लव सो कहुं कहं पावे ॥[52]

कर्मों के अनुसार ही जीव को फल प्राप्ति होती है। अपने किए हुए कर्मों का उसे फल मिलता है। उससे अधिक वह प्राप्त नहीं कर सकता। बाँस और करील दोनों चन्दन और वसन्त ऋतु को वृथा दोष लगाते हैं। बाँस गूदा रहित है। उसे चन्दन कैसे

सुगन्ध दे सकता। करील भाग्यहीन है। ब्रह्मा ने उसके कर्मों में फूल लिखे ही नहीं। इसमें वसन्त ऋतु का दोष नहीं वरन् करील और बाँस का अपना दुर्भाग्य है। इसी प्रकार मनुष्य को अपने कर्मों के अनुसार फल मिलता है।

परम सुखरूप मनोरथ की पूर्ति के लिए बिना सोच-समझे कर्म नहीं करने चाहिए। बुरे कर्मों से दुःख की प्राप्ति होती है। सुकर्म करने चाहिए। बिना सोच-समझे कर्म करने से कडुए फल की प्राप्ति होती है—

पात-पात को सींचिबो न करु सरग तरु हेत।
कुटिल कटुक फल फरैगो तुलसी करत अचेत ॥[53]

कल्पवृक्ष से फल पाने के लिए पत्ते-पत्ते को नहीं सींचना चाहिए। ऐसा करने से कडुआ फल मिलेगा जो कि अचेत कर देगा। वैसे ही दुष्कर्म करने से बुरा फल मिलता है। प्रकृति के दृष्टान्त द्वारा कवि ने अपने विचारों को स्पष्ट किया है—

तुलसी यह तनु खेत है, मन बचन कर्म किसान।
पाप पुण्य द्वै चीज हैं, बचे सो लुवै निदान ॥[54]

यह शरीर खेत है। मन, वचन, कर्म किसान हैं। पाप पुण्य दो बीज हैं। जो बोया जाएगा वही काटा जाएगा। बहुत ही सुन्दर उदाहरण है। जैसा बीज होता है, वैसा ही पौधा उगता है और वैसा ही फल प्राप्त होता है। उसी प्रकार जैसा कर्म होते हैं, वैसा ही फल मिलता है। कर्म फल के लिए सबसे सटीक प्राकृतिक दृष्टान्त 'बीज' और 'फल' का है ओर तुलसी ने अपने काव्य में उसी का प्रयोग किया है।

पुरहनि सघन ओट जल बेगि न पाइअ मर्म।
मायाछन्न न देखिए जैसे निर्गुन ब्रह्म ॥[55]

घनी पुरइनों की आड़ में जल का जल्दी पता नहीं चलता। वैसे ही माया से ढके रहने पर ब्रह्म दिखाई नहीं देता। जल दिखाई नहीं देता, परन्तु वास्तविकता है कि उस जगह जल होता है। उसी प्रकार ईश्वर का ज्ञान होने पर कर्मों का नाश होता है जो कर्म पहले अज्ञानवश किए जाते हैं। कर्मों को कीचड़ के समान कहा गया है क्योंकि उनके द्वारा मनुष्य आवागमन के चक्कर में पड़ता है। ज्ञान का जल 'कर्म कीच' को साफ कर देता है। कर्मों के साथ भाग्य भी अच्छा होना चाहिए, तभी भवसागर से पार उतरा जा सकता है।

पुरुषारथ, पूरब करम, परमेस्वर परधान।
तुलसी पैरत सरित ज्यों सबहिं काज अनुमान ॥[56]

पुरुषार्थ, पूर्व कर्म, परमात्मा की कृपा से संसार रूपी नदी को पार किया जा सकता है। जैसे नदी को पार करने के लिए तीन वस्तुओं—नाव, मल्लाह और चम्पू आवश्यक है। उनके बिना नदी पार करना असम्भव है। प्रकृति दार्शनिक रहस्यों का उद्घाटन सहज ही कर देती है। प्रकृति की सहायता के बिना इतनी सरलता से अपनी

बात व्यक्त कर पाना असम्भव है। प्रकृति पग-पग पर कवि की सहायता करती है।

निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा। परस कि होइ बिहीन समीरा।
कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा। बिनु हरि भजन न भवभय नासा॥[57]

राम के बिना कामनाओं का नाश नहीं होता। बिना धरती के पेड़ नहीं उग सकता। ज्ञान के विना समभाव सम्भव नहीं है। आकाश की कोई सीमा नहीं है। श्रद्धा के बिना धर्म आचरण सम्भव नहीं है। कोई पृथ्वी के बिना गन्ध नहीं पा सकता। तप के बिना तेज नहीं फैल सकता। जल के बिना संसार में रस की स्थिति नहीं है। पंडितों की सेवा के बिना शील प्राप्ति असम्भव है। अग्नि बिना तेज के नहीं मिलती। निज सुख के बिना मन स्थिर नहीं हो सकता। वायु तत्त्व के बिना स्पर्श नहीं हो सकता। विश्वास के बिना कोई सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती। इसी प्रकार ईश्वर भजन के बिना जन्म-मृत्यु का नाश नहीं होता और मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती।

जैसे बरसते हुए बादल की बूँद पकड़कर आकाश में चढ़ना असम्भव है, उसी प्रकार राम-नाम का सहारा लिये बिना मोक्ष प्राप्ति नहीं है। जिस प्रकार पानी की धारा बहती हुई एक दिखाई देती है, परन्तु उसको पकड़ा नहीं जा सकता। पकड़ने से पानी की धारा टूट जाती है। उसका आश्रय लेना निरर्थक है। इसी प्रकार प्रभु भजन के बिना मोक्ष असम्भव है।

संसार के स्वरूप को प्रदर्शित करने के लिए तुलसी ने वृक्ष की विशेषतओं का आश्रय लिया है और उसके द्वारा संसार का स्वरूप समझाया है। जिस प्रकार वृक्ष के विभिन्न अंग, पत्ते, फल, मूल, शाखाएँ होते हैं, उसी प्रकार संसार भी विभिन्न अंगों से बना है किन्तु समग्र रूप में एक ही है—

अव्यक्त भूलमनादि तरु, त्वच चारि निगमागम मने।
षट कंध साता पंच बीस अनेक पर्न सुमन घने।
फल जुगल बिधि, मधुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे।
पल्लव फूलत नकल नित संसार निपट नमामहे।[58]

संसार वृक्ष की मूल अव्यक्त प्रकृति है, चार वेद त्वचाएँ हैं, छह शास्त्र तने और पच्चीस तत्त्व शाखाएँ हैं, इसमें अनेकों पत्ते और बहुत-से फूल हैं। जिसमें कड़वे और मीठे दो प्रकार के फल लगे हैं। इस पर एक बेल है जो इसी के आश्रित है। जिसमें नित्य नये पत्ते और फूल निकलते हैं। मनुष्य को संसार का रहस्य समझाने के लिए कवि वृक्ष की विशेषताओं का उदाहरण देकर संसार का दार्शनिक विवेचन सुगमता से करने में समर्थ हुआ है।

सम्पूर्ण प्रकृति और उससे भी परे की शक्ति का ईश्वर नाम है। जब माता को राम ने अपना अलौकिक रूप दिखाया तो उनकी माता को सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के दर्शन हुए—

अगनित रबि ससि सिव चतुरानन। बहु गिरि सरित सिन्धु महि कानन॥
काल कर्म गुन ग्यान सुभाऊ। सोउ देखा जो सुना न काऊ॥[59]

राम ने माता को अपने स्वरूप में अनेकों सूर्य, चन्द्रमा, शिव, ब्रह्मा, वहुत से पर्वत, नदियाँ, पहाड़, समुद्र, पृथ्वी, वन, काल, कर्म, गुण, स्वभाव दिखाए। यह समस्त सृष्टि, यह संसार ब्रह्ममय है, ब्रह्मस्वरूप है।

मानस में बार-बार राम को विश्वमय माना गया है—

रोम राशि अष्टादस मारा। अस्थि सैल सरिता नस बारा॥
उदर उदधि अधगो जा तना। जगमय प्रभु की बहु कल्पना॥[60]

अठारह प्रकार की वनस्पतियाँ राम की रोमावली है। पर्वत अस्थियाँ नदियाँ नसों का जाल है, समुद्र पेट है। अधिक कल्पना क्या की जाय? प्रभु विश्वभय हो प्रकृति के कण-कण में विद्यमान हैं। धूलि का एक कण, पानी की एक बूँद, एक छोटी-सी चिनगारी, वायु का हल्का-सा झोंका, सभी ब्रह्ममय है। ईश्वर छोटी-से-छोटी और विशाल-से-विशाल वस्तु में विद्यमान है।

तुलसी के अनुसार प्रकृति और ईश्वर एक ही है। इसीलिए प्राकृतिक नियमों से कवि सर्वाधिक प्रभावित है। उनसे ही वह शिक्षा ग्रहण करता है। प्राकृतिक नियम सदा सत्य और पवित्र होते हैं। प्रकृति के उदाहरण द्वारा कवि ने दार्शनिक नियमों को प्रमाण-पुष्ट किया है। वे नियम सरल एवं ग्राह्य बन गए हैं।

दर्शनशास्त्र के अन्तर्गत भक्ति समाहित हो जाती है। तुलसी को राम का सगुण रूप अभीष्ट है। यद्यपि निर्गुण के प्रति भी उनका झुकाव था। राम के सगुण रूप को दर्शाने के लिए कवि कहता है—'सब अंग रुचिर किसोर स्याम घन'। राम घन के समान श्याम वर्ण के हैं। उनके कर, नयन, पद, चितवन कमल के समान मनोहारी हैं। इस प्रकार राम के सगुण रूप के चित्रण के लिए प्रकृति का ही आश्रय लिया है। उनके दाँत बिजली के समान चमकते हैं और शरत् काल के चन्द्रमा की निन्दा करने वाला उनका मुख है।

यह जगत् सागर के समान असीम हैं। जिसे पार करने के लिए ईश्वर की कृपा जरूरी है। संसार की दुरुहता को प्रदर्शित करने के लिए सर्वप्रसिद्ध 'सागर' का उदाहरण देकर सांसारिक बाधाओं की असीमता एवं बहुलता को दिखाया है। संसार को दुःखों का घर माना गया है। ईश्वर से विमुख होकर संसार में सुख दुर्लभ है। जिस प्रकार मणिविहीन सर्प। ईश्वर से विमुख होने पर मानव मणिवियुक्त सर्प जैसा हो जाता है। इस प्रकार प्राकृतिक नियमों एवं विशेषताओं का उदाहरण देकर दर्शन जैसे गूढ़ विषय का प्रतिपादन किया है। जिस प्रकार अन्धकार को सूर्य नष्ट कर देता है, उसी प्रकार ज्ञान का उदय सुखमय है।

इस संसार में जितने भी जड़ चेतन जीव हैं, सब राममय हैं। राम से अपने को

अलग मानने के कारण भ्रम में पड़कर जीव दुःख सहता है। गंगा का जल, गंगा से अलग होने पर मदिरा के समान हो जाता है। उसी प्रकार जीव ब्रह्म का अंश होने पर भी अलग होने के कारण दुःख सहता है। यह संसार सेमर के पुष्प के समान सारहीन है, इसमें कुछ भी सार नहीं है। यह केवल बाहर से ही सुन्दर है।

इन दृष्टान्तों से साधारण तथा सामान्य व्यक्ति भी ब्रह्म, संसार, जीव आदि के विषय में जान जाता है। प्रकृति में होने वाले कार्यों की समानता मानव-जीवन के नियमों से ही है, जो कि सर्वविदित हैं, सर्वसामान्य हैं। यह संसार मायामय है, बाह्य रूप से सत्य दिखाई देता है। वास्तव में मनुष्य के पतन का, उसके विनाश का कारण बन जाता है। पतंगा अग्नि के सुन्दर रूप को देखकर उसमें जल जाता है। मछली काँटे में मुँह फँसाकर अपना अन्त कर लेती है। इस प्रकार संसार की माया में लिप्त रहने से मनुष्य का पतन अवश्यंभावी है। जैसे प्यासा मृग सूर्य की किरणों से प्रतीयमान लहरों को देखकर समझता है कि वहाँ पानी है परन्तु वहाँ जल न पाकर दौड़ता-दौड़ता काल के वश में हो जाता है। उसी प्रकार माया सर्व जगत् की विनाशकारिणी है। कितनी सुगमता से प्रकृति द्वारा कवि अपनी बात समझा देता है जिसे पढ़े-लिखे, अनपढ़ ज्ञानी और अज्ञानी सब समझ सकते हैं। प्रतिदिन होने वाली प्राकृतिक घटनाओं के उदाहरण द्वारा कवि ने अपनी बात स्पष्ट की है।

यह माया प्रेम उत्पन्न करती है जिसके फलस्वरूप मनुष्य संसार में लिप्त हो जाता है। जैसे सीप में चाँदी की और सूर्य की किरणों में पानी की प्रतीति होती है। यह प्रतीति बिलकुल असत्य है, परन्तु इस भ्रम को कोई हटा नहीं सकता। उसी प्रकार सांसारिक कार्यों में सत्य की प्रतीति होती है जबकि वास्तव में वे सब असार, तत्त्वहीन तथा व्यर्थ हैं।

मनुष्य जब अच्छा कर्म करता है तो उसे अच्छा फल प्राप्त होता है। बुरे कर्मों का परिणाम बुरा होता है, जैसे बाँस और करील। बाँस में गूदा न होने के कारण वह सुगन्धित नहीं हो सकता और करील को कितना भी सींचो उसमें पत्ते नहीं निकलते। यह उस बीज का चमत्कार है जो इन पौधों में अलग-अलग विद्यमान है। उसी प्रकार जैसे कर्म किए जाते हैं, वैसा ही फल मिलता है। कर्म माहात्म्य को प्रकृति के उदाहरण द्वारा कवि ने सुन्दरता से समझाया है।

विषयरूपी जल से मनरूपी मच्छ कभी अलग नहीं होता। इसीलिए मनुष्य को अनेक योनियों में जन्म लेना पड़ता है। जैसे मच्छ को लगता है कि पानी के बिना उसका जीवन असम्भव है, उसी प्रकार मनुष्य भी कर्मों में लिप्त रहता है। वह विषय-वासना को नहीं छोड़ता और आवागमन के चक्कर में पड़ जाता है। इस प्रकार कवि ने प्रकृति से ही जीवन मूल्य सीखे हैं। प्रकृति से उदाहरण लेकर उन मूल्यों का रहस्य समझाया है।

कर्मों एवं मोह में लिप्त रहने पर मोक्ष की कामना करना व्यर्थ है, जिस प्रकार कि बिना आधार के पेड़ विकसित करने की या पानी के बिना रस की कामना करना व्यर्थ है।

इस प्रकार कवि ने दर्शन को प्रकृति के माध्यम से हृदयग्राही बनाया है। प्रकृति मनुष्य के सबसे निकट है और आदिकाल से मनुष्य उससे परिचित है। अतः उसके द्वारा अपनी बात कवि पूर्ण रूप से स्पष्ट कर पाया है। ज्ञात वस्तु का दृष्टान्त देने से बात पूर्ण रूप से आत्मसात की जा सकती है। प्रकृति द्वारा अपने दार्शनिक विचार प्रकट करने में तुलसीदास पूर्ण सफल रहे हैं। प्रकृति-वर्णन के माध्यम के कारण उनका दार्शनिक विवेचन अतीव सरस हो गया है। तुलसीदास के प्रकृति-चित्रण में केवल एक ही प्रकार की खोज सम्भव नहीं है। वे प्रकृति को आलम्बन बनाते हैं साथ ही सद्भावनाओं में उसके उद्दीपक रूप का ही चित्रण करते हैं। प्रकृति को अलंकार रूप में चित्रित करते हुए वे उस प्रकृति से अनेकानेक दार्शनिक गूढ़ सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी करते जाते हैं। हमारे कवि का लक्ष्य चमत्कार के स्थान पर उपयोगी चित्रण है। वह जिस प्रकार अनेक भाषाओं और अनेक काव्य-शैलियों का उपयोग राम-नाम के महत्त्व के प्रतिपादन के लिए करता है उसी प्रकार वह प्रकृति का अनेकविध उपयोग एवं प्रयोग अपने अनुभूत सिद्धान्तों की व्याख्या के लिए भी करता है। कवि का मुख्य लक्ष्य 'रामनाम' है, उसका मार्ग प्रकृति के दृष्टान्तों के द्वारा सरल बन जाता है, और वह विविध अभिव्यंजना शैलियों के उपयोग से अपने लक्ष्य में सफल बन जाता है।

सन्दर्भ

1. रामचरितमानस, 3/2/4
2. कवितावली, 1/16/3
3. वही, 1/37/2
4. विनयपत्रिका, 45/3
5. दोहावली, 30
6. रामचरितमानस, 7/46/3
7. दोहावली, 40
8. कवितावली, 1/40/1
9. रामाज्ञा प्रश्न, 3/1/6
10. रामचरितमानस, 3/46/1
11. वही, 5/47/2
12. विनयपत्रिका, 67/3
13. वही, 73/2
14. वही, 136/1
15. रामचरितमानस, 6/51/4
16. वही, 5/58/4
17. विनयपत्रिका, 117/2
18. वही, 185/3
19. वही, 24/2
20. वही, 92/2
21. दोहावली, 56
22. वही, 56
23. वही, 259
24. विनयपत्रिका, 132/3
25. वही, 102/2
26. रामचरितमानस, 1/22/दो.

27. विनयपत्रिका, 200/6
28. वही, 11/1
29. रामचरितमानस, 1/20/3
30. वही, 1/16/3
31. कवितावली, 1/31/34
32. वैराग्य संदीपनी, 38
33. दोहावली, 64
34. रामचरितमानस, 1/117/1
35. वही, 1/117/1
36. जानकी मंगल, 52
37. विनयपत्रिका, 196/3
38. बरवै रामायण, 2
39. कवितावली, 1/129/1
40. कृष्ण गीतावली, 44/2
41. हनुमान बाहुक, 9/2
42. रामचरितमानस, 3/44/3
43. विनयपत्रिका, 57/3
44. कवितावली, 6/14/1
45. वही, 6/50/1, 2
46. दोहावली, 62
47. हनुमान बाहुक, 3/4
48. कवितावली, 1/41/3
49. दोहावली, 68
50. विनयपत्रिका, 277/2
51. कवितावली, 1/27/1
52. विनयपत्रिका, 111/3
53. दोहावली, 452
54. रामचरितमानस, 2/39 (दो.) क
55. दोहावली, 452
56. वही, 468
57. रामचरितमानस, 7/90/4
58. वही, 7/5/1
59. वही, 1/202/1
60. वही, 6/14/4

उपसंहार

भक्तिकाल हिन्दी-साहित्य का स्वर्ण युग है। उस काल के कवियों में तुलसीदास का नाम सर्वविदित है। देश-विदेश के सभी विद्वान् इस विषय में एकमत हैं कि भाषा-कवियों में गोस्वामी तुलसीदास का नाम सर्वाधिक प्रतिष्ठित है। प्रसिद्ध विद्वान् जार्ज ग्रियर्सन के अनुसार गौतम बुद्ध के बाद भारतवर्ष में सबसे प्रख्यात व्यक्तित्व तुलसीदास का है, उनका 'रामचरितमानस' पाठकों की संख्या की दृष्टि से विश्व भर में बाइबिल के बाद दूसरे स्थान पर आता है, उत्तर भारत के समस्त जन इस कृति को शास्त्र के समान आदरणीय तथा प्रामाणिक मानते हैं और मार्ग-दर्शन के लिए समय-समय पर इसको उद्धृत करते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जितने सामाजिकों के बीच में लोकप्रिय हैं उतने ही समीक्षकों के मध्य भी मान्य हैं। उनकी रचना सोद्देश्य है, वे अपनी साधना में तो भक्त थे साथ ही उनका उद्देश्य पूरे समाज को कलियुग के दोषों से बचाकर राम-राज्य का नागरिक बनाना था और इसके लिए उनके पास राम-नाम, राम-कथा तथा राम-भक्ति के सिद्ध और प्रसिद्ध उपचार थे।

गोस्वामी तुलसीदास का काव्य-विषय रामचरित हैं, इस रामचरित के मानस में समस्त समाज और प्रकृति भी अभिषिक्त हो गए हैं। दाशरथी राम अपने प्रासाद से निकलकर गुरु के आश्रम में आते हैं और अनेक प्रकार की विधाओं का अभ्यास करते हैं, उस समय उनका सम्बन्ध और घनिष्ठता प्रकृति के साथ होता है। विवाह के उपरान्त और राज्य-प्राप्ति से पूर्व के चौदह वर्षों में जब उन्होंने साधना करके शक्ति का संचय किया, तब भी प्रकृति की गोद में ही उनका स्थायी निवास बन गया था। वस्तुतः राम-कथा के भीतर प्रकृति का अनुपम महत्त्व है, प्रकृति मनुष्य को शक्ति देती है उसको उत्साहित करती है और उसका मार्गदर्शन करती है। किसी भी महान् कार्य को करने से पूर्व (धुनर्यज्ञ हो अथवा रामराज्य) श्रीराम प्रकृति से ही अनुप्रेरित होते हैं। मानवातार राम का प्रकृति के साथ लगभग वैसा ही सम्पर्क है जैसा कि वैदिक ऋषियों का हुआ करता था, प्रकृति उनके लिए ईश्वर का स्वरूप है, शक्तिप्रदायिनी देव है तथा सुख-दुःख की अनन्य सहचरी है। गोस्वामी तुलसीदास ने अपने सभी काव्यों में विषय का विस्तार समाज की सहज रुचि के अनुसार किया है परन्तु राम-कथा के सहज स्वरूप और गोस्वामी जी की अपनी मान्यता के अनुरूप वे सभी काव्यों में प्रकृति से

बहुत निकट रहे हैं।

वियना नगर में प्राच्यविद्या-विशादरों की सभा में सन् 1886 में पढ़े गए निबन्ध 'हिन्दुस्तान का मध्ययुगीन भाषा-साहित्य—तुलसी के विशेष सन्दर्भ में' को तो शोध-निबन्ध नाम दिया जा सकता है, परन्तु सन् 1911 में 'रामचरितमानस' और 'वाल्मीकि रामायण' विषय पर शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत करने पर फ्लोरेंस विश्वविद्यालय ने एल.पी. तेस्सीतोरी को शोधोपाधि प्रदान की थी और सात वर्ष बाद लन्दन विश्वविद्यालय से जे.एन. कर्पेन्टर को 'तुलसीदास का धर्म-दर्शन' विषय पर शोधोपाधि प्राप्त हुई।

यदि दार्शनिक दृष्टि से विचार करें तो प्रकृति और उसका व्यापक रूप सृष्टि तो जगन्माता सीता का ही रूप है, राम से युक्त होकर वह लोक-कल्याण में सन्नद्ध हो जाती हैं। 'विनयपत्रिका' में गोस्वामी जी ने जहाँ अनेक देवों की स्तुति की है और उनसे राम-भक्ति का वर माँगा है, वहाँ वे प्राकृतिक रूपों जैसे चित्रकूट, त्रिवेणी आदि की भी स्तुति करते हैं और उनसे भी उसी प्रकार का वर माँगते हैं। उनकी दृष्टि में भगवान् की अनुकम्पा से पुनीत प्रकृति के ये समस्त रूप देवमय हैं जैसे सूर्य देवता है, चन्द्र देवता है—उसी प्रकार से चित्रकूट भी देवता है अक्षयवट भी देवता है। अवश्य ही राम की कृपा से वंचित प्रकृति अविद्या माया है और उस प्रकार की प्रकृति से सम्पन्न व्यक्ति, 'प्राकृत जन' हैं, जिनका 'गुणगान'[1] कवि-कर्म पर लांछन है। तुलसी के काव्यों में प्रकृति मनुष्य का मार्ग-निर्देश भी करती है, उसके सम्मुख आदर्श भी प्रस्तुत करती है और उसके सुख-दुःख में सहयोग भी करती है। समाज का चित्रण करते हुए भी तुलसीदास प्रकृति से अलग नहीं रहे, उन्होंने प्रकृति की सहायता से समाज को सुधारने का प्रयत्न किया है। गोस्वामी तुलसीदास का ऐसा कोई काव्य नहीं है जिसमें वे प्रकृति के उपकरणों के प्रति उदासीन रहे हों, 'रामलला नहछू' में भी प्रकृति के उपकरण राम के अवयवों के उपमान बनकर आ जाते हैं। प्रकृति के अनेक अंगों में से कमल तो कवि को इतना प्रिय है कि वह अपने आराध्य के अंग-अंग[2] की उपमा कमल के साथ देता है। इसी प्रकार सुरसरिता, हिमाद्रि, त्रिवेणी, चित्रकूट आदि का महिमा-मण्डित रूप कवि के मन को पूर्णतः भाव-विभोर कर देता है। ऋतुएँ बदलती हैं, उनके साथ समय बदलता है और मन भी बदलता है, उस समस्त परिवर्तन का प्रभाव कवि के आराध्य देव राम पर भी पड़ता है—उन राम पर जो सभी परिवर्तनों के मूल कारण हैं।

तुलसीदास और उनके काव्यों से सम्बद्ध अध्ययन हिन्दी-शोध-परम्परा का पहला चरण था। अब तक शताधिक शोधार्थियों ने रामकाव्य अथवा तुलसीदास अथवा रामचरितमानस अथवा राम भक्तिकाव्य के विषयों को लेकर शोधोपाधियाँ प्राप्त की हैं। गोस्वामी जी के प्रत्येक पक्ष पर विचार हुआ है, दर्शन, काव्य-शिल्प, भाषा, काव्य-रूप आदि गणित दृष्टियों से जिज्ञासुजन उनके पास पहुँचे हैं। रामकथा

की पूरी परम्परा का अध्ययन करने वाले वाल्मीकि से लेकर मैथिलीशरण तक आते-आते तुलसीदास को एक प्रमुख तीर्थ मानकर चलते हैं। राम-कथा के अन्य भाषा कवियों कम्बन (तमिल), कृत्तिवास (बंगला), एकनाथ (मराठी), मैथिलीशरण (खड़ीबोली), चन्दा झा (मैथिली), भानुभक्त (नेपाली), स्वयम्भू (अपभ्रंश) आदि के साथ तुलसी की तुलना करके शोधार्थियों ने अनेक उपयोगी निष्कर्ष प्राप्त किए हैं। अध्ययन के इस क्रम में प्रकृति पर भी विद्वानों ने विचार किया है। हिन्दी के कुछ शोध-ग्रन्थ हिन्दी-काव्य और प्रकृति के सम्बन्धों को लेकर लिखे गए हैं। परन्तु उक्त समस्त शोध-ग्रन्थों में गोस्वामी ज़ी के प्रकृति-विषयक दृष्टिकोण और उनके प्रकृति-चित्रण पर विस्तृत और व्यापक विचार नहीं हुआ, केवल प्रासंगिक अथवा स्फुट संकेत प्राप्त होते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में मेरा प्रयत्न यह रहा है कि मैं केवल एक ही दृष्टि से अर्थात् केवल प्रकृति-चित्रण को अध्ययन की धुरी बनाकर गोस्वामी जी के समस्त काव्य-राशि का अवगाहन करूँ और उनकी प्रकृति के प्रति दृष्टि को अधिक स्पष्ट रूप से समझ सकूँ। इस अध्ययन का प्रारम्भ मैंने एम.फिल. कक्षा में किया था और 'रामचरितमानस में प्रकृति चित्रण' विषय पर शोध-निबन्ध लिखा था। प्रस्तुत अध्ययन में उस शोध-निबन्ध की सामग्री का पूरा उपयोग किया गया है परन्तु उसका यथावत् समावेश नहीं किया गया, इन चार वर्षों में अध्ययन के फलस्वरूप मेरे विवेचन में भी कुछ परिवर्तन हुआ है। अस्तु 'रामचरितमानस' के सम्बन्ध में भी मेरे नवीन निष्कर्ष मुझे अधिक मान्य हैं।

प्रकृति चित्रण के अध्ययन की हमारे यहाँ कुछ सामान्य परम्पराएँ रही हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'चिन्तामणि' के निबन्धों में इस बात पर बल दिया है कि प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण कवि की विशेष उपलब्धि होती है। संस्कृत के श्रेष्ठ कवि प्रायः वैसा ही किया करते थे। हिन्दी के कवियों की भी यही कसौटी मानी जानी चाहिए। समीक्षक लोग यह मानते हैं कि अनुभूतियों का चित्रण करने वाला कवि प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण अधिक करता है, मानव के दुःख-सुख में प्रकृति उसका साथ देती है, दुःख में वह उसी प्रकार से दुःख को उद्दीप्त करती है जैसे कि सुख में सुख को करती आई है। इन दो रूपों के अतिरिक्त प्रकृति के और दो रूप प्रसिद्ध हैं एक तो प्रकृति का उपदेशक रूप है और दूसरा अलंकार-रूप। प्रकृति का उपदेशक रूप रामायण, महाभारत और पुराणों में विशेष रूप से चित्रित है, इस चित्रण का श्रीमद्भागवत पुराण के माध्यम से भाषा के भक्त कवियों पर भी प्रभाव पड़ा है—गोस्वामी तुलसीदास पर भी। वस्तुतः मानव से शिक्षा ग्रहण करना, मानव के लिए जितना कठिन है उतना ही सहज है प्रकृति से शिक्षा ग्रहण करना क्योंकि प्रकृति से शिक्षा ग्रहण करते हुए हमारे अहम् को कोई आघात नहीं पहुँचता। इसी शिक्षा का एक रूप अलंकार रूप है। मुख को चन्द्रमा कहते हुए कवि का आदर्श चन्द्रमा है, संसार के मुखमण्डल के सौन्दर्य की माप वह उसी पैमाने से करता है। अन्योक्तिकार तो जो

कुछ कहते हैं वह प्रकृति के रूपों के माध्यम से ही कहते हैं और मानव को सुनाकर उसका ध्यान आकृष्ट करके उसको नित्यप्रति उपदेश देते रहते हैं। अप्रस्तुत-योजना के अतिरिक्त बिम्ब-योजना में भी प्रकृति का आधार प्राप्त होता है। गोस्वामी तुलसीदास के अध्ययन में प्रकृति का एक अन्य रूप भी महत्त्वपूर्ण है और वह है प्रकृति का दार्शनिक रूप अर्थात् कवि के दर्शन में प्रकृति का स्थान अथवा स्वरूप। जो कवि चित्-अचित् विशिष्ट ब्रह्म को सत्य मानता है वह ब्रह्म के अचित् रूप की उपेक्षा कैसे कर सकता है। प्रस्तुत अध्ययन में मैंने प्रकृति के इन छह रूपों का अलग-अलग अध्यायों में अध्ययन किया है। विषय-प्रवेश में अध्ययन की प्रस्तावना है जिसमें प्रकृति के साथ कवि, काव्य, समाज आदि के सम्बन्ध का विश्लेषण है और अन्त में समस्त अध्ययन के निष्कर्षों का समाकलन है।

गोस्वामी तुलसीदास का अध्ययन करते हुए एक समस्या इनके ग्रन्थों की प्रामाणिकता और प्रामाणिक ग्रन्थों के रचना-क्रम की भी आती है। ऐसा अध्ययन अपने आप में स्वतन्त्र विषय है, अनेक विद्वान् इस मार्ग पर चलकर अपने निष्कर्षों से पाठकों को लाभान्वित कर चुके हैं। मैंने उस समस्त पिष्टपेषण की आवश्यकता को अनुभव नहीं किया। दूसरी समस्या है कि भिन्न-भिन्न काव्यों में प्रकृति के उपकरणों का कहीं-कहीं समान रूप और कहीं-कहीं असमान रूप से ग्रहण कवि द्वारा किया गया है। यदि एक से अधिक ग्रन्थों में प्रकृति का समान रूप ही उपलब्ध होता हो तो प्रकृति-चित्रण के अध्ययन में प्रमुखता ग्रन्थ के महत्त्व के अनुसार दी जाएगी अथवा उदाहरण के महत्त्व के अनुसार। प्रस्तुत अध्ययन में मैंने ग्रन्थ के महत्त्व को प्राथमिकता देना उचित समझा है, उस ग्रन्थ से उदाहरण लिये हैं अन्य ग्रन्थों के केवल संकेत कर दिए हैं। कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि मूल ग्रन्थ में विशेष प्रकार का चित्रण नहीं मिलता उस दशा में भी जिन ग्रन्थों में मिलता है उनके महत्त्व को ध्यान में रखा गया है। दूसरी स्थिति यह है कि एक ग्रन्थ में प्रकृति का एक रूप हो और दूसरे ग्रन्थ में उससे भिन्न रूप हो। ऐसी दशा में मुख्य ग्रन्थ के रूप को प्राथमिकता देकर अन्य ग्रन्थों के भिन्न रूपों का कारण खोजने का प्रयत्न किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में हिन्दी अथवा संस्कृत के अन्य कवियों के ग्रन्थों से (प्रकृति-चित्रण के विषय को लेकर भी) तुलना नहीं की गई, क्योंकि वह स्वतन्त्र विषय है और तुलनात्मक और पारस्परिक मूल्यांकन हमारा विषय नहीं है। प्रकृति-चित्रण के माध्यम से भी कवि के व्यक्तित्व और संसार का अध्ययन किया जा सकता है, परन्तु ऐसे संकेतों का समाकलन प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य नहीं था इसलिए उसके लिए प्रयत्न नहीं किया गया।

तुलसीदास के प्रकृति-चित्रण का अध्ययन करते हुए यह रोचक तथ्य सामने आता है अध्ययन की सुविधा से तो हम आलम्बन, उद्दीपन, अलंकार, बिम्ब, उपदेश, दर्शन आदि रूपों को अलग-अलग मान लेते हैं, परन्तु प्रयोग करते हुए काव्यकार उन

रूपों को अलग नहीं रख पाता। अधिकतर उदाहरणों में प्रकृति का एक से अधिक प्रकार से प्रयोग मिलता है। वर्षा-वर्णन में कवि लिखता है—

बुन्द-आघात सहें गिरि कैसे।
खल के वचन संत सह जैसे॥

यह प्रकृति का आलम्बन रूप है, पर्वत पर वर्षा की बूँदों का वर्णन है। परन्तु कवि का ध्यान साम्य पर भी है; सन्त और गिरि, खल-वचन और बुन्द-अघात में 'सहना' धातु के आधार पर समानता है। इसलिए इस प्रयोग को आलंकारिक कहा जायगा। इस चित्रण में एक चाक्षुष बिम्ब बड़ा प्रभावशाली है, ऊँचे एवं दृढ़ पर्वत पर बूँदों का तड़ातड़ बरसना, अन्धकार, कोलाहल के साथ घबराहट एवं भय की व्यंजना। बिम्ब-योजना वस्तुतः सफल है और इस वर्णन में उपदेश तो है ही। इस प्रकार उद्दीपन और दर्शन को छोड़कर शेष चारों रूप यहाँ अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। शरद्-वर्णन का एक उदाहरण देखिए—

फूले कमल सोह सर कैसा।
निर्गुन ब्रह्म सगुन भये जैसा॥

यह भी प्रकृति का आलम्बन रूप है। यहाँ भी कवि का ध्यान साम्य पर है। इस चित्रण में भी प्रभावशाली चाक्षुष बिम्ब प्राप्त होता है। यहाँ पर भी उद्दीपन का अभाव है। परन्तु उपदेश के स्थान पर दर्शन का प्रतिपादन है। सरोवर के समान ब्रह्म जीवनदाता है, शीतलता, सात्विकता, स्फूर्ति एवं उल्लास का आधार है, परन्तु वह अनुभव-गम्य है, इन्द्रिय-ग्राह्य नहीं है; कमलों की शोभा के कारण सरोवर नयनाभिराम एवं गोचर बन आता है उसी प्रकार ब्रह्म भी सगुण रूप धारण करके मनोरम एवं आकर्षक बन जाता है। कवि की दृष्टि में ब्रह्म के दोनों रूप हैं निर्गुण और सगुण। निर्गुण ब्रह्म चिन्तन का विषय है, अगोचर है; सगुण ब्रह्म सर्वसुलभ है, इन्द्रियग्राह्य है।

गोस्वामी जी की रचनाएँ सोद्देश्य हैं। रचनाकार कवित्व से सम्पन्न था, परन्तु उसने 'कवित्व-विवेक'[3] के प्रदर्शन के लिए रचना नहीं की, कवित्व तो उसकी कृतियों में अनायास ही आ गया है। उसका उद्देश्य 'सत्य' का उद्घाटन था, उस सत्य को जो शाश्वत है, असीम है, जिसको वेद में 'ऋत' और पुराण में 'धर्म' कहा गया है। ऐसे दार्शनिक-विचारक कवि-मनीषी की रचना में प्रकृति का आलम्बन रूप तो मिलता है—क्योंकि प्रकृति को पहचानने का वही प्रथम सोपान है। परन्तु यह आलम्बन रूप सोपान पर है, उद्देश्य नहीं। सोपान को स्वच्छ एवं सुन्दर बनाने में वह अलंकार-रूप और बिम्ब-रूप का प्रयोग करता है। तब अन्त में वह उपदेश अथवा दर्शन पर पहुँचता है और पाठक के सम्मुख दृश्यमान (आलम्बन) प्रकृति के वास्तविक स्वरूप का अनावरण करता है। प्रकृति तो ब्रह्म का बाह्य रूप है—उसका आकार है। ब्रह्ममय प्रकृति विधारूपा है, उसके कण-कण में ब्रह्म की झलक मिलती है, परन्तु वह झलक निर्गुण उपदेव (कथन)

से सम्भव नहीं है, उसको दार्शनिक एवं तात्त्विक दृष्टि से ही दिखलाया जा सकता है। अस्तु, गोस्वामी जी के काव्य में प्रकृति का संश्लिष्ट चित्र है—एक से अधिक रूप में संयुक्त, एक सोपान से प्रारम्भ होकर अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचने वाला।

परिमाणतः वह चित्रण आलम्वन से प्रारम्भ होकर, अलंकार और बिम्ब पर होता हुआ, उपदेश अथवा दर्शन तक पहुँचता है। इसी कारण तुलसी-काव्य में प्रकृति का उद्दीपन रूप सबसे कम है—अत्यन्त ही अल्प है। क्योंकि इस प्रकृति-चित्रण का उद्देश्य कामियों के मन के काम, क्रोधियों के मन में क्रोध, और लोभियों के मन के लोभ को जगाता नहीं है; वह उत्तेजक नहीं, सात्विक है; वह सज्जन को 'प्राकृतजन' बनाने के लिए नहीं है; प्राकृत-जन में भी सत्त्वोद्रेक के निमित्त प्रकृति का चित्रण हुआ है। कृष्ण लीला रचने वाले कृष्ण भक्त कवि एवं लोक लीला रचने वाले सूफी कवि प्रकृति का उपयोग भावों की उत्तेजना के लिए करते थे, उनमें उद्दीपन-रूप का आधिपत्य है, उसका प्रकृति-वर्णन मन को भटकाता ही रहता है। तुलसी-काव्य तो मन को विश्राम देता है, विषय-सुख में उलझने वाले मन को 'सहज सुख' का मार्ग दिलाता है—

कबहूँ मन विस्राम न मान्यो।
निसि दिन प्रगत बिसारि सहज सुख जहं तहं इन्द्रियन-तान्यो ॥
अदपि विषय संग सहे सुसह दुःख विषम काल अरुझानो।
तदपि न राजस मूढ़ ममताबस, जानत है नहिं बान्यो ॥
जनम अनेक किए नाना विधि काम-कीच चित सान्यो।
होइ न बिम बिबेक-बीर बिनु, वेद-पुरान में बखान्यो ॥88 ॥

(विनयपत्रिका)

जिस उद्देश्य से गोस्वामी तुलसीदास काव्य-रचना करते थे, जिस सन्देश को वे विभिन्न भाषाओं, विभिन्न शैलियों में विभिन्न रुचियों के पाठकों के समक्ष पहुँचाना चाहते थे, वही राम-नाम, राम-भक्ति, राम-राज्य उनको प्रकृति-चित्रण में भी अभीष्ट था, कलियुग के दोषों का शमन करने के लिए उसी औषधि का वे प्रकृति के माध्यम से वितरण करते हैं। तुलसी-काव्य का प्रकृति-चित्रण उनके जीवन-दर्शन और समाज-दर्शन का ही अवान्तर रूप है।

सन्दर्भ

1. कीन्हें प्राकृत-जन गुनगाना।
   सिर धुनि गिरि लागि पछिताना ॥ (रामचरितमानस)
2. नवकंज-लोचन, कंज-मुख, कर-कंज, पद कंजारुणम्। (विनयपत्रिका)
3. कवित-विवेक एक नहिं मोरे।
   सत्य कहो लिखि कागद कोरे ॥ (रामचरितमानस)

डॉ. इन्दु

शिक्षा

एम. ए., एम. फिल., पी-एच. डी.
दिल्ली विश्वविद्यालय
डी. लिट्.
लखनऊ विश्वविद्यालय

प्रकाशित पुस्तक

तुलसी-काव्य में प्रकृति-चित्रण
संस्कृत रीति-सिद्धांत का हिंदी
रीति-काव्य पर प्रभाव

संप्रति

रीडर, हिंदी-विभाग
श्री अरविन्द महाविद्यालय (सांध्य)
दिल्ली विश्वविद्यालय

संपर्क

ए-308, शिवालिक
मालवीय नगर
नई दिल्ली-17